स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में प्रभा खेतान का उपन्यासः एक विश्लेषण

STRI VIMARSH KE SANDARBH MEIN PRABHA KHAITAN KA UPANYAS EK VISHLESHAN

Thesis
Submitted to
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

मेरली. के. पुन्नूस
MERLY.K.PUNNOSE

Dr. N. MOHANAN
Supervising Teacher
Professor & Head

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI - 682 002

MAY 2010

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of research work carried out by **Smt. MERLY K. PUNNOSE** under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any other university.

Dr. N. MOHANAN
Professor & Head
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi - 682 022

Place : Kochi

Date : 4-05-2010

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis is based on the original work done by me under the guidence of **Dr. N. MOHANAN,** Professor & Head, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin - 682 022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.

Merly

MERLY K. PUNNOSE

Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Kochi - 682 022

Place : Kochi

Date : 4 - 05 - 2010

पुरोवाक्

साहित्य समाज का खुला दस्तावेज है जो समाज के हलचलों की झांकी प्रस्तुत करता है । समाज में जनतांत्रिक मूल्यों की स्थापना साहित्य का मुख्य ध्येय है । समाज के प्रति प्रतिबद्ध हर रचनाकार अपनी रचना के ज़रिए इन मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है ।

आज दुनिया की आधी आबादी स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं सचेत हो चुकी है । वह सदियों से मानवोचित जीवन जीने से वंचित रही है । पितृसत्ता के बरक्स खड़ा स्त्री विमर्श स्त्री जीवन के अनकहे-अनछुए कसैले यथार्थों का अध्ययन ही है । समाज में स्वतंत्रता, समानता, भाईचारा जैसे मूल्यों को पुनःस्थापित करते हुए स्त्री विमर्श स्त्री को वस्तु से मनुष्य का दर्जा दिलाने की दिशा में पहल करता है । समाज के मुखौटे को बेनकाब करने की दिशा में कूच कर रहा है ।

हिन्दी में सन् 1960 से स्त्री जीवन को केन्द्र में रखकर अनेक उपन्यास रचे गए हैं । स्त्री विमर्श की खासियत स्त्री द्वारा खुद को दूसरों के नज़रिए से नहीं बल्कि खुद के नज़रिए से देखने-परखने का कार्य किया जा रहा है । समाज द्वारा सदियों से स्त्री को गुलाम बनाये रखने की साजिशों का भंडाफोड किया जा रहा है । स्त्री विमर्श का मूल स्वर प्रतिशोध का नहीं प्रतिरोध का है । पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में स्त्री की भूमिका को अहम बनाने का प्रयास करनेवाली लेखिका प्रभा खेतान और उनके उपन्यासों का विशेष महत्व है। इसलिए मैंने स्त्री विमर्श और प्रभा खेतान के उपन्यासों को अध्ययन का विषय बनाया । मेरे इस शोध प्रबन्ध का विषय है **'स्त्री विमर्श के संदर्भ में प्रभा खेतान का उपन्यासः एक विश्लेषण'** । अध्ययन की सुविधा केलिए इस शोध प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है । अंत में उपसंहार है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का पहला अध्याय है - **'स्त्री विमर्श तात्विक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण'** । इसमें स्त्री विमर्श का सैद्धांतिक विश्लेषण तथा उसके ऐतिहासिक विकास क्रम को अध्ययन का केन्द्र बनाया गया है । प्रभा खेतान के व्यक्तित्व-कृतित्व का लेखा-जोखा

प्रस्तुत करते हुए स्त्री विमर्श में प्रभा खेतान के स्थान को उद्घाटित करने का कार्य किया गया है ।

'प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री शोषण के विभिन्न आयाम' इस शोध-प्रबन्ध का दूसरा अध्याय है । सदियों से स्त्री सामाजिक शोषण का शिकार रही है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था उसकी अधीनस्थता के लिए जिम्मेदार है । शोषण का यह कुचक्र भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी एक जैसा ही रहा है । परंपरा, धर्म, कानून, विवाह एवं परिवार स्त्री शोषण पर ही टिके हुए हैं । बलात्कार एवं घरेलू हिंसा स्त्री शोषण का सबसे घिनौना रूप है। स्त्री शोषण के इन विभिन्न पहलुओं को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में उद्घाटित किया है । इसका विस्तृत अध्ययन ही इस अध्याय में लक्षित है ।

तीसरा अध्याय है **'प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री का प्रतिरोधी स्वर'** । बरसों से चली आ रही दमन की प्रतिक्रिया है वास्तव में विद्रोह और प्रतिरोध । स्त्री शिक्षा के प्रसार एवं आर्थिक स्वतंत्रता ने स्त्री के प्रतिरोध को संभव बनाया है । भारतीय स्त्री के नज़रिये में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित किया गया है । आज स्त्री समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाओं को नकार रही है । अकेली स्त्री, दूसरी स्त्री के ज़रिए यह साबित करती है कि भूमिकाओं से परे भी स्त्री का अस्तित्व हो सकता है । प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री का प्रतिरोधी स्वर मुखर हो उठा है । इस अध्याय में स्त्री के प्रतिरोधी स्वर के विभिन्न आयामों को खोजने का प्रयास किया गया है ।

'प्रभा खेतान के उपन्यासों में भूमण्डलीकृत स्त्री' इस शोध प्रबंध का चौथा अध्याय है । ब्रांड की गिरफ्त में फँसी स्त्री, मीडिया एवं विज्ञापन में उभरती स्त्री छवि का चित्रण करते हुए प्रभा खेतान ने यह ज़ाहिर किया है कि भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्री पण्य वस्तु एवं उजरती श्रमिक में तब्दील होती जा रही है । आज स्त्री के लचीले श्रम की मांग बढ़ी है । स्त्री की इस बदली हुई भूमिका को विश्लेषित करने का कार्य इस अध्याय में किया गया है ।

इस शोध प्रबंध का पाँचवाँ अध्याय है - **'प्रभा खेतान के उपन्यासों का संरचना पक्ष।'** इस अध्याय में प्रभा खेतान की सृजनात्मकता की संरचनात्मक विशेषता को पकड़ पाने का कार्य किया गया है ।

'उपसंहार' में प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षेप में समाहित किया गया है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष प्रो. डॉ. एन. मोहनन जी के निर्देशन एवं निरीक्षण में तैयार किया गया है । उनकी प्रेरणा एवं समयानुकूल निर्देशन से ही यह कार्य संपन्न हुआ है । समय-समय पर मेरी शंकाओं का समाधान करते हुए प्रोत्साहन देनेवाले उनके मन की विशालता तथा सौहार्दपूर्ण व्यक्तित्व ने ही मुझे यहाँ तक पहुँचाने में सक्षम बनाया है । मेरे शोध कार्य को सफल बनाने में उन्होंने जो सुझाव एवं उपदेश दिये, उनके लिए मैं तहे दिल से कृतज्ञता अर्पित करती हूँ। मैं उनके मंगलमय जीवन की कामना करती हूँ । मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि वे आगे भी मुझे जीवन में सही रास्ता दिखा देने की कृपा करें ।

मेरे इस शोध कार्य के विषय विशेषज्ञ प्रो. डॉ. के. वनजा जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ । उन्होंने मेरी काफी मदद की है । वे मेरे शोध कार्य को उचित दिशा निर्देश देने में हमेशा सजग रही हैं । उन्होंने मेरे प्रति असीम स्नेह दिखाया है । मैं उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ ।

विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति मैं तहे दिल से आभार प्रकट करती हूँ ।

हिन्दी विभाग के पुस्तकालय के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य को सुगम बनाने केलिए अपना काफी सहयोग दिया है ।

मैं अपने प्रिय मित्रों के प्रति भी आभारी हूँ जिनका सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा है ।

निर्मला कॉलेज मुवाटुपुषा के हिन्दी विभाग के अध्यापकों को इस संदर्भ में सप्रेम स्मरण कर रही हूँ ।

स्वर्गीय लेखिका डॉ. प्रभा खेतान का मैं तहे दिल से आभार प्रकट कर रही हूँ । उन्होंने अपना संपूर्ण सहयोग देकर मेरे इस शोध कार्य को संपन्न करने में मेरी मदद की है। उनके निजी सचिव मोहन कुमार जी के प्रति भी मैं आभारी हूँ । शोध प्रबंध केलिए आवश्यक सामग्रियाँ एवं सूचनाएं देकर उन्होंने मेरी मदद की है ।

उषा कीर्ति राणावत, परवीन मलिक एवं रेखा कस्तवार के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ जिनका सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा है ।

मेरे प्रिय पिताश्री एवं माताश्री के प्रति मैं आभारी हूँ । इन के अनवरत प्रयास एवं संघर्ष ने मुझे इस मुकाम तक पहुँचने की प्रेरणा दी । उन्होंने मेरे प्रति असीम प्रेम और वात्सल्य दिखाया है । यह शोध-प्रबंध उनके आशीर्वाद का फल है । मैं उनके सामने नतमस्त हूँ ।

मेरे प्रिय भाई मनोज, भाभी षीबा, राहुल और रिया के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ ।

यह शोध-प्रबन्ध मैं अपने प्रिय गुरुवर डॉ. एन. मोहनन जी एवं अपने माता-पिता को समर्पित कर रही हूँ ।

मैं यह शोध-प्रबंध सविनय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ । इसकी कमियों तथा गलतियों केलिए क्षमाप्रार्थी हूँ ।

सविनय

मेरली. के. पुन्नूस

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन - 22

तारीख 4-05-2010

विषय सूची

पहला अध्याय

स्त्री विमर्श तात्विक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण 1-100

स्त्री विमर्श से तात्पर्य - स्त्री विमर्श की मानसिकता - पश्चिम का स्त्री मुक्ति आन्दोलन-प्रबोधन काल- अमेरिकी क्रान्ति एवं फ्रांसीसी क्रान्ति-गुलामी प्रथा विरोधी आन्दोलन लिंगवादी धारणा से प्रभावित स्त्री आन्दोलन मज़दूर आन्दोलन स्त्री मुक्ति आन्दोलन का पहला चरण स्त्री मुक्ति आन्दोलन का दूसरा चरण स्त्री मुक्ति आन्दोलन का प्रेरक साहित्य प्रमुख संगठन भारत में स्त्री की स्थिति वैदिक काल में स्त्री-उत्तर वैदिककाल में स्त्री-रामायण एवं महाभारत काल में स्त्री स्मृति काल में स्त्री - बौद्धकाल में स्त्री-मध्यकाल में स्त्री - भारत का स्त्री मुक्ति आन्दोलन - नवजागरण और स्त्री मुस्लिम निजी कानून हिन्दू निजी कानून स्त्री मुक्ति आन्दोलन और साहित्य प्रभा खेतान का जीवन वृत्त - व्यावसायिक क्षेत्र में प्रभा खेतान सामाजिक कार्य-कर्ता के रूप में प्रभा खेतान पुरस्कारों के घेरे में प्रभा खेतान का साहित्यिक अवदान कवि प्रभा खेतान उपन्यासकार प्रभा खेतान संपादक प्रभा खेतान चिन्तक प्रभा खेतान -अनुवादक प्रभा खेतान निधन निष्कर्ष ।

दूसरा अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री शोषण के विभिन्न आयाम 101-131

सामाजिक शोषण धार्मिक शोषण आर्थिक शोषण न्याय व्यवस्था का शोषण निष्कर्ष ।

तीसरा अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री का प्रतिरोशी स्वर 132-157

शिक्षा और स्त्री - आर्थिक स्वतन्त्रता और स्त्री - अकेली स्त्री दूसरी स्त्री निष्कर्ष ।

चौथा अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों में भूमण्डलीकृत स्त्री 158-174

सेक्स उद्योग और स्त्री ब्रांड और स्त्री मीडिया और स्त्री विज्ञापन और स्त्री श्रम का शोषण और स्त्री निष्कर्ष ।

पाँचवाँ अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों का संरचना पक्ष 175-201

संरचनात्मक विशेषताएँ - कथ्यपरक नवीनताएँ - पात्र परिकल्पना - आत्मकथात्मक शैली पूर्वदीप्ति शैली डायरी शैली पत्रात्मक शैली फन्तासी शैली वर्णनात्मक शैली शीर्षक की सार्थकता भाषा विशिष्ट शब्दावली मुहावरे और लोकोक्तियाँ गालियाँ नम्रता सूचक शब्दों का प्रयोग लोकगीत- लोककथा- संकेतात्मक भाषा काव्यात्मकता चित्रात्मकता प्रतीकात्मक भाषा निष्कर्ष ।

उपसंहार 202-207

संदर्भ ग्रन्थ-सूची 208-228

पहला अध्याय

स्त्री विमर्श तात्विक एवं ऐतिहासिक सर्वेक्षण

दुनिया की आधी आबादी की स्त्री अपनी मानवीय पहचान से वंचित, चुनाव एवं निर्णय की क्षमता रखते हुए भी उस से दूर रहकर दर-दर की ठोकरें खाने को अभिशप्त है। पितृसत्तात्मक समाज ने घर की चार दीवारी में उसे कैद कर उसी को ही स्त्री की दुनिया समझा दी थी । इसलिए 'असूर्यपश्या' शब्द का इस्तेमाल भी सिर्फ स्त्री केलिए ही होता था, "स्त्री जितना घर में कुंडी डाले जितना अधिक रहेगी, अंधेरे में मुँह छुपाये पड़ी रहेगी-उतना ही अधिक खिलेगी । पुरुष ने पुरुषों केलिए 'असूर्यपश्या' शब्द नहीं बनाया । इसलिए नहीं बनाया क्योंकि आगे चलकर कहीं इसी शब्द केलिए घर में बन्दी न हो जाना पड़े ।"[1] स्त्री ने न कभी घर की दहलीज लाँघने की जुर्रत की और न ही बाहरी दुनिया को झांककर देखने की ।

पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को न केवल कैद कर रखा बल्कि उसे अपनी मानवीय गरिमा, संपत्ति, सत्ता से अपदस्थ कर दासता के साँकलों में बन्धनस्त कर दिया । यह स्त्री जाति की सबसे बड़ी हार थी जिसे नकारा नहीं जा सकता, "मातृसत्ता का विनाश स्त्री जाति की विश्व-ऐतिहासिक पराजय था । अब घर के अन्दर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया।"[2] अब वह मात्र पुरुष की संपत्ति मान ली गयी । वह सहचरी, सहभागिनी, सबला से अबला और पुरुष की अनुगामिनी हो गई । हमेशा से स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता से भयभीत पितृसत्ता ने उसकी स्वतन्त्रता को अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया । अगर किसी मुद्दे को लेकर संस्कृति खामोश रही है तो वह स्त्री की अस्मिता के मद्दे को लेकर ।

स्त्री अब पुरुष को लुभाने-ललचाने और उसके वंशबेल को आगे बढाने वाली उर्वरभूमि ही समझी जाने लगी । उसे मात्र देह तक सीमित कर दिया । पितृसत्ता की इसी मानसिकता को हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक राजेन्द्र यादव ने यों उकेरा है - "पुरुष ने स्त्री के खून में यह भावना, संस्कार की तरह कूट-कूट कर भर दी है कि वह सिर्फ और सिर्फ शरीर

---

1. तसलीमा नसरीन औरत के हक में पृ 87
2. फ्रेडरिख एंगेल्स परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ती पृ 64

है। वह शरीर के सिवा उसकी किसी और पहचान से इनकार करता है । औरत उसके लिए सुमुखी, पयोधरा, क्षीण-कटि, बिल्वस्तनी, सुभगा, भगवती है ।"[1] उसकी मेधा, काबलियत को समाज ने अनदेखा कर दिया । पश्चिमी दार्शनिक प्लेटो ने तो गुलामों, वहशियों और स्त्रियों को दार्शनिक विमर्श और बौद्धिक चिन्तन से कोसों दूर रखने की बात कही थी । इस संदर्भ में पौराणिक ऋषि याज्ञवल्क्य और विदुषी गार्गी की कहानी याद आती है जिसमें गार्गी से शास्त्रार्थ में खुद को पराजित होते देख याज्ञवल्क्य कहते हैं - चुप हो जा स्त्री, नहीं तो तेरा सिर तेरे धड़ से अलग कर दिया जाएगा, "यह प्राचीन कथा एक प्रतीक है, उस औरत का जिसका अस्तित्व ही उसके मस्तक के नीचे से शुरू माना जाता है । वह मस्तकविहीन देह मात्र है।"[2] इस संदर्भ में वराहमिहिर और उनकी पत्नी रवना का प्रसंग भी अविस्मरणीय है जहाँ पति से अधिक बुद्धिमति रवना को अपनी ज़िन्दगी से ही हाथ धोना पड़ा । इससे यही ज़ाहिर होता है कि जब-जब स्त्री ने अपनी क्षमता को प्रकट किया समाज द्वारा उसे रौंद डालने के प्रयास भी होते रहे। स्त्री इसे ही अपनी नियति मान समाज के बताये नक्शे-कदमों पर चलने लगी । तमाम अधिकारों से वंचित स्त्री अब पूर्णतः पुरुष की मिल्कियत मान ली गई।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटित स्त्री मुक्ति आन्दोलन, शिक्षा की बदौलत भूमिकाओं में परिभाषित, रिश्तों में जीती आई स्त्री ने समाज के हर क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज की । उसे एहसास हुआ कि समाज उसे कमतर करके आँकता आया है । व्यक्तित्व विकास के अवसर से वह हमेशा वंचित रही है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी प्रतिभा कुंद होती गई । समाज ने कभी उसे स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में उभरने ही नहीं दिया । तभी से वह खुद को देह से उबारकर मानवीय पहचान को हासिल करने में कार्यरत है जिसे बड़ी शिद्दत के साथ उसने महसूस किया है "इस भेद को केवल स्त्री-पुरुष के प्राकृतिक भेद के आधार पर नहीं स्वीकारा जा सकता । निश्चय ही यह मनुष्य-मनुष्य में किया गया सामाजिक भेद-भाव है । नारी का मानवी के रूप में अस्वीकार है । यही आज की जागरूक, प्रबुद्ध नारी की समाज से, पुरुष से लडाई है ।"[3]

---

1. अर्रविन्द जैन औरत होने की सजा -पृ 14
2. डॉ ज्योति किरण-हिन्दी उपन्यास और स्त्री जीवन पृ. 16
3. आशारानी व्होरा औरतः कल, आज और कल पृ. 187

स्त्री ने अपनी चुप्पी को तोड़ा, अपने शोषण को शब्दबद्ध किया, बरसों से दबी अपने आक्रोश को वाणी दी । पितृसत्ता को केन्द्र में रख उसके साजिशों का भंडाफोड किया । स्त्री के अनछुए-अनकहे पहलुओं को उजागर करते हुए साहित्यिक जगत में स्त्री विमर्श उभरकर आया जो स्त्री को दूसरों के नज़रिए से नहीं बल्कि खुद के नज़रिए से देखने, परखने और टटोलने का हिमायती है, "स्त्री विमर्श स्त्री को स्वयं को देखने-जाँचने-परखने का पर्याय है। आज तक हम अपने बारे में, अपनी आशाओं-आकांक्षाओं के बारे में जो कुछ भी जानते हैं, किसी संत-महात्मा, विचारक-मनीषी का लिखा गढ़ा है, हम स्वयं को अपनी ही दृष्टि से तौलें, परखें-यह नवीन आयाम है । किसी की बेटी, पत्नी या माँ नहीं, केवल व्यक्तिवाचक संज्ञा बनकर अपनी पहचान टटोलना । सधे कदमों से वैश्विक सखी भाव की ओर बढना।"[1] समाज में प्रचलित मूल्यों को सन्देह की निगाह से देखता हुआ, उसे खारिज कर समता, स्वतन्त्रता, भाईचारे से लैस जनतांत्रिक मूल्यों एवं एक वर्चस्वविहीन समाज की स्थापना स्त्री विमर्श का ध्येय है । आज स्त्री अपने अस्तित्व और अस्मिता पर नये सिरे से विचार करने लगी है । चन्द्रकान्ता के शब्दों में "स्त्री विमर्श को बृहत्तर अर्थों में परिभाषित करना चाहें तो वह घर-परिवार, समाज नीति और राष्ट्रनीति में, नारी की अस्मिता, अधिकार और उन अधिकारों केलिए संघर्ष चेतना से जुडे संवाद की संकल्पना है । वहाँ सामाजिक-धार्मिक अंधरूढ़ियों में दबी-पिसी स्त्री की आहें-कराहें ही नहीं, बल्कि शोषक व्यवस्था के विरुद्ध उसका आक्रोश-विद्रोह भी है, साथ ही स्त्री की गरिमापूर्ण सशक्त छवि गढ़ने की मुहिम भी।"[2]

स्त्री विमर्श से तात्पर्य

'विमर्श' शब्द अंग्रेज़ी के 'डिस्कोर्स' शब्द का समानार्थी हिन्दी शब्द है । शब्द प्रयोग की दृष्टि से विमर्श शब्द अत्यन्त प्राचीन है । 'विमर्श' शब्द की व्युत्पत्ति 'वि + मृद + घञ्' से मानी गई है, जिसका अर्थ है 'विचार विनिमय' 'जीवन्त बहस' 'सोच-विचार'

---

1 लता शर्मा औरत अपने लिए पृ. 149
2. चन्द्रकान्ता स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिन्दी साहित्य पृ. 17

'परिचर्चा', 'चर्चा', 'तर्कुना' आदि । वीरेन्द्र सिंह यादव के शब्दों में, "विमर्श का अर्थ है जीवन्त बहस। किसी भी समस्या या स्थिति को एक कोण से न देखकर भिन्न मानसिकताओं, दृष्टियों, संस्कारों और वैचारिक प्रतिबद्धताओं का समाहार करते हुए उलट-पलट कर देखना, उसे समग्रता से समझने की कोशिश करना और फिर मानवीय संदर्भों में निष्कर्ष प्राप्ति की चेष्टा करना ।"[1] जब 'विमर्श' शब्द 'स्त्री' शब्द के साथ जुड़ता है तब इससे तात्पर्य है, स्त्री को केन्द्र में रखकर उसकी उपेक्षा एवं अवमानना के कारणों की पड़ताल करना तथा क्यों स्त्री जाति समाज के हाशिये पर रहने को अभिशप्त है ?

स्त्री विमर्श स्त्री के शोषण, दमन को समाप्त करके उस के वास्तविक अधिकार को स्थापित करने का वकालत करता है, "स्त्री विमर्श स्त्री के जीवन के अनछुए अनजाने पीड़ा जगत के उद्घाटन के अवसर उपलब्ध कराता है परन्तु उसका उद्देश्य साहित्य एवं जीवन में स्त्री के दोयम दर्जे की स्थिति पर आँसू बहाने और यथास्थिति बनाए रखने के स्थान पर उन कारकों की खोज से है जो स्त्री की इस स्थिति केलिए जिम्मेदार है । वह स्त्री के प्रति होने वाले शोषण के खिलाफ संघर्ष है ।"[2] स्त्री विमर्श स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक स्थिति के बारे में व्यापक दृष्टिकोण का विमर्श है । वह स्त्री की स्थिति, उसका इतिहास, उस की मानसिकता आदि को अलग से रेखांकित करने का पक्षधर है । स्त्री को अपना जीवन जीने के तरीके के संदर्भ में खुद को कर्त्ता बनाना तथा जीवन के स्वस्थ पक्ष को ग्रहणकर आत्मनिर्णय की ताकत हासिल करना स्त्री विमर्श के तहत ही आता है ।

पितृसत्ता के बरक्स खड़ा स्त्री विमर्श उसके द्वारा गढ़े मूल्यों पर प्रश्न चिह्न लगाता है। उसकी तीखी आलोचना करता है जो स्त्री की अधीनस्थ स्थिति केलिए ज़िम्मेदार है, "नारी विमर्श पितृसत्ता के हिंसक व्यवहार, प्रहार, दुर्व्यवहार एवं शोषण करनेवाली मानसिकता

---

1 वीरेन्द्र सिंह यादव पराधीनता के खिलाफ विद्रोह पृ. 83

2. रेखा कस्तवार स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ पृ. 25

पर विचार करता है।"[1] आज स्त्री स्त्री शोषण पर टिके पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती दे रही है । विश्वभर की स्त्रियाँ एकजुट होकर इस कैदखाने से मुक्त होने की मुहिम चला रही है । यह स्त्री का अपना संघर्ष है अपने अधिकार एवं स्वतन्त्र पहचान केलिए । वस्तु से मनुष्य बनने का संघर्ष है जिसकी कमान स्त्रियों नें अपने हाथों में थाम ली है । चन्द्रकान्ता के शब्दों में - "लेकिन जिस शिद्दत से महिला रचनाकारों ने स्त्री के पारिवारिक-सामाजिक और दैहिक शोषण को संवेदी स्वर और आक्रोशी तेवर दिए हैं, दोयम दर्जे की स्थिति को नकारकर शोषणधर्मिता के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द की है वह जहाँ स्त्री मानस की अनकही पीड़ा का महाआख्यान है, वहीं उसकी संघर्ष चेतना और स्त्री-विरोधी व्यवस्था से रू-ब-रू होकर, अपनी लड़ाई आप लड़ने की सामर्थ्य का सशक्त दस्तावेज भी है ।"[2]

स्त्री मुक्ति आन्दोलन और उससे उपजे कई सवालों का नया आयाम है स्त्री विमर्श। स्त्री की मुक्ति, समानता, अस्मिता की स्वतन्त्रता, सामाजिक न्याय आदि का पक्षधर है स्त्री विमर्श । स्त्री मुक्ति का अर्थ मात्र देह से मुक्ति नहीं है । स्त्री मुक्ति से मतलब स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मुक्ति से है। स्त्री को बरसों की गुलामी से मुक्त कर, समाज के हाशिये से उसे मुख्यधारा में शामिल करने की दिशा में भी स्त्री विमर्श पहल करता है । स्त्री विमर्श के ध्येय को उद्घाटित करते हुए ममता कालिया लिखती है, "मुख्यधारा में शामिल हुए बिना केवल निजी समस्याओं का अरण्य रोदन स्त्री विमर्श का लक्ष्य नहीं है ।"[3] स्त्री खुद को समाज में स्थापित करने की दिशा में संघर्षरत है ।

आधी आबादी के अनछुए- अनकहे पहलुओं को जगजाहिर करने, मात्र स्त्री होने के कारण समाज में झेले गए शोषण, दलन, अवमानना से निजात दिलाने, समाज के प्रति स्त्री के दायित्व से उन्हें अवगत कराने की दिशा में स्त्री विमर्श की अहम भूमिका रही है, "इस विमर्श की सबसे बड़ी सार्थकता इस अर्थ में भी है कि सदियों से पुरुषत्ववादी गुलामी एवं

---

1. डॉ. मधु संधु नारी विमर्श लघु कथाओं के सन्दर्भ में पृ. 79
2. चन्द्रकान्ता स्त्री विमर्श की अवधारणा और हिन्दी साहित्य पृ. 18
3. ममता कालिया स्त्री विमर्श के संतुलन बिन्दु पृ. 8

शोषण के विरुद्ध अपनी सामाजिक-अस्मिता, स्वतन्त्रता, समानता, मुक्ति एवं अधिकारों के संदर्भ में वैश्विक स्तर पर सभी वर्ग की स्त्रियों में एकजुटता दिखलाई पड़ती है।"[1] स्त्री विमर्श पितृसत्ता के विरोध में स्त्री के व्यक्तिगत अनुभवों को उजागर करने की पहल करता हुआ स्त्री की मानवीय पहचान के साथ-साथ उसकी मुक्ति केलिए भी गुहार लगाता है । स्त्री विमर्श का मूल स्वर प्रतिशोधात्मक नहीं, प्रतिरोधात्मक है ।

स्त्री विमर्श की मानसिकता

स्त्री को समाज में मनुष्य का दर्जा दिलाना है तो पहले सामाजिक विषमता को दूर करना होगा । समाज में स्त्री की पहचान जन्म-जात न होकर एक सामाजिक निर्मिति है इसे उद्घाटित करने में स्त्री विमर्श की महत्ती भूमिका रही है, "लिंगभेद मर्द समाज ने दिया है, शारीरिक भेद प्राकृतिक है । प्राकृतिक भेद बना रह सकता है । लेकिन सामाजिक भेद 'ठीक' होना ही चाहिए। यही स्त्री विमर्श का नया योगदान है ।"[2] जैविक भिन्नता के आधार पर किसी को श्रेष्ठ या किसी को निम्न मानने का समाज का तरीका वास्तव में गलत है । समाज में स्त्री-पुरुष को अलग-अलग भूमिकाओं का निर्वाह करना पड़ता है । स्त्री के कार्य को अप्रमुख माना जाता है । आर्थिक निर्भरता के अभाव में वह पूरी तरह से पुरुष पर आश्रित होने को विवश हो जाती है। प्रभा खेतान के शब्दों में - "स्त्री-पुरुष की जैविक भिन्नता यौनता पर आधारित है । यौनता के आधार पर जैविक भेद किया जाता है । मगर अन्य सभी भेद आरोपित एवं संवर्धित हैं । ऐसी भिन्नताएँ हैं जिन्हें समाज ने इन जैविक भिन्नताओं के सन्दर्भ में लागू किया है । इसे ही लैंगिकीकरण की प्रक्रिया कहेंगे।"[3] स्त्री विमर्श द्वारा स्त्री के इस इतिहास को उघाड़ने का प्रयास किया जा रहा है जिससे स्त्री शोषण के कारकों को समझने में मदद मिले ।

सभ्यता के आरंभिक दौर में मातृसत्तात्मक व्यवस्था थी। स्त्री सत्ता के केन्द्र में थी,

---

1. रीतेश कुमार सिंह स्त्री विमर्श एवं भूमंडलीकरण पृ. 92
2. राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा (सं) औरत उत्तरकथा पृ. 121
3. प्रभा खेतान-स्त्री विमर्शः ज्ञान मीमांसा -पृ. 89

पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थी । समाज में उसका सम्मान था । तब नैतिकता के कड़े नियम नहीं थे । वह स्वेच्छा से किसी से भी यौन संबंध स्थापित कर सकती थी । स्त्री शक्ति संपन्न होने के साथ-साथ उर्वरा भी थी । उसकी प्रजनन की क्षमता उसकी दासता का मूल कारण बनी। घुमन्तू युग में भी स्त्री पुरुष की गुलाम नहीं थी । जाति की निरंतरता केलिए यह ज़रूरी था कि वह सन्तान को जन्म दे । इसके बावजूद वह प्रथम स्थान नहीं पा सकी । स्त्री में सृजन का अभिमान नहीं जगा था । स्त्री की भूमिका हमेशा पोषक की रही सर्जक की नहीं । कृषि युग में सन्तान का महत्व बढ़ गया । प्रकृति के समान उर्वर स्त्री के सामने पुरुष खुद को असहाय एवं लाचार पाता है । लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच कभी पारस्परिक संबंध स्थापित नहीं हो पाया । सीमोन लिखती है "वह चाहे धरती थी, चाहे माता, चाहे देवी, किन्तु पुरुष की संगी मित्र कभी नहीं थी। उनमें पारस्परिक साझेदारी का भाव नहीं था । यदि स्त्री-शक्ति की किसी तरह की आराधना हुई, तो वह अतिमानवीय शक्ति थी । अतः पूजिता होकर वह मानवीय जगत से अलगाव की स्थिति में थी ।"[1] स्त्री को अपदस्थ करके ही पुरुष अपनी नियति हासिल कर सकता था ।

धरती पर अधिकार के साथ ही संपत्ति की अवधारणा भी विकसित हुई । निजी संपत्ति के मोह ने पुरुष में स्वामित्व की भावना विकसित की । अपनी सृजनात्मक क्षमता की जानकारी के साथ ही पुरुष ने मातृत्व के महत्व को कमतर करके आँकना प्रारंभ किया । पुरुष शक्ति का प्रतीक बना । अब देवियों के साथ-साथ देवताओं की पूजा की परंपरा भी शुरू हुई । दुनिया के सर्वोच्च देव सूर्य के रूप में उसने खुद को प्रतिष्ठित किया । अपने अस्तित्व को बरकरार रखने केलिए उसने स्त्री अस्मिता पर सबसे अधिक चोट पहुँचाई । पुरुष निरंतर चेष्टा करता रहा कि स्त्री उसकी बराबरी हासिल न कर पाए, "हम देखते हैं कि धर्म, ईश्वर, देवता, परंपरा आदि सभी कुछ स्त्री के विरोध में संगुफित है और पुरुष इनका एकमात्र घोषित प्रतिनिधि है जो इन्हीं के माध्यम से स्त्री की प्रताड़ना का संहिताकरण करता

---

1 प्रेभा खेतान स्त्री उपेक्षिता पृ. 54

है और फिर उन संहिताओं की विधि-विधान से पूजा करने केलिए स्त्रियों का मानसिक अनुकूलन भी करता है ।"[1] पुरुष ने मातृसत्तात्मक समाज के खात्मे के साथ ही स्त्री जाति को अपने अधीन कर लिया । सत्ता के इस परिवर्तन को एगेंल्स स्त्री जाति की बहुत बड़ी हार मानते हैं ।

पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष ने पूँजी का उत्तराधिकारी अपने पुत्रों को बनाया । इसके साथ ही स्त्री की स्वतन्त्रता पर अंकुश लग गया । स्त्री पर अनुशासन के कठोर नियम लागू कर दिए गए। कौमार्य और यौन शुचिता के बंधन में स्त्री को बाँध दिया । गर्भाधान के बोझ ने कौमार्य के मिथक को शक्तिशाली बनाया । शुचिता की ग्रंथि स्त्री को मनुष्य की श्रेणी से वंचित कर वस्तु में तब्दील कर देती है । यौन शुचिता और कौमार्य के मिथक पर बल देने का मकसद था, "विवाह तक कौमार्य बचाए रखने की सीख, सचमुच स्त्री को घर में कैद रखने और परंपरागत परिवार और विवाह संस्था में स्त्री पर पुरुष का एकाधिकार बनाए बचाए रखने केलिए ही दी जाती है।"[2] पितृसत्तात्मक समाज के साथ ही बलात्कार का भी चलन हुआ । इस बर्बरता को वह पौरुष जतलाने का माध्यम मानता है ।

सत्ता ने इतरलिंगी यौन व्यवस्था को स्त्री पर आरोपित किया जिसके ज़रिए वह स्त्री पर अपना शारीरिक, आर्थिक, भावनात्मक वर्चस्व स्थापित करता है । यौन संबंधों में स्त्री की भागीदारी को गौण माना जाने लगा । स्त्री की निष्क्रियता भी वास्तव में सामाजिक निर्मिति है। राजेन्द्र यादव के शब्दों में- "एक भी नुस्खा औरत की कामशक्ति बढ़ाने केलिए नहीं है, न उसके लिए कोई कामसूत्र है बल्कि यहाँ ऐसी गोपनीयता और निजता बरती गई है कि ये सारे गुर या मन्त्र सिर्फ पुरुषों केलिए है, औरत को इनका पता भी नहीं लगना चाहिए-शायद यह मानकर चला गया है कि स्त्री में तो स्वाभाविक रूप से ही कामशक्ति पुरुषों से आठगुनी अधिक है ।"[3] अरब देशों में तो स्त्रियों की सुन्नत की प्रथा लम्बे समय तक चलती रही । स्त्री

---

1 मूलचन्द सोनकर स्त्री विमर्श के दर्पण में स्त्री का चेहरा पृ. 63
2. अरविन्द जैन, लीलाधर मंडलोई (अतिथि संपादक) स्त्री मुक्ति का सपना पृ. 14
3. राजेन्द्र यादव-आदमी की निगाह में औरत पृ. 15

की पवित्रता को उसके यौन अंगों से जोड़कर देखने एवं उसके चरित्र को यौन संबंधों से जोड़कर देखा जाने लगा । इसे खारिज करते हुए रमणिका गुप्ता लिखती हैं - "मैं औरत के संदर्भ में पतित शब्द की परिभाषा से सहमत नहीं हूँ । यह शब्द औरत के चरित्र से जोड़ा जाता रहा है और चरित्र का अर्थ केवल औरत के यौन संबंधों को लेकर ही समझा जाता है । औरत के सन्दर्भ में चरित्र के अन्य गुण या लक्षण जैसे नैतिकता, शालीनता, ईमानदारी, परस्पर सद्भाव या संवेदनशीलता तथा बहादुरी और निडरता आदि को नजरअन्दाज़ कर दिया जाता है।"[1] स्त्री के संदर्भ में 'पतित' शब्द का जो इस्तेमाल किया जाता है उसे गलत ठहराया जा रहा है ।

पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री को चुनाव एवं स्वतन्त्र अभिव्यक्ति के अवसरों से वंचित रखा गया । उसे व्यक्तित्व विकास के अवसर ही प्रदान नहीं किए गए । पुरुष द्वारा स्त्री की अधीनस्थ स्थिति को जायज़ ठहराने के प्रयत्न किए गए और अपनी शक्ति का इस्तेमाल भी। पुरुष के खात्मे के साथ ही स्त्री मुक्ति का मसला नहीं सुलझता । स्त्री की मुक्ति में बाधक पुरुष नहीं बल्कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था है जो स्त्री के दोयम दर्जे केलिए जिम्मेदार है और पुरुष को यही पट्टी पढ़ाता आया है कि स्त्री उसके उपभोग की वस्तु मात्र है । अर्चना वर्मा के शब्दों में "पितृसत्ता एक व्यवस्था है और पुरुष एक व्यक्ति । अकेला व्यक्ति समूची व्यवस्था का चेहरा नहीं हो सकता । व्यक्ति से लड़कर हम व्यवस्था का रूप नहीं बदल सकते । इस व्यवस्था से लडने का ढंग क्या हो जो दिखती ही नहीं, जो रुख, रुझान, रवैया, संस्कार बनकर हमारी नसों में समा चुकी है ।"[2]

स्त्री ने पुरुष के मूल्यों की बराबरी में या उनके खिलाफ स्त्री के मूल्यों को स्थापित करने की चेष्टा नहीं की । स्त्री से उम्मीद की गई कि वह इन मूल्यों को बचाये रखे । मानसिक तौर पर गुलाम स्त्री को पुरुष पसंद करता है । पितृसत्तात्मक समाज में आदमी

---

1. रमणिका गुप्ता हादसे पृ. 16
2. शंभुनाथ (सं) समकालीन सृजन आधुनिकता की पुनर्व्याख्या -पृ. 209

होना विधेयक का प्रतिनिधित्व करना है और स्त्री होना निषेध का प्रतिनिधित्व । स्त्री की जैविक भिन्नता उसे दोयम दर्जे की भूमिका नहीं सौंपती । इस सच्चाई को उद्‌घाटित करते हुए महादेवी वर्मा लिखती है - "मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, शारीरिक विकास के विचार से और सामाजिक जीवन की व्यवस्था से स्त्री और पुरुष में विशेष अन्तर रहा है और भविष्य में भी रहेगा, परन्तु यह मानसिक या शारीरिक भेद न किसी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करता है और न किसी की हीनता का विज्ञापन करता है ।"[1]

निजी संपत्ति के साथ ही पितृसत्तात्मक समाज में एकविवाह की स्थापना हुई। एक विवाह पुरुष की प्रधानता पर आधारित था, स्त्री-पुरुष के बीच तालमेल के रूप में नहीं बल्कि स्त्री पर पुरुष के वर्चस्व के रूप में प्रकट हुआ । जोन स्टुवर्ट मिल के शब्दों में "नीग्रो-दासता के उन्मूलन के बाद अब यही एक ऐसा क्षेत्र बचा है जिसमें एक मनुष्य पूरी तरह से दूसरे मनुष्य की दया पर निर्भर होता है, इस उम्मीद में कि वह व्यक्ति अपने अधीन व्यक्ति के हित में ही अपनी सत्ता का इस्तेमाल करेगा हमारे कानून में विवाह ही एक वास्तविक दासता है । हर घर की मालकिन के सिवाय अब कोई कानूनी रूप से दास नहीं रहा।"[2] परिवार का यह रूप प्राकृतिक कारणों पर नहीं बल्कि आर्थिक कारणों पर आधारित था और आधुनिक वैयक्तिक परिवार स्त्री की खुली या छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित था । स्त्री के कार्यक्षेत्र को परिवार तक सीमित कर दिया । श्रम विभाजन के साथ ही स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की हो गई । स्त्री गुलामी की बेडियों में जकड़ती चली गई ।

एक विवाह के साथ-साथ हैटरिज्म और वेश्यावृत्ति भी पनपने लगे, "पितृसत्तात्मक व्यवस्था और निजी संपत्ति के विकास ने एक समस्या को जन्म दिया अगर संपत्ति को पुरुषों की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के हाथों में जाना है तो मर्द यही चाहेंगे कि वह उनके ही वंश के हाथों में जाए । इसलिए स्त्री की कामुकता पर नियंत्रण बढ़ता गया । फिर भी मर्दों को

---

1. महादेवी वर्मा श्रृंखला की कड़ियाँ पृ 43
2. जोन स्टुवर्ट मिल, प्रगति सक्सेना (अनु) स्त्रियों की पराधीनता पृ. 110-111

अगर आनुवंशिकीय लिहाज से अपनी अनियंत्रित कामुकता को जारी रखना है तो कुछ प्रावधान करने होंगे । ये प्रावधान वेश्यावृत्ति, बहु विवाह और रखैल प्रथा के रूप में उभरे।"[1] इस तरह पुरुष ने घर में कुलवधू और बाहर नगरवधू का निर्माण किया ।

पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री की यथास्थिति को पुख्ता करने के इरादे से परंपरा, धर्म, शास्त्र, कानून, मिथक का सहारा लिया । स्त्री को मद्देनज़र रखते हुए तमाम नियम गढे जहाँ स्त्री को पुरुष के पीछे चलने की नसीहत दी गई । उसकी स्वतन्त्र पहचान को उभरने ही नहीं दिया। समाज ने मनमाने ढंग से स्त्री छवि का निर्माण किया । जहाँ उसे एक ओर देवी का दर्जा दिया, वहीं दूसरी ओर उसके साथ गुलामों जैसा बदसलूक भी किया । नैतिकता के दोहरे मानदण्ड गढ़े, जहाँ पुरुष को अपनी मनमानी करने की खुली छूट मिली वहीं स्त्री को बन्धनों में कस दिया, "मर्यादाओं के मकड़जाल में स्त्री केलिए 'प्राइवेट लाइफ' का मतलब है व्यभिचार और सिन्दूरी संबंधों से बाहर, हर संबंध अनैतिक, पाप और अक्षम्य अपराध । एकल विवाह या संबंध के सारे प्रतिबन्ध सिर्फ स्त्री के लिए । पुरुष केलिए व्यभिचार की खुली वैधानिक छूट । रखैल, रक्षिता, वेश्या, कॉलगर्ल सब उसी के आनंद की संस्थाएँ हैं ।"[2] स्त्री की एकमात्र पहचान के रूप में देह उसका गुण भी रहा और गाली भी। उसकी देह का इस्तेमाल करने का हक सिर्फ समाज का है । जब स्त्री अपनी देह का इस्तेमाल करने लगती है तब वह 'उच्छृंखलता' और 'अमर्यादा' कहलाता है । धर्म शास्त्रों द्वारा इस मान्यता को पुष्ट किया गया कि स्त्री मात्र देह है । धर्मशास्त्रों की आड़ में स्त्री के यौन शोषण को बढ़ावा दिया गया। ये संहिताएँ दो बुनियादी मान्यताओं पर आधारित हैं पहली यह कि औरतों को खरीदा बेचा जा सकता है और दूसरी यह कि मर्दों को सेक्स की खरीदारी करने का अधिकार है। इस तरह स्त्री को देह के घेरे में कैद कर दिया गया ।

समाज में प्रचलित प्रथाएँ भी स्त्री अस्मिता के साथ क्रूर मज़ाक करती आयी हैं ।

---

1. लुइज ब्राउन, कल्पना वर्मा (अनु)-यौन दासियाँ एशिया का सेक्स बाज़ार -पृ. 116
2. अरविन्द जैन-उत्तराधिकार बनाम पुत्राधिकार पृ. 19

विवाह प्रथा के दौरान निभानेवाले रस्मों में कन्यादान, दहेज देना, लड़केवालों का हाथ ऊपर होना, विवाहित महिला केलिए मंगलसूत्र पहनना, माँग भरना जैसे सुहाग-चिह्नों का निर्धारण स्त्री को व्यक्ति के बजाय वस्तु बना डालती है । और यह भी सिद्ध करते हैं कि लड़की माता-पिता केलिए बोझ है, स्त्री को पुरुष पर निर्भर रहना चाहिए । तमाम व्रतों का पालन करती हुई स्त्री पितृसत्ता को ही पुष्ट करती है । समाज में लिंगभेद को बरकरार रखने एवं लड़के की चाहत को बनाये रखने में इनसे मदद मिलती है । परंपरा द्वारा उसके पक्ष में अनेक दलीलें पेश किये जाते हैं कि बेटा ही वंश चला सकता है, वही बुढापे की लाठी बन सकता है, हमेशा केलिए काम में हाथ बँटाता रह सकता है, जबकि बेटी पराया धन या परायों के इस्तेमाल की चीज़ होती है । इसलिए बेटों पर ज्यादा प्यार और धन लुटाया जाना तर्कसंगत बन जाता है। परंपरा के नाम पर इन प्रथाओं को सुरक्षित रखा गया है ।

समाज में लड़के की चाहत ने लड़की को तमाम बुनियादी ज़रूरतों से वंचित रखा। वह कुपोषण की शिकार हुई । उसे बोझ समझा जाने लगा । आज के समाज में लड़के की चाहत इतनी बलवती है कि पितृसत्ता ने विज्ञान के सहारे लड़की को खत्म करने के तरीके ईज़ाद कर लिये हैं । इस सिलसिले में क्षमा शर्मा लिखती है - "अमीनो सेंटेसिस को सैक्स डिटेक्शन टैस्ट में बदल दिया गया । अमीनो सेंटेसिस की खोज गर्भावस्था के दौरान बच्चे में किसी तरह की खराबी जाँचने केलिए की गई थी । लेकिन कैसे किसी अच्छी खोज को निहित स्वार्थ में बदला जा सकता है, यह इसका नमूना बना ।"[1] इसके ज़रिए धड़ल्ले से कन्या भ्रूण हत्या किया जा रहा है । पुरुष दर की तुलना में स्त्री दर के घटने के परिणाम स्वरूप समाज में वेश्यावृत्ति पनपने लगी और स्त्री पर हिंसा भी ।

स्त्रियाँ एकजुट हों यह पितृसत्ता नहीं चाहता । इससे उसका अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा । इसलिए वह स्त्री को स्त्री के विपक्ष में खड़ा करता है । तसलीमा नसरीन के शब्दों

---

1 क्षमा शर्मा - स्त्री का समय पृ: 147

में "लेकिन इस मामले में भी वे पुरुषप्रधान समाज के पुरुषतंत्र की ही 'धारक' और 'वाहक' होती है । यानी वे पुरुष के प्रतिनिधि के रूप में काम करती हैं, और हू-ब-हू पुरुष की ही तरह एक औरत पर अत्याचार करती हैं ।....। इसके अलावा भी औरत के औरत का दुश्मन होने के पीछे एक और कारण है । वह है इनफीरियारिटी काम्प्लेक्स, यानी हीन भावना । यह एक बीमारी है । इसकी शिकार स्त्रियाँ अधिकतर होती हैं । लड़कियों की हीन मानसिकता बनाये रखना मानो समाज का नैतिक दायित्व है ।"[1] इसी काम्प्लेक्स से ईर्ष्या का जन्म होता है और दूसरी स्त्री को चोट पहुँचाती है । स्त्री को समाज के अनुकूलन से उभरकर अपनी हीन भावना से निजात पाना होगा । स्त्री के हित में कार्य करना होगा तभी जाकर पितृसत्ता की नींव चरमराने लगेगी ।

परंपरा ने विवाह को ही स्त्री की नियति बना रखी है । इस के दौरान चयन की स्वतंत्रता से भी स्त्री वंचित रही। यह सिर्फ दो राज्यों, दो कबीलों, दो कुटुम्बों, दो परिवारों एवं पिता और पति के बीच ही संभव होता रहा । विवाह के ज़रिए ही समाज में स्त्री सम्मान की अधिकारी मानी गयी । विवाह जिसे जन्म-जन्मान्तर का बंधन माना जाता था, संबंध विच्छेद की संभावना न के बराबर थी। टूटे हुए संबंधों को घुट-घुटकर ढोने केलिए दोनों अभिशप्त थे । हिन्दू विवाह अधिनियम (1955) के लागू हो जाने के उपरान्त हिन्दू विवाह की अवधारणा में बदलाव संभव हुआ ।

विवाह स्त्री को सामाजिक एवं आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करता है । इसके बदले में सेक्स और सेवा स्त्री का दायित्व माने गये। स्त्री से आजीवन एकनिष्ठ समर्पण की अपेक्षा की गई। विवाह संस्था के बाहर स्त्री के प्रेम को बड़ा अपराध माना गया। समाज में अकेली स्त्री भी शंका भरी निगाहों से देखी जाती है । स्वतन्त्र, आर्थिक रूप से स्वतन्त्र स्त्री को भी विवाह संस्था अधिक लुभाती है ।

---

1. तसलीमा नसरीन, मुनमुन सरकार (अनु) नष्ट लड़की नष्ट गद्य पृ. 85

विवाह का एकमात्र उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति को माना गया और मातृत्व में ही स्त्री की संपूर्णता और सार्थकता मानी गयी । पुत्र को जन्म देनेवाली स्त्री समाज में विशेष रूप से आदर एवं सम्मान की हकदार हुई । लेकिन संतान पर सिर्फ पिता का ही हक होता है और वह समाज में पिता के ही नाम से जाना- जाता । पिता के अभाव में ही माँ सन्तान की प्राकृतिक संरक्षक बन सकती है । जहाँ विवाह संस्था के भीतर माँ का महिमामंडन किया जाता है वहीं विवाह संस्था के बाहर का मातृत्व उसके लिए सबसे बड़ा कलंक बन जाता है । विज्ञान ने आज मातृत्व की संभावनाओं से स्त्री को मुक्ति दिलाई है । स्त्री के लिए अनेक द्वार खोले हैं । गर्भपात के अधिकार एवं गर्भनिरोधक साधन के ज़रिए स्त्री ने अनचाहे मातृत्व के आतंक से छुटकारा पाया है । आज नारीवादियों द्वारा मातृत्व को व्यापक सन्दर्भ में देखने की पहल की जा रही है । मृदुला गर्ग के शब्दों में- "पर आज का नारीवाद, मातृत्व को व्यापक संदर्भ दे रहा है । पोषक तत्व के रूप में मान्यता देकर, उसे स्त्री का सहजात गुण बतला रहा है । गर्भ गिराने के साथ-साथ, बिना विवाह ही नहीं, बिना पुरुष संसर्ग, गर्भधारण करने का अधिकार माँग रहा है ।"[1]

स्त्रियों में बढ़ती शिक्षा दर, उनकी आर्थिक स्वतन्त्रता ने विवाह संस्था के भीतर अपनी स्वतन्त्र पहचान की इच्छा को पुख्ता किया है । आज वे अपनी अस्मिता को किसी भी हालत में दाँव पर लगाने केलिए तैयार नहीं । जर्जरित रिश्तों की नींव पर वह अपनी पहचान की इमारत को खड़ा करना नहीं चाहती इसलिए नाते-रिश्ते आज टूटते- बिखरते नज़र आ रहे हैं, "लेकिन समय के साथ-साथ शिक्षा, जागरूकता, आर्थिक स्वतन्त्रता और बाहरी दुनिया से बढ़ते रिश्तों ने उसके भीतर इस बोध को जगाया कि रिश्तों से परे भी उसकी अपनी एक स्वतन्त्र सत्ता है.... अपनी अस्मिता है कि वह भी समाज की एक स्वतन्त्र जीवन्त इकाई है । पर इस बोध के जागते ही सबसे पहली टक्कर उसे रिश्तों से ही लेनी पड़ी जो अभी तक पूरी तरह उस पर कब्जा जमाए बैठे थे ।"[2] समाज में अकेली स्त्री की संख्या में

---

1 राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा (सं) अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य पृ. 273

2. मन्नू भंडारी एक कहानी यह भी पृ. 110

बढ़ोत्तरी हो रही है जो परिवार और विवाह से ज्यादा अपनी कैरियर पर ध्यान देती नज़र आ रही है, व्यक्तित्व विकास के अवसरों को आज़मा रही है । संक्षेप में विवाह के प्रति उसके नज़रिए में बदलाव आया है । अब स्त्री विवाह को दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के बीच एक पारस्परिक समझौते से उत्पन्न संबंध स्वीकारती है । यदि यह संबंध उसको अपेक्षित सुख नहीं दे पाता तो वह इसे तोड़कर स्वतंत्र रहना ज़्यादा बेहतर समझती है ।

समाज में परिवार भी स्त्री के दलन, शोषण पर टिका हुआ है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परिवार का मुख्य कार्यकर्ता पुरुष होता है, बेटे महत्वपूर्ण हो जाते हैं । बेटी का परिवार में कोई स्थान नहीं होता उसे किसी और की अमानत की तरह पाला-पोसा जाता है। यौन शुचिता और कौमार्य के मिथक से उसे आतंकित रखा जाता है जिससे घर के बाहर निकलने के अवसर से वह वंचित हो जाती है । उसमें आत्मविश्वास की कमी आती है । समाज के साथ संवाद के अभाव में उसके व्यक्तित्व का उचित विकास नहीं हो पाता ।

स्त्री शिक्षा, परिवार की आर्थिक स्थिति, तथा बाज़ार द्वारा गृहस्थी के सुविधाजनक उपकरणों को जुटाए जाने के कारण स्त्री को परिवार से बाहर निकलने का अवसर मिला। परिवार से बाहर रोज़गार केलिए निकली कामकाजी स्त्री की हैसियत में थोडा परिवर्तन तो ज़रूर हुआ। लेकिन स्त्री को घर और बाहर की दोहरी बोझ का अभिशाप झेलना पड़ रहा है । उसकी आय से परिवार की आय बढ़ी तो ज़रूर है । लेकिन आज भी उसकी आय में उसके पति का हक माना जाता है । उषा महाजन लिखती हैं - "कामकाजी औरत की प्रतिष्ठा परिवार में बढ़ी ज़रूर है, लेकिन सिर्फ पैसा कमाकर लानेवाले एक औजार के रूप में, न कि एक काबिल इन्सान के रूप में।"[1] परिवार एवं परिवार के बाहर श्रम का लैंगिक विभजन स्त्री को पुरुष पर आर्थिक रूप से निर्भर बनाए रखता है । परिवार में स्त्री श्रम को कमतर करके आंका जाता है । परिवार के सदस्यों की देखभाल की जिम्मेदारी स्त्री पर होती है ।

---

1. उषा महाजन बाधाओं के बावजूद नई औरत पृ. 39

इसे सिर्फ स्त्री का कर्तव्य माना जाता है । इस श्रम का कोई मूल्य ही नहीं होता । क्षमा शर्मा के अनुसार स्त्री के इस श्रम को 'केयर इकानामी' का नाम दिया जाता है । स्त्री पुरुष के बीच मौजूद श्रम विभाजन स्त्री विरोधी एवं पुरुष की सत्ता को पुख्ता करता है, "पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री और पुरुष दोनों ही उत्पादन में लगे हुए हैं लेकिन पुरुष सत्ता ने एक खास उत्पादन पद्धति को अपनाया हुआ है । पुरुष जो कुछ करता है उसकी कीमत आंकी जाती है इसलिए उसकी पहचान और अस्मिता विशिष्ट मानी जाती है । दूसरी ओर स्त्री श्रम का मूल्यांकन नहीं हुआ । यह मूल्यांकन पुरुष ने मनमाने ढंग से किया है।"[1] स्त्री आज भी श्रम बाज़ार में निचले पायदान पर खड़ी है और कम वेतन पाती है जिससे उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता ।

परिवार में स्त्री को पुरुष की हिंसा का शिकार भी होना पड़ता है, जिसे स्त्री सहर्ष स्वीकार लेती है । सामाजिक तौर पर घरेलू हिंसा को वैवाहिक जीवन का सहज हिस्सा माना जाता है और पुरुष का विशेषाधिकार जिसके बल पर वह स्त्री पर अपना वर्चस्व बनाए रखता है । लवलीन के शब्दों में- "हिंसा का पहला पाठ पुरुष घर में ही देखता है, फिर सीखता ! पुरुष होने मात्र से यह उसे समाज द्वारा दिया गया 'विशेषाधिकार' है कि वह घर में अपना वर्चस्व स्थापित करने केलिए पत्नी की पिटाई करे।"[2] लगातार प्रताड़ना के बाद ही कोई स्त्री इस आधार पर कानून का सहारा लेती है । लेकिन महज इसकी वजह से वह पुरुष से तलाक नहीं लेती । एकल परिवारों में घरेलू हिंसा बढ़ी है । आधुनिक जीवन के तनाव, प्रतिस्पर्द्धा के साथ-साथ स्त्री अस्मिता की चेतना इसमें अहम भूमिका निभा रही है।

पितृसत्ता द्वारा स्त्री को परंपरा एवं धर्म के नाम पर उन चीज़ों से वंचित रखा गया जो उसे ताकतवर बनाती है । संपत्ति पर भी उसने अपना अधिकार जमाया और स्त्री को संपत्ति

---

1 प्रभा खेतान स्त्री धर्म और परंपरा -पृ. 52

2. लवलीन प्रेम के साथ पिटाई पृ. 47

से वंचित रखा । आज भी दुनिया की 98 प्रतिशत पूँजी पर सिर्फ पुरुषों का कब्ज़ा है । जिसे पुरुष सिर्फ अपने वैध संतान को ही हस्तांतरित करना चाहता है । इसी उद्देश्य से उसने विवाह संस्था को स्थापित किया जिसके ज़रिए स्त्री उसकी मिल्कियत बन जाती है और वह उसे वैध संतान प्रदान करती है । सत्ता और संपत्ति के केन्द्र में पुरुष के हस्तक्षेप के कारण स्त्री कानूनी तौर पर पुरुष के समान अधिकारों को हासिल करने पर भी उनसे वंचित रह जाती है । इसी वजह से आज भी उसकी स्वतन्त्रता, समानता की मांग मात्र मांग बनकर रह जाती है । इस ओर इशारा करते हुए अरविन्द जैन लिखते हैं "जब तक उत्तराधिकार कानूनों के माध्यम से दुनिया के तमाम उत्पादन के साधनों और विवाह संस्था (और वेश्यावृत्ति व्यवसाय) के आधार पर उत्पत्ति के साधनों (यानी स्त्री देह, योनि, कोख) पर पुरुष वर्चस्व बना रहेगा या कहे कि पूँजी पर पुत्राधिकार बना रहेगा, तब तक नारी मुक्ति, समानाधिकार, न्याय, स्वतन्त्रता, सम्मान, पहचान या गरिमा का सपना साकार होना असंभव है । पूँजी में बराबर बँटवारा इतनी आसानी से पितृसत्ता करनेवाली भी नहीं ।"[1] अपनी सत्ता को बुलन्द करने के इरादे से तमाम कानून भी उसने अपने ही हित में रचे । नज़ीर के तौर पर उत्तराधिकार कानून, जिसकी जड़ में पुरुष वर्चस्ववादी पुरानी परंपरा ही गहरे पैठी हुई है ।

इन सच्चाईयों को उघाड़कर समाज में छिपी स्त्री विरोधी मानसिकता एवं अन्तर्विरोधों को स्त्री विमर्श के ज़रिए उजागार करने का कार्य किया जा रहा है, "जब से स्त्री विमर्श सामने आया है तभी से भारतीय वर्चस्ववाद के मूल में छिपी स्त्री विरोधी मानसिकता, अन्तर्विरोधों का स्पष्ट ज्ञान हमें मिलना शुरु हुआ है कि कैसे स्त्री विरोध का अभियान सदियों से चलता आया है ।"[2] आज स्त्री के भ्रम टूट रहे हैं कि समाज में स्त्री को देवी का दर्जा देकर उसका जो सम्मान किया जाता रहा वास्तव में वह भी स्त्री को अपने वश में बनाये रखने का षडयन्त्र मात्र था, "पहली बार स्त्री को पता चला है कि देवी होने के जिस अभिमान से वह

---

1 अरविन्द जैन न्यायक्षेत्रे अन्यायक्षेत्रे पृ. 270
2. राकेश कुमार नारीवादी विमर्श - पृ 60

मरी जा रही थी वह दरअसल उसकी महानता का आख्यान नहीं, मर्दों द्वारा सदियों से बनाया गया ऐसा विचार भर था जिसने कभी पूजकर तो कभी पीटकर अपनी सत्ता कायम कर रखी थी।"[1]

पुरुष वर्चस्व के बरक्स खड़ा स्त्री विमर्श उस संस्कृति, साहित्य और भाषा पर भी प्रश्न चिह्न लगा रहा है जिसे रचने में पुरुष ने अहम भूमिका निभाई है, जहाँ हर कहीं स्त्री स्वर दबा, कुचला और रौंदा हुआ है । उपनिषदों, स्मृति ग्रन्थों एवं संस्कृत की पुस्तकों में स्त्री एक रीढहीन, विनम्रता वाले सात्विक गुणों से भरपूर है । अनामिका के शब्दों में "इससे बड़ा सांस्कृतिक षडयंत्र कोई हो ही नहीं सकता कि सीता-सावित्री जैसी बागी स्त्रियों को एक मूक आज्ञाकारिता से एकाकार करके देखा जाए । न सीता कठपुतली थी, न सावित्री-दोनों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व थे और समय आने पर दोनों ने निर्भोक निर्णय का तेज दिखाया यह विडंबना ही है कि अन्यायी-असंस्कृत और भ्रष्ट पति की भी मूक प्रतिछाया बनकर रहनेवाली दीन-हीन स्त्रियों को 'सीता-सावित्री' कहा जाता है !"[2] सीता से संबंधित मिथ निश्शब्द समर्पण (डोसिलिटी) को तोड़ने का प्रयास किया है । सीता के साथ-साथ सावित्री के चरित्र को उद्घाटित करते हुए यह दिखाने का कार्य किया है कि सीता-सावित्री अपने समय की विद्रोही स्त्रियाँ थीं, जिन्हें पति की परछाई के रूप में पेश किया और पातिव्रत्य धर्म स्त्री के ज़ेहन में कूट-कूटकर भरने केलिए सीता-सावित्री को एक आदर्श, पतिव्रता चरित्र की तरह उभारा ।

स्त्री विमर्श द्वारा समाज में प्रचलित भाषा पर भी प्रश्न चिह्न लगाए जा रहे हैं। स्त्री की अपनी भाषा के अभाव में उसे पितृसत्ता की भाषा में अपने अनुभवों को व्यक्त करना पड़ता है । इसी सच्चाई पर राजेन्द्र यादव ने यों टिप्पणी की हैं - "अपने निजी मुहावरों के बावजूद स्त्री की अपनी कोई भाषा नहीं होती । वह भी मर्द की ही होती है जो स्त्री को शक्ति

---

1. क्षमा शर्मा स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य पृ. 24
2. अनामिका मन मांझने की ज़रूरत पृ. 13

संपन्न होने का स्थायी भ्रम देती है ।"[1] स्त्री अपने अनुभवों को प्रस्तुत भाषा में पूर्ण रूप से अभिव्यक्त नहीं कर पाती और न ही पुल्लिंगवादी भाषाई संरचना को पूरी तरह से तोड़ पा रही है, "स्त्री केन्द्रिक चिन्तन की निर्णायक विशेषता भाषा में पुरुष-वर्चस्ववाद के इस ढाँचे को तोड़ने की है । प्रचलित कोई भी भाषा शिशन-केन्द्रिकता से इस कदर संचालित होती है (हिन्दी तो खूब ही है) कि वह स्त्री अनुभव को पूरी तरह व्यक्त करने में असमर्थ ही रहती है । यों भाषा एक सामाजिक संबंध है, लेकिन सदियों से पुरुषों द्वारा स्व-केन्द्रिक अनुभवों का निर्माण करने के कारण स्त्री अनुभव को बहुत दूर तक खारिज कर चुकी है । उस दी हुई भाषा के स्तरों एवं संरचना को तोडे बिना स्त्री को वाणी नहीं मिलती । स्त्रियाँ जहाँ काम करती है, वहाँ उन्हें शिशन-केन्द्रिक भाषा के अतिचार का सामना करना पड़ता है । यह स्थिति कितनी भयावह और सार्वजनिक है कि 'लेना' 'देना' लेंगी, देंगी जैसी मामूली क्रियाओं तक को मर्दों द्वारा द्विअर्थी बना दिया जाता है ।"[2] सुधीश पचौरी के अनुसार हिन्दी साहित्य का इतिहास चाहे वह रामचन्द्र शुक्ल का हो या हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का मध्यकालीन विमर्श हो पुल्लिंग केन्द्रित भाषा का इतिहास है । समकालीन साहित्य में यदि हिन्दी का स्त्री लेखन हाशिए पर है तो उसकी वजह प्रचलित वर्चस्ववादी भाषा स्त्री की वाणी नहीं बन पाती। सुधीश पचौरी कहते हैं कि स्त्री केलिए निजी भाषा को खोजने की बात बहुत कम लेखिकाएँ कर रही है । भाषा की ज़रूरत को लेखिकाओं ने भी महसूस किया है । भाषा पर अपने गहन विचार प्रकट करते हुए प्रभा खेतान लिखती है, "खुद कुछ कहने केलिए स्त्री को पुरुषों की भाषा सीखनी पड़ती है । लेकिन यह तो स्त्री की अपनी भाषा नहीं पितृसत्ता की भाषा है, जो लिंग विभाजन पर आधारित है । ऐसी भाषा है जहाँ पुरुष केलिए श्रेष्ठता का संबोधन प्रयुक्त किया जाता है स्त्री केलिए नहीं । मसलन राजा, धर्मगुरु आदि को आदरसूचक रूप से संबोधित करते हैं मगर स्त्री को नहीं, पिता थे और माँ थी आदरसूचक रूप में माँ थे नहीं कहा जाता । भाषा में यह भेद-भाव, स्त्री की हीनता को पुनर्स्थापित करती

---

1. राजेन्द्र यादव (सं) देहरि भई विदेस पृ. 14
2. सुधीश पचौरी उत्तर आधुनिक साहित्यिक विमर्श पृ 121

है। इसका यह अर्थ भी हुआ कि हम स्त्रियाँ अपनी लड़ाई, दूसरों के हथियारों से लड़ रही है।"[1] उनके अनुसार पुल्लिंग केन्द्रित भाषा का प्रयोग स्त्री के अनुभवों एवं उसके यथार्थ को सही मायने में अर्थवत्ता प्रदान नहीं कर सकता ।

साहित्य में स्त्री विमर्श द्वारा 'स्त्री दृष्टि' की पेशकश की जा रही है । इसके ज़रिए स्त्री की तरह पढने और स्त्री की तरह अनुभव करने की पहल की जा रही है । स्त्री दृष्टि सहजात दशा न होकर अर्जित स्थिति है । स्त्री में ही स्त्री दृष्टि हो ऐसा नहीं है, पुरुष में भी स्त्री दृष्टि हो सकती है, "सिर्फ स्त्री होने के नाते 'स्त्री दृष्टि' प्राप्त नहीं हो सकती । स्त्रियाँ स्वयं की दुनिया को एक मानक पुरुष दृष्टि से देखने की इतनी अभ्यस्त होती हैं कि उन्हें वही अपनी दृष्टि 'स्त्री की दृष्टि' महसूस होती है । कई स्त्री रचनाकारों द्वारा स्त्री को इसी पुरुष दृष्टि से परखा गया है । इन स्त्री रचनाकारों को हाशिये पर रखकर बात करनी होगी जो पुरुष दृष्टि से आक्रान्त हैं एवं पुरुषवादी नज़रिए तक पहुँचने को स्त्री की मुक्ति में शामिल करती है । इसके समानान्तर पुरुषों में 'स्त्री दृष्टि' उसी तरह संभव हो सकती है जिस तरह स्त्रियों में 'पुरुष-दृष्टि'।"[2] स्त्री विमर्श द्वारा देखने और परखने का एक नया नज़रिया पाठकों को प्रदान किया जा रहा है । 'बलात्कार' जैसी घटना को महज एक घटना मानने, बिना किसी अपराधबोध के अपने जीवन को आगे बढाने का नज़रिया प्रदान करते हुए अगर पाठकों को झकझोरता है, सोचने पर विवश करता है तो यह स्त्री विमर्श का अवदान ही होगा । लवलीन के शब्दों में - "हमारी ज़रा-सी मेहनत और साहस, विचारणा और प्रेरणा किसी पाठक को मुंदी-भ्रमित आँखें खोलती है या उसे सोचने पर विवश करती है तो यह अवदान ही स्त्री विमर्श को ज़िन्दा रखेगा ।"[3]

समकालीन संदर्भ में स्त्री-विमर्श को नई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ रहा है। भूमण्डलीकरण के तहत स्त्री की मुक्ति का दावा किया जा रहा है, लेकिन वास्तविकता तो

---

1. प्रभा खेतान कहाँ लिख पाती है हम सच ? पृ. 33
2. रेखा कस्तवार स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ पृ. 22
3. लवलीन प्रेम के साथ पिटाई पृ. 28

यह है कि स्त्री को घर से बाहर निकालकर बाज़ार के केन्द्र में ला खड़ा कर दिया है । स्त्री को उजरती श्रमिक और पण्य वस्तु में तब्दील किया जा रहा है । अभयकुमार दुबे के शब्दों में - "लेकिन, महिला सशक्तीकरण के इस भूमंडलीकृत अभियान का एक दूसरा पहलू भी है जो कहीं अधिक सटीक और विश्वसनीय ढंग से साबित करता है कि भूमंडलीकरण ने औरतों को अतीत की किसी भी कालावधि के मुकाबले अधिक निर्ममता और संपूर्णता से एक बिकाऊ जिंस में बदल दिया है ।"[1] समाज एवं विभिन्न संस्थाओं में मौजूद लैंगिक अधीनस्थता का लाभ उठाकर स्त्री के देह और श्रम पर निजी नियंत्रण को सार्वजनिक नियंत्रण में बदल रहा है । स्त्रियों द्वारा आधुनिक तकनीक को अपनाने एवं प्रशिक्षण पाने का मसला भी संबंधित देश और समाज में सदियों से चले आ रहे लैंगिक संबंधों के हिसाब से ही तय होने लगा है । कोरिया, श्रीलंका, भारत जैसे देशों में स्त्रियाँ प्रौद्योगिकीय प्रशिक्षण से वंचित रही । भूमण्डलीकरण ने पितृसत्ता की जड़ों को ध्वस्त करने के बजाय और अधिक पुख्ता किया है । आधुनिकीकरण को पितृसत्ता की सेवा में लगा दिया । स्त्री पुरुष संबंधों के पारंपरिक वैषम्य को टूटने ही नहीं दिया। फैक्ट्री एवं दफ्तरों में स्त्री को यौन शोषण का शिकार होना पड़ रहा है । आज समाज में स्त्री के खिलाफ हिंसा एवं स्त्री-पुरुष असमानता घटने की बजाय बढ़ी है ।

भूमंण्डलीकृत समाज में स्त्री भोक्ता और भोग्या दोनों है । स्त्री केलिए उपभोक्ता और उत्पादक होने का रास्ता खुला है । उत्पाद बेचती स्त्री आज उत्पाद में तब्दील होती जा रही है। प्रभा खेतान लिखती है -"सामाजिक मानस में यह बात और गहरे धंसती जा रही है कि स्त्री महज 'देह' है, मनुष्य नहीं ।"[2] सौन्दर्य प्रतियोगिताओं का मकसद सौन्दर्य प्रतिभा को खोज निकालना नहीं बल्कि बाज़ार केलिए एक चेहरा ढूँढना है । विश्व ब्रह्माण्ड सुन्दरियाँ सौन्दर्य प्रतियोगिताओं के ज़रिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों केलिए उपभोक्ता जुटाने का कार्य कर रही हैं । आजीवन सुन्दर दिखने की मंशा आज दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है जो डाइटिंग

---

1. अभयकुमार दुबे भारत का भूमण्डलीकरण पृ. 222
2. प्रभा खेतान -भूमण्डलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र पृ. 235

इंडस्ट्री, कास्मेटिक इंडस्ट्री, कास्मेटिक सर्जरी इंडस्ट्री जैसे उद्योग धंधे को बढावा दे रहा है। स्त्री को खुद के खिलाफ खड़ा किया जा रहा है । सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ स्त्री केलिए घातक सिद्ध होती है । मधुकिश्वर लिखती है "यह संस्कृति नारी के बीच एक दूषित प्रतिद्वंद्विता पैदा करती है और उसमें आत्मकेन्द्रित होते जाने तथा अन्य स्त्रियों को प्रतिद्वंद्वी मानने के कारण खुद के खिलाफ ही एक घृणा को जन्म देती है । वह एक ऐसी नारी को जन्म देती है, जो पुरुष का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने को आतुर है । यह नारी को निरंतर एकायामी जीव में बदलता चला जाता है जिसे पुरुष आसानी से बरगला सकता है, क्योंकि वह खुद को पुरुष की ही आँखों से देखना चाहती है।"[1] सौन्दर्य उद्योग के दलदल में धँसती स्त्रियों को आगाह करने का कार्य स्त्री विमर्श द्वारा किया जा रहा है । आज स्त्री अपने देह पर जिस मालिकाना हक के अभिमान से आश्वस्त है उसका वह देह बाज़ार के केन्द्र में होते हुए भी बाहरी शक्तियों द्वारा नियंत्रित है।

बाज़ार ने आज एक नयी स्त्री छवि का निर्माण किया है । यह स्त्री पवर वूमन है जो पुरुषों के बराबर पैसा कमा रही है, अपने इशारों पर पुरुषों को नचा रही है । लेकिन गौरतलब बात यह है कि यह पवर वूमन घर और बाहर के दोहरे बोझ तले दबी जा रही है। संपत्ति, व्यापार के क्षेत्रों में जहाँ सिर्फ पुरुषों का एकाधिकार था स्त्रियों ने हस्तक्षेप किया है, " 'एंड संस' या 'एंड ब्रदर्स' की व्यापार-संस्कृति से निकलकर जो घराने पब्लिक लिमिटेड कंपनी बनाकर 'कॉरपोरेट हाउस' हो गए हैं । वहाँ पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ थोड़ा आसानी से डायरेक्टर या मैनेजिंग डायरेक्टर हो पाई हैं । हालाँकि ऐसे घरानों में भी स्त्रियों को यह अधिकार और पद स्वेच्छा से नहीं सौंप दिए गए ।"[2] स्त्रियाँ प्राप्त अवसरों का उचित लाभ उठा रही है । यह संख्या में तुच्छ होते हुए भी उनकी उपलब्धि ही मानी जाएगी । विज्ञापन ने स्त्री के गोपनीय सन्दर्भों को सार्वजनिक चर्चा में लाना संभव बनाया, "नेपकिन के विज्ञापन इस लज्जा को अनुपस्थित करते हैं । वे उसकी जगह लड़की का अपने काम पर भरोसा

---

1. राजकिशोर (सं) अश्लीलता का हमला पृ. 66
2. अरविन्द जैन औरत अस्तित्व और अस्मिता पृ. 56-57

और आज़ादी वापस लाते हैं । पत्रिकाओं और टीवी पर हज़ारों बार आता यह विज्ञापन एक ब्रांड का होकर लड़की को एक लज्जाविहीन ब्रांड बनाता है लेकिन जो व्हिस्पर के दायरे में नहीं भी है उन्हें भी लज्जित होने से मना करता है । मासिक धर्म की वजह से पुरानी औरतों को लाज और आत्मनिषेध झेलने पड़ते थे । अब यह सब नहीं होता।"[1] स्त्री को मात्र सुविधा ही प्रदान न की बल्कि इसे स्त्री स्वतन्त्रता के साथ भी जोड़कर देखा गया । सेनेटरी नेपकीन के ज़रिए स्त्री का घर से बाहर निकलना संभव हुआ । गर्भ निरोधकों के विज्ञापनों ने यौन शुचिता, अनचाहे मातृत्व के आतंक से स्त्री को मुक्ति दिलाई । इस तरह भूमण्डलीकरण के दौर में स्त्री को कुछ फायदे भी हुए हैं ।

समाज के अन्तर्विरोधों, पितृसत्ता की स्त्री विरोधी नीतियों को उद्‌घाटित कर, पितृसत्ता को चिन्दियों में बिखेरते हुए स्त्री विमर्श स्त्री को मानवीय गरिमा दिलाने की दिशा में कूच कर रहा है । वस्तु के बजाय स्त्री को व्यक्ति में तब्दील कर रहा है, स्त्री की तयशुदा भूमिकाओं को खारिज कर रहा है जिसके ज़रिए अब तक समाज द्वारा स्त्री को परिभाषित करने का प्रयास किया गया । स्त्री विमर्श द्वारा नए मूल्यों को गढ़ने का प्रयास किया जा रहा है जो स्त्री-पुरुष समानता पर आधारित हो । स्त्री विमर्श स्त्री मुक्ति आन्दोलन की उपज है ।

पश्चिम का स्त्री मुक्ति आन्दोलन

पश्चिम में स्त्री की स्थिति पुरुषों के मुकाबले पिछडी थी । वह दोयम दर्जे की नागरिक मानी जाती थी । तत्कालीन साहित्य ने स्त्री की इसी छवि को उभारा । स्त्री का अस्तित्व मात्र पुरुष केलिए ही माना गया था । उसके भोग्या रूप को ही अधिक तरजीह दिया गया जिससे वहाँ सौन्दर्य साधना और सौन्दर्य प्रसाधनों का तकनीकी ढंग से खूब विस्तार हुआ । इस तरह पश्चिमी स्त्री संपत्ति के अधिकार सहित सामाजिक-राजनीतिक अधिकारों से वंचित थी । उनकी इस सामाजिक-पारिवारिक अधीनस्थ स्थिति को धर्म, कानून और

---

1. राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभयकुमार दुबे पितृसत्ता के नये रूप पृ. 56

सामाजिक विधानों की स्वीकृति प्राप्त थी । सामान्तवाद के युग तक स्त्री की यह अमानवीय स्थिति जारी रही ।

औद्योगिक क्रान्ति के दौरान जब सामंती शिकंजे ढीले हुए तब स्त्री को घर की कैद से मुक्त होकर बाहर आने का मौका मिला । सामाजिक उत्पादन में स्त्रियों की भागीदारी बढ़ती चली गई । जिसने पहली बार स्त्रियों के भीतर सामाजिक अधिकारों की चेतना को जन्म दिया। समाज के शोषित, पीड़ित, दमित वर्गों ने स्वतंत्रता, समानता, मातृत्व के नारे को बुलन्द किया। तब जनतांत्रिक अधिकारों से वंचित स्त्रियों में अपनी स्थिति के विरुद्ध संघर्ष केलिए अलग से संगठित होने की चेतना पैदा हुई । अपनी अस्मिता या स्वतन्त्र पहचान के सवाल ने स्त्रियों के संगठित होने की ज़रूरत को अत्यधिक अनिवार्य बना दिया था । परिणामस्वरूप यूरोप-अमरीका में 18 वीं शताब्दी के अन्त और 19 वीं शताब्दी में स्त्री मुक्ति आन्दोलन विकसित हुआ जिसका सरोकार जनतन्त्र से है, "नारी मुक्ति आन्दोलन का संबंध जनतन्त्र से बहुत गहरा है और मानव-मुक्ति इसकी जननी है।"[1] स्त्री मुक्ति आन्दोलन का संबंध पुनर्जागरण काल के मानववाद और प्रबोधन काल तथा बुर्जआ जनवादी क्रान्तियों से था । मताधिकार और काम करने की अनुकूल और समान परिस्थितियाँ इसकी प्रारंभिक माँगें थी, बाद में इसका दायरा विस्तृत होता गया । स्त्री को एक साथ दो मोर्चों पर लड़ना पड़ा, पुरुष सत्ता के खिलाफ जिसने लिंग के आधार पर स्त्री को दोयम दर्जा दिया और पूँजीवादी संस्कृति के खिलाफ जो स्त्री को निकृष्ट कोटि का उजरती मज़दूर और निर्जीव पण्यवस्तु में तब्दील करने की साजिशें रच रहा था ।

प्रबोधन काल

सामाजिक उत्पादन में स्त्रियों की लगातार बढ़ती भागीदारी ने उनके भीतर मुक्ति चेतना का जो बीजारोपण किया उसकी पहली मुखर अभिव्यक्ति प्रबोधन काल के दौरान

---

1. रमणिका गुप्ता स्त्री विमर्शः कलम और कुदाल के बहाने पृ. 22

सामने आई। प्रबोधन काल में स्त्रियों के सामाजिक अधिकार एवं स्त्री-पुरुष समानता की माँग उठाई गई । इस काल के अधिकांश विचारकों ने स्त्रियों की पराधीनता को मनुष्य के प्राकृतिक अधिकारों का हनन माना । जाँ आँतुआँ कोन्दोर्से (1743-94) स्त्रियों की समानता के प्रबल पक्षधर रहे हैं। उनका मानना था कि स्त्रियों के बारे में समाज में मौजूद गहरे पूर्वग्रह उनकी असमानतापूर्ण सामाजिक स्थिति का बुनियादी कारण है । वे कानूनी समानता और शिक्षा के ज़रिए स्त्री मुक्ति को सम्भव मानते थे । प्रबोधन काल में स्त्री मुक्ति आन्दोलन की पीठिका का निर्माण हो चुका था ।

अमेरिकी क्रान्ति एवं फ्रांसीसी क्रान्ति

स्त्री मुक्ति आन्दोलन के इतिहास की शुरुआत अमेरिकी क्रान्ति एवं फ्रांसीसी क्रान्ति के दौरान हुई । अमेरिकी क्रान्ति के दौरान मर्सी वारेन और एबिगेल एडम्स के नेतृत्व में स्त्रियों ने पहली बार सामाजिक समानता के साथ मताधिकार और संपत्ति की माँग करते हुए जॉर्ज वाशिंगटन और टॉमस जैफर्सन पर इन मुद्दों को संविधान में शामिल करने के इरादे से दबाव डाला । लेकिन तत्कालीन बुर्जुआ वर्ग के एक बड़े हिस्से के विरोध के कारण यह संभव न हो सका ।

फ्रांसीसी क्रान्ति के दौरान यूरोप में संगठित स्त्री आन्दोलन की शुरुआत हुई । स्त्रियाँ जन-प्रदर्शनों सहित सभी राजनीतिक कार्यवाहियों में सक्रिय हिस्सेदारी निभा रही थीं । 'विमेनस रिवोल्यूशनरी क्लबों' का गठन हुआ जो आधुनिक विश्व इतिहास के प्रथम स्त्री-संगठन थे। इन संगठनों का प्रमुख ध्येय था, क्रान्तिकारी संघर्षों में भाग लेते हुए स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को किसी किस्म के लिंग भेद के बिना लागू करने की माँग उठाना । इसी लक्ष्य को मद्देनज़र रखते हुए स्त्रियों की पहली पत्रिका का प्रकाशन भी उसी दौरान हुआ । 'मनुष्य और नागरिक के अधिकारों की घोषणा' के मॉडल पर ओलिम्पी

द गूजे ने 'स्त्री और स्त्री नागरिक के अधिकारों की घोषणा' तैयार की जिसे 1791 में राष्ट्रीय असेम्बली में प्रस्तुत किया । इस ऐतिहासिक दस्तावेज में 'स्त्रियों पर पुरुषों के शासन' का विरोध करते हुए मताधिकार को अमल में लाने केलिए स्त्री-पुरुष के बीच पूर्ण सामाजिक- राजनीतिक समानता की माँग की गई ।

फांसीसी क्रन्ति के दौरान स्त्री-पुरुष समानता और स्त्रियों के समान अधिकारों के विचार को अस्वीकार कर दिया गया, लेकिन सामन्ती संबंधों पर चोट करने के साथ ही स्त्रियों की कानूनी स्थिति में कई महत्वपूर्ण बदलाव हुए-1791 में एक कानून स्त्री शिक्षा का प्रावधान, 1792 की एक आज्ञप्ति द्वारा स्त्रियों को कई नागरिक अधिकार प्रदान करना तथा 1794 में कन्वेंशन द्वारा पारित एक कानून द्वारा तलाक की प्रक्रिया को आसान बना देना आदि । थर्मिडोरियन प्रतिक्रिया के दौरान स्त्री आन्दोलन की उपलब्धियाँ फिर छिन गई । 1804 के नेपोलियनिक कोड और अन्य यूरोपीय देशों की बुर्जुआ नागरिक संहिताओं ने फिर से स्त्रियों के नागरिक अधिकारों को सीमित कर परिवार, शादी, तलाक, अभिभावकत्व और संपत्ति के अधिकारों के मामलों में उन्हें वैधिक तौर पर पूरी तरह पुरुषों के अधीन कर दिया।

ओलिम्पी द गूजे के दस्तावेज के बाद, बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियों के काल में सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज मेरी वोल्सटनक्राफ्ट की पुस्तक 'स्त्री के अधिकारों का औचित्य साधन' मानी जाती है । सन् 1844 ई. में फ्रांस की 'फ्लोरा ट्रिस्टन' ने महिलाओं की माँगें प्रस्तुत करने केलिए एक महिला संगठन की स्थापना की । इंग्लैण्ड की 'कैरोलीन नार्टन' ने महिलाओं को पुरुष के समान अधिकार दिये जाने की माँग को लेकर आन्दोलन शुरू किया, जो कुचल दिया गया था । गुलामी प्रथा विरोधी आन्दोलन, लिंगविभेद आन्दोलन और मज़दूर आन्दोलन से पश्चिम के स्त्री मुक्ति आन्दोलन को बल मिला ।

गुलामी प्रथा विरोधी आन्दोलन

अमेरिका में इस आन्दोलन से प्रभावित होकर पश्चिम की स्त्री अपने अधिकारों केलिए आवाज़ उठाने लगी । अश्वेत पुरुषों के साथ मिलकर अश्वेत स्त्रियों ने अपनी समस्याओं को उठाया, उनसे निजात पाने के तरीके ईजाद किए गए । इस आन्दोलन से श्वेत स्त्रियाँ भी प्रभावित हुई और अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं सचेत होकर अश्वेत स्त्रियों के साथ मिलकर स्त्री मुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया ।

सन् 1830 में गुलाम प्रथा के विरोध में आवाज़ उठी जिसे 'ओवलेशन मूवमेंट' कहा जाता है । अफ्रीकी देशों से पकड़कर लाए गए अश्वेत गुलामों ने इस आन्दोलन की शुरुआत की, जिन्हें आजीवन श्वेत लोगों की गुलामी करने केलिए बाध्य किया जाता था। इनमें बच्चे और स्त्रियाँ भी शामिल थीं । स्त्रियों की हालत बद से बदत्तर थी, इन्हें श्वेत लोगों के हवस का शिकार भी होना पड़ता । अपनी गिरी हुई स्थिति से उबरने एवं मानवीय दर्जा हासिल करने हेतु अश्वेत गुलाम वर्ग ने आवाज़ उठाई जिनमें प्रमुख थीं - 'साराह' और 'एंजीलाग्रीम'। बाद में यही स्त्रियाँ स्त्री मुक्ति आन्दोलन की सदस्य बनीं । सन् 1840 में 'एंटी स्लेवरी कन्वेंशन' की स्थापना हुई । इसमें 'एलीजाबेथ केंडी स्टानटेन' 'लूसीरी टीप', 'सूसान. बी. एंटोनी' ने भाग लिया । सन् 1840 में 'विरल गुलाम प्रथा उन्मूलन सभा' की आयोजना लंदन में हुई, तमाम उच्च स्थान पर पुरुष थे । स्त्रियों को भाग लेने का मौका तो मिला साथ ही उन्हें अपने दोयम दर्जे का एहसास भी हुआ क्योंकि उन्हें गलियों में बैठाया गया । इस के प्रतिक्रियास्वरूप 'सीनेका फाल कन्वेंशन' हुआ जिसमें तीन सौ महिलाओं ने 14 जुलाई 1848 में 'सीनेका कौउटरी कौउरीयर' में भाग लिया । यह पाँच दिनों तक चला । यही स्त्री मुक्ति आन्दोलन केलिए रास्ता साफ करता है और इसके लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है । इस आन्दोलन में स्त्री-पुरुष दोनों ने सक्रिय भूमिका निभाई । आन्दोलन में शामिल स्त्रियाँ

जो कि गुलामी प्रथा के साथ-साथ अपने मताधिकार केलिए भी संघर्ष कर रही थी, अब उनमें से कुछ इसी आन्दोलन को तरजीह देने लगी जिसकी वजह से स्त्री आन्दोलन का विभाजन हो गया । क्षमा शर्मा के शब्दों में "उस समय स्त्रियाँ सिर्फ अपने लिए ही नहीं, गुलामी की प्रथा के खिलाफ भी लड़ रही थी । उस समय जो पुरुष गुलाम थे उन्हें वोट का अधिकार मिल गया । मगर स्त्रियों को यह अधिकार तब भी नहीं मिला । उस समय महिलाओं के आन्दोलन का विभाजन हो गया । क्योंकि कुछ स्त्री नेताओं ने कहा कि हम चाहते हैं कि पहले गुलामी खत्म हो । हम स्त्रियों को गुलाम नहीं उन्हें एक नागरिक की हैसियत से देखना चाहते हैं । स्त्रियों के अधिकारों के बारे में बाद में सोचेंगे।"[1] अब गुलामी प्रथा के खात्मे केलिए स्त्रियाँ तन-मन से जुट गईं ।

लिंगवादी धारणा से प्रभावित स्त्री आन्दोलन

समाज में प्रचलित लिंग-विभेद को समाप्त कर, समाज में पुरुषों के समान स्त्रियों की समानता की माँग उठी । समाज स्त्री को दोयम दर्जे पर रखता आया है । शिक्षा एवं राजनीतिक अधिकारों के अभाव में स्त्रियाँ समाज में अधीनस्थ स्थिति में रहने को विवश है। इस वजह से वह निष्क्रिय कमज़ोर बन जाती है । समाज का ताना-बाना लिंग विभेद को पुख्ता करने में सहायक है, जिसके अनुसार स्त्री की पूर्णता पत्नीत्व और मातृत्व में ही मानी जाती है । स्त्री की काबिलियत को नज़रन्दाज़ कर उसे सिर्फ घरेलू कार्य और संतान के पालन-पोषण तक ही सीमित कर दिया जाता है । वास्तव में स्त्री 'जो' है उसे स्वीकारने केलिए समाज तैयार नहीं होता । स्त्री-पुरुष समानता, समान शिक्षा, कार्यक्षेत्र में समान अधिकार की माँगें स्त्री आन्दोलन में शामिल किए गए ।

लिंग विभेद ही स्त्रियों को शिक्षा न देने की प्रमुख वजह रही है । अगर शिक्षा दी जाती तो गृहणियों को मद्देनज़र रखते हुए ही । सन् 1828 के बाद स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में विशेष

---

1. मृणाल पाण्डे, क्षमा शर्मा (सं) बन्द गलियों के विरुद्ध पृ 274

प्रगति हुई । स्त्रियों द्वारा पुरुषों के समान उच्च शिक्षा के अवसर मुहैया कराने की माँग की गई जिसमें 'एमा विलार्ड, 'मइरटीला मिलर' ने महत्वपूर्ण योगदान दिया । स्कूल एवं संस्थाओं की भरमार लग गई वहाँ स्त्रियों को घरेलू विषयों के अतिरिक्त अन्य विषयों से भी परिचित कराया गया । लेकिन उच्च शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों का अभाव रहा । समाज के सहयोग की कोई गुंजाइश न थी । सन् 1872 में कानूनी शिक्षा भी हासिल हुई । मौका पाते ही स्त्री पुरुषों के बराबर हर क्षेत्र में आगे बढ़ने लगी । समाज से लिंग विभेद के नामोनिशान को मिटाने, शिक्षा में समानता की माँग को प्रश्रय देने की दिशा में स्त्री आन्दोलन की भूमिका सराहनीय रही है ।

मज़दूर आन्दोलन

समाज के हर क्षेत्र में दोयम दर्जे की नागरिक स्त्री की स्थिति 'श्रम' के क्षेत्र में भी बेहद अफसोसजनक रही है । उनका कार्यक्षेत्र कपड़ों की मिलें व जूते की फैक्टरियाँ हैं। पुरुषों के बराबर काम करने पर भी उन्हें कम पारिश्रमिक दिया जाता है। आगे चलकर उनका कार्यक्षेत्र बढने लगा । लेकिन वेतन के मामले में उनकी यथास्थिति बनी रही । तेरह से चौदह घंटे तक उन्हें खटना पड़ता । काम का घंटा घटाने के उद्देश्य से 1835 में न्यू जर्सी में हडताल हुई जिसमें पुरुषों ने भी सहयोग दिया । सन् 1830 से 1840 में समान वेतन और अच्छी स्थिति के लिए संघर्ष शुरू हुआ, "8 मार्च 1857 ई. को न्यूयार्क की सड़कों पर कपड़ा मिलों की कामगार स्त्रियों ने अधिक वेतन और काम के घंटे घटाने की माँग को लेकर एक असफल प्रदर्शन किया था जिसे उस समय की ट्रेड यूनियनों ने भी पसन्द किया।"[1] आज भी इसी संघर्ष की यादगार में 8 मार्च का दिन 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस' के रूप में मनाया जाता है । 8 मार्च को 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस' के रूप में मनाने का प्रस्ताव सर्वप्रथम सन् 1910 में रूस की क्रांतिकारी नेता क्लारा जेट किन द्वारा रखा गया था ।

---

1. डॉ. अमर ज्योति महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि पृ 11

युद्ध के विरुद्ध स्त्रियों ने जुलूस निकाले और युद्ध विरोधी नारे लगाए । प्रथम विश्व युद्ध के बाद इस आन्दोलन में गति आई । मार्च 1923 ई. में हज़ारों स्त्रियों ने पेरिस की सड़कों पर प्रदर्शन किया । उनके युद्ध विरोधी नारों से सारा यूरोप गूँजने लगा । 1936 ई. में जर्मनी में स्त्रियों को युद्ध हेतु अधिक बच्चे पैदा करने केलिए प्रेरित किया जा रहा था इसके विरुद्ध फासिज्म का विरोध करते हुए हज़ारों स्पेनिश स्त्रियों ने प्रदर्शन किया । अब महिला अधिकारों की लड़ाई के साथ निरस्त्रीकरण और शांति के पक्ष में भी ज़ोरदार आवाज़ उठाई गई।

स्त्री मुक्ति आन्दोलन का पहला चरण

स्त्री के सन्दर्भ में 'मुक्ति' या 'स्वतन्त्रता' शब्द पहले से ही प्रयुक्त होता रहा है जिसका अर्थ विभिन्न कालों में निरंतर बदलता रहा । पहले स्त्री के संदर्भ में स्वतन्त्रता का अर्थ अनुचित प्रतिबन्धों से मुक्ति था तो कभी मताधिकार की प्राप्ति और कभी काम के घंटे को घटाने को लेकर रहा ।

पश्चिम में स्त्री मुक्ति आन्दोलन के प्रथम चरण का प्रारंभ मताधिकार की माँग से हुआ। महिलाओं केलिए मतदान के अधिकार की मांग को लेकर मत भेद कायम था । इंग्लैंड और अमेरिका में जब महिलाओं के मतदान का आन्दोलन शुरू हुआ था तब वहाँ हर वयस्क नागरिक को मतदान का अधिकार प्राप्त न था । वह स्त्री हो या पुरुष, स्त्रियों के किसी भी हिस्से को यह अधिकार प्राप्त न था । मतदान के आन्दोलन का एक हिस्सा यहाँ तक कि सभी स्त्रियों के मतदान के अधिकार का भी पक्षधर नहीं था । अमेरिका की कैरी चैपमैन कैट (Carrie chapman catt 1858-1947) सिर्फ समाज के कुलीन तबके के मतदान के अधिकार की पक्षधर थी, जिसका समर्थन यूरोपीय नारीवाद के एक हिस्से ने भी किया। कैरी चैपमैन कैट एवं अन्य प्रमुख महिलाओं द्वारा तैयार किये गये 'National American Woman Sufferage principles' का प्रारंभ इसी उद्देश्य से हुआ । बाद में कर देने

वाली महिलाओं को भी मतदान का अधिकार देने की माँग उठायी गई । इसके विपरीत, एक दूसरी धारा वह थी जो स्त्रियों के साथ ही मज़दूर-वर्ग, काले लोगों तथा अप्रवासी महिलाओं के मतदान के अधिकार की मांग उठा रही थी । ब्रिटेन और अमरीका में 20 वीं सदी के प्रारंभ में मतदान का अधिकार स्त्री आन्दोलन की एक प्रमुख मांग बन गया था ।

अमेरिका में सन् 1830 ई. के आसापास स्त्रियों ने राजीनिक अधिकारों की माँग की। 'अमेरिकी नारी मुक्ति समिति' की स्थापना की लुक्रेटिया मांट ने । सन् 1869 ई. में अमेरिका में मतदान का अधिकार देना प्रारंभ हुआ । इसी साल 'सुसन बी ऑथोनी' ने 'नारी वोट' केलिए एक राष्ट्रीय समिति की स्थापना की । सन् 1893 में कालोराडो तथा सन् 1899 में इडाहो और उडाह में स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हुआ । सन् 1917 में व्हाईट हाउस के सामने प्रदर्शन किया गया। स्त्रियों के अथक प्रयासों के फलस्वरूप सन् 1920 ई. में कानूनी वैधता प्रदान कर महिलाओं को मतदान का अधिकार प्रदान किया गया । स्त्रियों के मताधिकार आन्दोलन को शराब का धंधा करने वाले ठेकेदार, बड़े उद्योगपति, कैथोलिक चर्च तथा श्वेत वर्ग के विरोध का सामना करना पड़ा ।

इंग्लैंड में स्त्रियों को मतदान का अधिकार प्राप्त करने के लिए 86 साल तक कड़ा संघर्ष करना पड़ा । सन् 1831 ई. में मज़दूर श्रमिक वर्ग के राष्ट्रीय संगठन ने पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों के मताधिकार की माँग करने की अनुमति दी । एलिजाबेथ केडी स्टैन्टन ने 'सेनेकाफाल कन्वेंशन आफ 1848' लिखा जिसमें स्त्रियों के मतदान का अधिकार, संपत्ति का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, रोज़गार का अधिकार तथा राजनीति और गिरिजाघरों में सार्वजनिक भागीदारी के अधिकार की माँग उठायी थी । सन् 1867 ई. में जॉन स्टुअर्ट मिल स्त्रियों को वयस्क मताधिकार के दायरे में शामिल करने की ज़ोरदार तरफदारी कर रहे थे। उन्होंने संसद में स्त्री मताधिकार केलिए एक विधेयक प्रस्तुत किया जो पारित नहीं हो सका।

सन् 1869 ई. में टैक्स भरने वाली महिलाओं को नगरपालिका में मतदान का अधिकार प्रदान किया गया । सन् 1897 ई. में 'नेशनल यूनियन ऑफ सफरेज सोसाइटी' की स्थापना हुई । कई बार जुलूस निकाले, पार्लियामेंट में आवेदन-पत्र दिए गए । बरसों के अथक प्रयासों के फलस्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध में स्त्रियों के योगदान को मद्देनज़र रखते हुए सन् 1918 ई. में कुछ शर्तों सहित तथा सन् 1928 ई. में मतदान का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया ।

पश्चिम के अन्य देशों में मताधिकार केलिए आन्दोलन चले । धीरे-धीरे स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हुआ । सन् 1894 में न्यूजीलैंड में, सन् 1901 में आस्ट्रेलिया, सन् 1917 में कनाडा तथा फ्रांस में सन् 1932 में स्त्रियों को वोट का अधिकार दिया गया । पहली बार दक्षिण अफ्रीका में 1994 में रंगभेद रहित सभी महिलाओं को वोट का अधिकार दिया गया। सन् 1930 तक पश्चिम में महिलाओं को व्यापक राजनीतिक एवं कानूनी समानता के अधिकार प्राप्त हो चुके थे । राजनीतिक, शिक्षा, रोजगार आदि तमाम क्षेत्रों में महिलाएँ उपस्थित थीं । उनकी स्थिति में सुधार केलिए कई प्रकार की कल्याणकारी योजनाएँ भी बनाई गईं । इस प्रकार सन् 1930 से स्त्री मुक्ति आन्दोलन की गति धीमी पड़ गई ।

स्त्री मुक्ति आन्दोलन का दूसरा चरण

साठ के दशक के पश्चिमी स्त्री मुक्ति आन्दोलन का दूसरा चरण स्त्री शोषण के विरुद्ध एक बगावती उभार था जिसे द्वितीय विश्व युद्ध से प्रोत्साहन मिला । स्त्रियों ने महसूस किया कि कानूनी तौर पर प्राप्त समानता के बावजूद सामाजिक जीवन में व्यावहारिक तौर पर उनके साथ भेदभाव अब भी बरकरार है । अब तक की तमाम उपलब्धियों पर प्रश्न चिह्न लगने लगा । इस पर गौर करते हुए स्त्री मुक्ति आन्दोलन के दूसरे चरण की शुरुआत हुई जिसे सरला माहेश्वरी ने व्यक्त करते हुए लिखा है - "इस प्रकार के दो-तीन दशकों के बीतने के साथ ही क्रमशः नये सामाजिक यथार्थ की गहराई से जाँच की जाने लगी और

कानून तथा सिद्धान्तों के स्तर पर घोषित समानता के लक्ष्यों के विपरीत व्यवहार के स्तर पर सामाजिक जीवन में महिलाओं के प्रति जो भेदभाव बरकरार है, उस पर ध्यान दिया जाने लगा । राजनीति में महिलाओं की भागीदारी को स्वीकारने के बावजूद क्यों अब भी, राजनीतिक जीवन में महिलाओं का प्रतिनिधित्व पुरुषों से काफी कम है ? क्यों तमाम प्रकार के रोजगारों और पेशों में महिलाओं की संख्या पुरुषों के बराबर नहीं है ? क्यों अब भी समान काम केलिए समान वेतन के सिद्धान्त को सख्ती के साथ लागू नहीं किया जाता तथा वयों महिलाओं के साथ भेदभाव बरता जाता है ? क्यों परिवार का खर्च उठाने के बावजूद घरेलू कामों का अधिकांश बोझ महिलाओं पर ही पडता है ? क्यों महिलाओं को हमेशा सामूहिक हिंसा का शिकार बनना पड़ता है ? - इस प्रकार के तमाम प्रश्नों ने सर उठाना शुरू कर दिया, और फिर एक बार नये विद्रोही तेवर के साथ नारीवाद का उभार दिखाई देने लगा जो नवजागरण, ज्ञान-प्रसार से लेकर 19 वीं और 20 वीं सदी के प्रथमार्द्ध तक की सारी उपलब्धियों पर प्रश्न चिह्न लगाने लगा । '30 के दशक से लेकर '60 के दशक तक नारीवादी आन्दोलन के मौन रूप को भी पुरुष प्रधान विचारधाराओं के दमन का परिणाम बताये जाने लगा और नये रूप में नारी मुक्ति की आवाज़ उठने लगी ।"[1] सामाजिक नज़रिये को महिलाओं की स्थिति केलिए जिम्मेदार ठहराया गया ।

सन् 1949 में 'द सेकंड सेक्स' लिखकर सिमोन ने स्त्री मुक्ति आन्दोलन के बीच की चुप्पी को तोडा और पश्चिम में 'विमेन लिब' या 'स्त्री मुक्ति' की शुरुआत की । सन् 1963 में बेट्टी फ्राइडन ने 'द फेमनिन मिस्टिक' लिखकर स्त्रियों के असन्तोष को शब्दबद्ध किया । सन् 1966 ई. में आन्दोलन की अग्रणी संस्था 'नेशनल आर्गनाइज़ेशन आफ विमेन' (नाऊ) की स्थापना की । इसकी संस्थापक अध्यक्ष बेट्टी फ्राइडन थी । सन् 1970, 26 अगस्त में अमरीकी महिलाओं को मताधिकार मिलने की पचासवीं वर्षगाँठ मनाया गया। इस मौके पर न्यूयार्क, फिलाडेलिफया, वाशिंगटन, बोस्टन , पिट्सबर्ग, लास एंजिल्स की

---

1. सरला माहेश्वरी नारी प्रश्न पृ. 32-33

सड़कों पर स्त्रियों ने जुलूस निकाले तरह-तरह के नारे लगाए -"हमें आज़ाद करो... हमें पुरुषों के बराबर अधिकार दो..... हमारे साथ द्वितीय श्रेणी के नागरिकों का व्यवहार बन्द करो पुरुषों के बराबर नौकरियाँ और समान काम केलिए समान वेतन दो.... हम अपने शरीर पर अपना अधिकार चाहती हैं । लैंगिक भेदभाव बन्द करो.... स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है आदि ।"[1] भीतरी वस्त्रों को जलाते हुए यह जताने की कोशिश की कि स्त्रियाँ मात्र 'सेक्स अब्जेक्ट' नहीं है । अब आन्दोलन के उल्लेखनीय पहलू रहें समलैंगिकता, अवैध मातृत्व की मान्यता तथा मातृत्व से बचने के प्रयास । केट मिलेट की 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' और जर्मन ग्रीअर की 'फीमेल यूनिक' से इसे बढ़ावा मिला । भाषिक व शाब्दिक स्तर पर भी स्त्रियों की अनदेखी करने वाले शब्दों पर पुर्विचार करने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए उन्होंने मांग की कि 'मिसेज' और 'मिस' के बदले उन्हें 'मिज़' कहा जाए । ताकि उनके वैवाहिक स्तर से उनके व्यक्तित्व को न जोड़ा जाए । 'चेयरमैन' और 'हिस्ट्री' जैसे शब्दों को उन्होंने 'चेयरपर्सन' और 'हरस्टोरी' में बदलने की माँग की। इस तरह लिंग के आधार पर भेदभाव समाप्त करने की पहल की । स्त्रियों ने केट मिलेट को स्त्री मुक्ति आन्दोलन की माओ त्से तुंग कहा तो पुरुषों ने उसे 'पुरुषों को बधिया करने वाली' की संज्ञा दी । आन्दोलन के उग्र तेवर के कारण बेट्टी फ्राइडन आन्दोलन से अलग हो गई।

एक उचित लक्ष्य को लेकर शुरू किया गया स्त्री मुक्ति आन्दोलन अपनी राह से भटककर दिशाहीन हो गया । उसकी खामियों की ओर इशारा करते हुए कात्यायनी लिखती है "साठ के दशक का पश्चिमी नारीवादी आन्दोलन नारी-शोषण के विरुद्ध तथा यौन-उत्पीड़न के हर रूप के विरुद्ध एक बगावती उभार था । इस आन्दोलन की कोई सुनियोजित वैचारिक पूर्वपीठिका, सुविचारित दिशा और सुनिश्चित कार्यक्रम नहीं था । यह एक बगावत थी जो पश्चिमी उपभोक्ता संस्कृति के प्रतिक्रियास्वरूप पैदा हुई थी । पर विडंबना यह थी कि स्वयं इसकी दार्शनिक अन्तर्वस्तु भी वही थी और विकृत उच्श्रृंखल बुर्जुआ संस्कृति के

---

1 आशारानी व्होरा नारी-शोषण आईने और आयाम पृ. 242

नैतिक-सामाजिक मूल्य ही सारतः और प्रधानतः इसके भी मूल्य थे । इस अंध विद्रोह ने यौन-शोषण और यौन-उत्पीड़न पर खड़ी सामाजिक संस्थाओं की जगह मूल्यों-संस्थाओं की कोई समग्र वैकल्पिक व्यवस्था नहीं प्रस्तुत की और अराजकतावादी ढंग से सामाजिक-पारिवारिक संस्थाओं के अस्तित्व को ही काफी हद तक चुनौती दे डाली । विवाह, परिवार, एकल यौन-संबंधों आदि को पूरी तरह नकारने की ही चेष्टा की गयी । लगभग पूरी लड़ाई को पुरुष सत्ता के विरुद्ध केन्द्रित किया गया और इस सत्ता के ऐतिहासिक-सामाजिक-आर्थिक आधारों को जानने-समझने की कोई विशेष चेष्टा ही नहीं की गयी।"[1] स्त्रियाँ अब हर बात पर पुरुषों की बराबरी करने लगी जिसकी वजह से स्त्री-पुरुष संबंधों पर दरार पड़ने लगी, परिवार टूटने लगे।

लेकिन पश्चिम में स्त्रियाँ इस सच्चाई से वाकिफ हो गई हैं कि पुरुष के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता । इसके प्रतिक्रिया स्वरूप पश्चिम में आज 'बेक टु होम' आन्दोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा है । स्त्री मुक्ति आन्दोलन अमेरिका के साथ पूरे यूरोप में एक नये दौर से गुज़रने लगा और अनेक नए मुद्दे उठाये गए-बच्चों का लालन-पालन, घरेलू काम, लैंगिकता, स्त्रियों का स्वास्थ्य, प्रजनन का अधिकार, कार्यस्थल पर शोषण, घर में पिटाई, व्यभिचार, बलात्कार आदि। स्त्री मुक्ति आन्दोलन स्त्रियों में चेतना जगाने में कामयाब हुआ। इसका ही नतीजा था कि स्त्रियाँ अपनी दयनीय स्थिति से छुटकारा पाने एवं अपने अधिकारों केलिए नारे लगाती हुई घर की दहलीज लाँघकर सरेआम सड़क पर उतर आयी और न्याय की गुहार लगाने लगी । समाज में स्त्री की स्वतन्त्र पहचान के प्रश्न को गंभीरता के साथ उठाने और इसे महत्वपूर्ण स्थान दिलवाने में पश्चिम का स्त्री मुक्ति आन्दोलन सफल हुआ है । स्त्री मुक्ति आन्दोलन पर विभिन्न सैद्धान्तिक विचारों का प्रभाव पड़ा । इनमें प्रमुख हैं - समाजवादी नारीवाद, उदारवादी नारीवाद, और उग्रवादी नारीवाद ।

---

1. कात्यायनी दुर्ग द्वार पर दस्तक पृ. 83

स्त्री मुक्ति आन्दोलन का प्रेरक साहित्य

स्त्री को शोषित, पीड़ित स्थिति से उबारकर समाज में मानवीय दर्जा दिलाने एवं अधिकारों के प्रति जागरूक कराने में साहित्य की अहम भूमिका रही है । पश्चिमी साहित्य ने उन्हें समाज के हाशिये से मुख्यधारा में लाने का सराहनीय कार्य किया । उनकी मूक यातना को शब्द देकर नकाबपोश पश्चिमी समाज को बेनकाब किया । इस दिशा में पहला प्रयास मेरी वोलस्टोन क्राफ्ट द्वारा किया गया । 'ए विंडीकेशन ऑफ दि राइट ऑफ वीमेन' पुस्तक में उन्होंने पुरुषों के समान स्त्रियों के समान अधिकारों की माँग करते हुए कानूनी एवं राजनीतिक अधिकारों की गुहार की ।

स्त्री आन्दोलन को प्रोत्साहित करने वाली अन्य पुस्तकों में महत्वपूर्ण है- फ्रेंच लेखिका सीमोन द बोउवार की 'द सेंकड सेक्स' जिसमें इस सच्चाई का खुलासा किया गया कि "औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि बढ़कर औरत बनती है ।"[1] समाज में स्त्री हर कहीं अन्या के रूप में स्थापित है । पहली बार संपूर्ण स्त्री-जाति के इतिहास को ऐतिहासिक, भौतिक, दार्शनिक, जैविक व वैचारिक दृष्टि से प्रस्तुत किया । सीमोन ने पहली बार स्त्री की आर्थिक स्वतन्त्रता की बात उठाई । उनके अनुसार आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में स्त्री की स्वतन्त्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धान्तिक रह जाती है ।

सन् 1963 में प्रकाशित बेट्टी फ्राइडन की पुस्तक 'द फेर्मिनिन मिस्टिक' यानी 'नारी-रहस्य' विश्व प्रसिद्ध नारीवादी कृतियों में से है । प्रस्तुत कृति में इन सच्चाईयों का खुलासा किया गया कि समाज स्त्री को आजीवन माँ, पत्नी, गृहिणी, रमणी की तयशुदा भूमिकाएँ अपनाने को मज़बूर करता रहा है । समाज में स्त्री का भोग्या या रमणी रूप ही प्रमुख है अर्थात स्त्री एक, सेक्स ओबजेक्ट है । पत्र-पत्रिकाएँ स्त्री की तयशुदा भूमिकाओं को ही पुख्ता करती हैं । यानी कि परिवार, बच्चों का लालन-पालन, वेश-भूषा, सौन्दर्य,

---

1 प्रभा खेतान स्त्री उपेक्षिता पृ. 131

गृहव्यवस्था जैसे विषयों तक ही वह सीमित थी । इससे उनकी मौलिक प्रतिभा कुंठित हुई है ।

आन्दोलन के उग्रवादी रुख से दुःखी होकर बेट्टी फ्राइडन ने स्त्री को प्राप्त अधिकारों व आज़ादी के नष्ट होने की संभावना के मद्देनज़र रखते हुए, परिवार के महत्व को स्वीकारने और पूर्वस्थिति में लौटने का आह्वान करते हुए अपनी दूसरी पुस्तक 'द सेकंड स्टेज' (The Second stage) लिखी ।

केट मिलेट और जर्मन ग्रीअर ने 'सेक्सुअल पोलिटिक्स' और 'फीमेल यूनक' लिखकर उग्रवादी दल का समर्थन किया । केट मिलेट ने पुरुष प्रधान समाज का विरोध करते हुए यौन क्रान्ति का आह्वान किया साथ ही साथ 'फ्री सेक्स' तथा लेस्बियन का समर्थन किया तो जर्मन ग्रीअर ने स्त्री के शारीरिक सर्वेक्षण से लेकर स्त्री अवयव संबंधी मिथकों को तोड़ने का प्रयत्न करते हुए कहा कि हमें क्रान्ति लानी है कोई सुधारवादी आन्दोलन नहीं ।

मेलर ने 'सेक्सुअल पालिटिक्स' और फीमेल यूनक के विरोध में दो लेख छापे जो कि बाद में 'प्रिजनर्स आफ सेक्स' शीर्षक से प्रकाशित हुई जिसमें यह व्यक्त किया गया कि पुरुष खुद को स्त्री से सदैव छोटा और तुच्छ पाता है । स्त्री के प्रति श्रद्धा की भावना उसे जन्म के साथ विरासत में मिली है । सहवास के समय भी पुरुष अपने जन्म की घटनास्थली को भुला नहीं पाता, इसीलिए सहवास के समय वह स्त्री पर क्रूरतापूर्ण प्रहार करता है या अपनी प्यास बुझाकर हट जाता है ।

सन् 1972 की 'न्यू पोर्टगीज़ लैटर्स' जिसमें पुर्तगाल की तीन लेखिकाओं ने अपने देश में स्त्रियों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्थिति के विवरण का खुलासा दुनिया के सामने किया । ब्रिटन की ऐना कूट ने 'गर्जियन' पुस्तक लिखकर चीनी स्त्रियों के समाज में

प्रचलित अनेक भ्रमों को दूर करने की कोशिश की । स्त्रियों को जगाने व संबद्ध आन्दोलनों में भाग लेने केलिए प्रेरित करते हुए एना कूट ने अपनी वकील मित्र टेस गिल के साथ मिलकर 'वीमेन्स राइट्स, ए प्रेक्टीकल गाइड' पुस्तक लिखी जो कि ब्रिटेन में बेहद लोकप्रिय हुई । इसकी लोकप्रियता का कारण था पुरुषों पर बिना किसी प्रहार के स्त्रियों को समय के साथ बदलने और परिस्थितियों को अपने अनुकूल ढालने केलिए खुद को तैयार करने की प्रेरणा दी गई थी।

फ्रांसीसी क्रांति के बाद स्त्रियों में जगी चेतना पर विस्तृत प्रकाश डालते हुए ली डालकोम्ब ने अपनी कृति 'विक्टोरियन लेडीज-ऐटवर्क' में यह विचार प्रस्तुत किया कि स्त्रियों की जागृति से ही उन्नीसवीं शताब्दी का उदारवाद प्रारंभ हुआ । सन् 1975 में प्रकाशित सुसन ब्राउन मिलर की कृति 'अगेंस्ट आवर विलः मैन, विमेन एंड रेप' बलात्कार के इतिहास व उसके सभी पक्षों पर प्रकाश डालता है जिसका इस्तेमाल पुरुष प्रधान समाज स्त्री को आतंकित रखने के हथियार के रूप में करता रहा है ।

आन्दोलन की नेत्रियों द्वारा मनोविश्लेषक फ्रायड, नृतत्वशास्त्री लाइनर टाइगर, उपन्यासकार डी.एच. लारेंस और नार्मन मेलर के साहित्य की कटु आलोचना की गई । मनोवैज्ञानिक फ्रायड की इस सोच का कि स्त्रियाँ जैविक दृष्टि से पुरुष से कमज़ोर प्राणी है को चुनौती दी गई। इसके विरोध में सन् 1974 में दो पुस्तकें प्रकाशित हुई-जीन बेकर मिलर द्वारा संपादित 'मनोविश्लेषण और स्त्री' तथा जूलिएट मिचेल द्वारा संपादित 'मनोविश्लेषण और नारीवाद'।

आन्दोलन धीरे-धीरे अपनी राह से भटक गया जिसके प्रतिरोध में अमेरिका की एक गृहिणी मैराबेल मार्गन की 'द टोटल वूमन' और डॉ. डोरोथी तेनोव एवं डॉ. श्रीमती हेट फील्ड की 'लिमरेंस' का प्रकाशन हुआ । इस तरह आन्दोलन में साहित्य का अभूतपूर्व योगदान रहा है ।

प्रमुख संगठन

समाज में स्त्री की स्थिति को सुधारने एवं सुविधाएँ मुहैया कराने के उद्देश्य से स्थापित विभिन्न संगठन स्त्री के संघर्ष में उसका सहयोगी बन उसके कदम से कदम मिलाकर, उसके संघर्ष को कामयाब बनाने की दिशा में कार्यरत थे । आन्दोलन के पहले दौर से ही विभिन्न संगठनों की स्थापना की शुरुआत हो चुकी थी । सन् 1860 से 1870 में 'नेशनल लेबर यूनियन' की स्थापना हुई जिसका उद्देश्य शोषण हटाना व सुधार लाना था । 1868 में 'वर्किंग वीमेंस एसोसिएशन' व 1881 में 'नेशनल नाइट ऑफ लेबर फेडरेशन' बनी, जिसमें काम करने के समय की समस्या को लेकर बात की गई बाद में यही 'अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर' जो सबसे मशहूर संघ था, इसकी स्थापना हुई । साथ ही संयुक्त संघ के रूप में 'अमेरिकन इक्वल राइट एसोसिएशन' की स्थापना हुई जिसका मकसद मज़दूर स्त्रियों की स्थिति में सुधार के साथ अश्वेतों की स्थिति में सुधार था । 1874 में 'वीमेंस क्रिश्चियन टेंपरेंस यूनियन' की स्थापना हुई जिसे 'डब्ल्यू सी.टी' कहते हैं । इस संस्था ने मतदान के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले शराब के ठेकेदारों के धन्धे का विरोध किया । मध्यवर्गीय कामकाजी महिलाओं के द्वारा 1903 में 'नेशनल वीमेंस टेंपरेंस यूनियन लीग' की स्थापना हुई । लेकिन इन संगठनों की सबसे बड़ी खामी यह रही कि ये संगठन केवल शहरों तक ही सीमित रहें, "गाँवों में इन संगठनों का प्रचार नहीं था, न वे इसकी ज़रूरत पर ही ध्यान देते थे।"[1] इन संगठनों की सदस्या शहरी मध्य वर्ग की लड़कियाँ थीं ।

सन् 1945 में 'विमेन्स इन्टरनेशनल डेमोक्रेटिक फेडरेशन' की स्थापना कर सभी देशों की स्त्रियों द्वारा आन्दोलन को विश्व स्तर पर संगठित रूप से चलाने का निश्चय किया गया । प्रस्तुत संगठन द्वारा स्त्रियों की आम मांगों को लेकर अलग-अलग देशों में और विश्व स्तर पर सक्रिय विभिन्न राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्त्री संगठनों के साथ साझा कार्यवाहियों की भी

---

1 डॉ. गीता सोलंकी-नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास पृ. 24

कोशिश की गई। विवाह, बच्चे, पति, परिवार से मुक्त होने के उद्देश्य से सन् 1968 में 'सोसायटी फार कटिंग अपमेन' संगठन की स्थापना 'वेलरी सोलोमनस' द्वारा की गई ।

आन्दोलन के दूसरे चरण का अग्रणी संगठन 'नाऊ' की स्थापना सन् 1966 में बेट्टी फ्राइडन द्वारा की गई । प्रस्तुत संगठन बुनियादी मानवीय अधिकारों को लेकर चला था। स्त्रियों को स्वयं निर्णय लेने का अधिकार, अपनी जीवन पद्धति चुनने का अधिकार आदि इसकी प्रमुख माँगें रही हैं । 'नेशनल आर्गनाइज़ेशन आफ विमेन' (नाऊ) आज भी सबसे बड़ा नारीवादी संगठन माना जाता है । स्त्रियों की जागरूकता से स्त्रियों के हित में संगठनों द्वारा किए गए प्रयास सफल एवं सार्थक हुए ।

भारत में स्त्री की स्थिति

भारत में स्त्री का अतीत गौरवपूर्ण रहा है । जहाँ रोमशा, पौलोमी शची, यमीवैवस्वती, लोपामुद्रा, अपाला, घोषा, विश्ववारा आदि मन्त्र द्रष्टाएँ हैं वहीं मैत्रेयी, गार्गी जैसी विदुषियाँ, विश्पला, मुद्गलानी जैसी वीरांगनाएं भी हैं । इसे परिस्थितियों की मार कहें या स्त्री का दुर्भाग्य कि वह अपने सौभाग्यपूर्ण ज़िन्दगी से इस कदर खदेड दी गई कि उसकी रेंगती ज़िन्दगी को देख रोंम-रोंम काँप उठता । उसका संघर्ष पुरुष के विरोध में न था और न ही उसने एक लब्स तक पुरुष के खिलाफ कहा, "प्राचीन काल से लेकर पूरे मध्यकाल तक, पूर्व आधुनिक काल तक भी हमारे यहाँ निजी अधिकारों केलिए अपने पतियों, भाइयों से लड़ने की मिसालें नहीं के बराबर हैं । अपने ही पुरुषों के खिलाफ स्त्रियों की सामूहिक लड़ाइयाँ या आन्दोलन तो बिल्कुल नहीं। लडाइयाँ हैं देश-समाज केलिए, धर्म-रक्षा केलिए, अपनी आन-बान, अस्मिता की रक्षा केलिए।"[1] नवजागरण काल में उनकी गिरी हुई स्थिति से उन्हें उबारने एवं उन्हें मानवीय रूप में प्रतिष्ठित करने के प्रयास किये गये जिसकी पहल खुद पुरुषों ने ही की थी ।

---

1. आशारानी व्होरा- नारी विद्रोह के भारतीय मंच पृ 15

वैदिक काल में स्त्री

वैदिक काल तक आते आते समाज पितृसत्तात्मक समाज में तब्दील हो चुका था । भारत में वैदिक काल में स्त्री की स्थिति अन्य देशों एवं अन्य कालों की अपेक्षा बेहतर थी। रामविलास शर्मा के शब्दों में - "ऋग्वेद में जिस समाज का उल्लेख है, वह पितृसत्ताक है, इसमें सन्देह नहीं । ऐंगेल्स के अनुसार मातृसत्ताक से पितृसत्ताक समाज की ओर यह प्रगति प्राचीन काल की महत्वपूर्ण क्रान्ति है । लेकिन रोम और एथेंस की तरह नारी को दासी की तरह नहीं देखा गया । यह दृष्टिकोण और व्यवहार बाद का है।"[1] वैदिक काल में यद्यपि पुत्र की कामना हर कहीं की गई फिर भी पुत्री की समाज में उपेक्षा न के बराबर रही । नवजात कन्या शिशु को भी मौत के घाट न उतारा जाता । ये तो बहुत बाद की घटना थी । पुत्र जन्म से संबंधित अनेक श्लोक ऋग्वेद में मिलते हैं । 'अथर्ववेद' में कहा गया है- 'हे ईश्वर, हमारे यहाँ पुत्र पैदा हों, पुत्रियाँ किसी और के घर।'

वैदिक काल में धार्मिक अनुष्ठानों, सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों में स्त्रियों की शिरकत देखी जा सकती है। स्त्रियाँ वेद और शास्त्रों में पारंगत होने के अतिरिक्त ऋचाओं की रचना भी करती थीं । शिक्षा काल में लड़कियाँ भी लडकों की तरह ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं । उनका भी 'उपनयन संस्कार' होता था । वैदिक शिक्षा के साथ-साथ यज्ञ आदि का संपादन करने का अधिकार उन्हें प्राप्त था । विद्याध्ययन की दृष्टि से स्त्रियों के दो वर्ग थे ब्रह्मवादिनी जो आजीवन अविवाहित रहकर ब्रह्मविद्या में अधिकाधिक योग्यता प्राप्त करती थी । दूसरी थी सद्योदवाहः जो एक सीमा तक शिक्षा के उपरान्त गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर गृहिणी का कर्तव्य निभाती थी । 17-18 वर्ष की आयु से पूर्व लड़कियों के विवाह नहीं होते थे । लड़की-लड़के दोनों को ही अपना जीवन साथी चुनने की आजादी थी । स्त्रियों को लौकिक व आध्यात्मिक दोनों शिक्षाएँ दी जाती ।

---

1 रामविलास शर्मा मानव सभ्यता का विकास पृ. 50

वैदिक शब्द 'दम्पति' का अर्थ है - 'घर का संयुक्त अधिकारी' अथवा 'प्रभु' । गृह में पति और पत्नी दोनों के समान अधिकार थे । पत्नी पतिगृह की सम्राज्ञी तथा पति के सभी कार्यों में सहयोगिनी मानी जाती थी । विवाह मंत्रों से गृह एवं संबंधियों में उसकी महत्वपूर्ण स्थिति का पता चलता है । पारिवारिक संपत्ति में सह-अधिकारिणी थी । पति की गैर हाजिरी में संपत्ति में से दान का अधिकार भी रखती थी । पत्नी की अनुपस्थिति में कोई भी धार्मिक अनुष्ठान संपन्न नहीं माना जाता था ।

वैदिककाल में स्त्री का कार्यक्षेत्र गृह से युद्ध भूमि तक फैला हुआ था । विश्पला का युद्ध में जाना या मुद्गलानी का शत्रुओं से युद्ध करके सौ गौवें छीन लाना यही साबित करता है । वेश्यावृत्ति एक संगठित एवं संस्थापित ढंग से व्यवसाय के रूप में था । नाच, संगीत और रूप प्रदर्शन के अलावा पर्व तथा धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी उपस्थिति शुभ मानी जाती थी । बालविवाह, पर्दा प्रथा, सती प्रथा का चलन नहीं था । बहुपत्नी प्रथा का उल्लेख मिलता है । विधवा विवाह पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था, उन्हें 'नियोग' का भी अधिकार था । संबंध-विच्छेद का भी अधिकार था । इस तरह समाज में स्त्री आदर एवं सम्मान की हकदार रही है । लेकिन साधारण स्त्री का कोई महत्व नहीं था ।

उत्तर वैदिककाल में स्त्री

वैदिककाल के बाद स्त्री की स्थिति में उत्तरोत्तर ह्रास होता गया । उत्तर वैदिककाल में स्त्री शिक्षा का महत्व था । सह शिक्षा बुरा नहीं माना जाता था । शिक्षा के दौरान ब्रह्मचर्य का पालन दोनों केलिए ज़रूरी था । अब शिक्षा ग्रहण करने केलिए उन्हें गुरुकुलों में न भेजकर योग्य संबंधियों के घर भेजा जाता । ऊँची जाति में पुरुषों के समान ही स्त्रियों का उपनयन संस्कार होता था । केवल शिक्षित स्त्रियाँ ही धार्मिक कार्य करने योग्य मानी जाती थी, उनके शारीरिक, बौद्धिक, सांस्कृतिक विकास की ओर ध्यान दिया जाता था । वे संगीत,

नृत्य व गान विद्या में भी निष्णात होती थी ।

'असतो मा सद् गमय

तमसो मा ज्योतिर्गमय

मृत्योर्मा अमृतं गमय' प्रार्थना मैत्रेयी की है जो इसी काल की है । विद्वत सभा में याज्ञवल्क्य को चकित कर देनेवाली गार्गी, उद्दालिका, आर्तभागा, विदग्धा, अश्वला आदि विदुषियाँ भी इसी काल की देन हैं।

इस काल में विवाह विच्छेद मान्य था । बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा का चलन नहीं था । स्वयंवर प्रथा द्वारा पति चुनने की स्वतन्त्रता भी बरकरार थी । स्त्री का माता रूप श्रेष्ठ माना जाता । धर्मसूत्रों में भी माता की प्रशंसा प्राप्त होती थी । मातृत्व के अभाव में विवाह विच्छेद का विधान किया गया । सिर्फ पुत्री पैदा करने वाली स्त्री को भी त्यागने का प्रावधान याज्ञवल्क्य स्मृति व बोधायन सूत्र में है । पुत्र प्राप्ति केलिए नारद, याज्ञवल्क्य स्मृति में विधवा एवं सन्तानहीन स्त्री को नियोग की अनुमति प्रदान की गई । ऐतरेय ब्राह्मण में सन्यास की निन्दा करते हुए पुत्रोत्पादन को परम धर्म माना गया है । शतपथ ब्राह्मण में वर्णन है कि विवाहोपरान्त पुत्र उत्पन्न करने के पश्चात् व्यक्ति पूर्ण समझा जाता है । पुत्र प्राप्ति केलिए अश्वमेध यज्ञ, पुत्रेष्टि यज्ञ, नियोग कराये जाते । गर्भवती स्त्री केलिए एक करुणापूर्ण अनुष्ठान है 'पुंसवन'। इसमें मनौती की जाती है कि गर्भ की सन्तान पुत्र ही हो। उत्तरोत्तर पुत्र की कामना बलवती होती गई।

स्त्री-धन का प्रायः अभाव था । समाज और धर्म के क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी । बौद्धिकता में स्त्रियाँ पुरुषों से हीन नहीं थी । वर्ण व्यवस्था के नियमों में सख्ती बरतने के साथ ही स्त्रियों के पद में क्रमिक ह्रास होने लगा था । 'बहु पत्नी' प्रथा और 'अनुलोम' विवाह प्रथा के कारण स्त्री की स्थिति गिरती चली गई । भारतीय स्त्री की स्थिति में गिरावट

उत्तर वैदिककाल से ही माना जाता है ।

रामायण एवं महाभारत काल में स्त्री

इस काल में स्त्री का चित्रण विदुषी के रूप में कम और तप, त्याग, नम्रता, पति-सेवा आदि गुणों से लैस गृहस्वामिनी के रूप में अधिक मिलता है । प्रत्येक लड़की केलिए विवाह अनिवार्य माना जाने लगा था । पति-सेवा और पातिव्रत्य उसके परम धर्म मान लिये गये । पातिव्रत्य की मूल भावना यानी कि एक बार किसी पुरुष से विवाह होने के बाद उसमें कमियाँ होने पर भी उसके प्रति संपूर्ण समर्पण करना है । स्त्री को दूसरे पुरुष का विचार करना भी मना है । बहु-पत्नी प्रथा को और भी बढ़ावा मिला । विधवा-विवाह पर प्रतिबंध लगाए गए । स्वयंवर प्रथा बरकरार थी । अधिकांश स्वयंवर प्रतियोगिता प्रधान थे । इसलिए ये भी पूर्णतः स्त्री के पक्ष में नहीं गये, "एक तरह से ये वीर्य शुल्क की अदायगी के समारोह थे, जो भी पुरुष प्रण को पूर्ण करता, उसी को कन्या प्राप्त होती । इस तरह सीता और द्रौपदी केलिए अपने युग के सर्वश्रेष्ठ वरों का चयन उनके पिताओं की योजना के प्रतिफल थे, न कि उनकी अपनी इच्छाओं के प्रतिबिम्ब।"[1] विवाह आयु घट गई थी ।

आर्यों की दक्षिण-विजय के साथ ही सती प्रथा प्रचलित हो गई थी । आर्यों में सती प्रथा के कायम होने के प्रमाण मिलते हैं। अब स्त्री सहयोगिनी से पुरुष की व्यक्तिगत संपत्ति बन गई, जिसका जैसा चाहा वैसा इस्तेमाल पुरुष करने लगा । इसके प्रमाण रामायण और महाभारत में भी देखने को मिलते हैं । महज एक धोबी द्वारा सन्देह व्यक्त करने पर राम द्वारा सीता को वनवास दे देना, पांडवों द्वारा अपनी पत्नी द्रौपदी को जुए के दांव पर लगा देना यही दर्शाता है कि पत्नी पति की मिल्कियत है ।

आर्यों के अनार्य स्त्रियों से विवाह संबंध स्थापित हुए, संस्कृत न जानने के कारण

---

1. वीणा यादव- हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति पृ. 7

उनके धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने पर प्रतिबन्ध लगाये गए । कालान्तर में सभी स्त्रियों से वेदाध्ययन और अनुष्ठानों में भाग लेने का अधिकार छीन लिया गया । उच्चारण की कठिनाई, यज्ञों, कर्मकाण्डों की जटिलता के कारण वेदों का अध्ययन कठिन कार्य बन गया। अब कर्मकाण्डों के अध्ययन केलिए 22-24 वर्ष की अवस्था तक अविवाहित रहना पड़ता। जबकि वैदिककाल के सरल कर्मकाण्डों का अध्ययन 16-17 वर्ष की अवस्था तक समाप्त हो जाता। कालान्तर में उपनयन संस्कार की अवस्था ही विवाह की अवस्था समझी जाने लगी । स्त्री वैदिक शिक्षा से वंचित हो गई । धर्मगुरुओं नें स्त्री के विवाह की आयु घटा दी। शिक्षा से वंचित स्त्रियों का धार्मिक तथा सामाजिक स्तर गिरता चला गया ।

स्मृति काल में स्त्री

मनु ने जहाँ 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' लिखा वहीं 'न स्त्री स्वातन्त्र्य अर्हति' लिखकर स्त्री की आजादी पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा दिया । स्त्री को हमेशा केलिए पुरुषों के अधीन रख, उसके अधिकारों को संकीर्ण किया गया। स्त्री के उपनयन संस्कार का निषेध किया गया। विवाह में चुनाव की उसकी आजादी समाप्त हो गई । अब वह केवल माता के रूप में आदर की पात्र रह गई । पुत्र ही पिता के उद्देश्यों का वहन करता है, अपने वंश को आगे चला सकता है ऐसी मान्यताओं से पुत्रेच्छा बलवती होती गई ।

स्त्री धन पर स्त्री का अधिकार था । उसके बाद उसकी बेटियों का। विधवा उत्तराधिकार से वंचित थी । विष्णु और याज्ञवल्क्य द्वारा विधवा उत्तराधिकार का समर्थन किया गया । बृहस्पति, प्रजापति और कात्यायन के अथक प्रयास की वजह से विधवा का उत्तराधिकार मान्य हो गया । मनु ने विधवाओं केलिए तप, विराग, प्रार्थना एवं प्रायश्चितपूर्ण जीवन व्यतीत करना उचित बताया । कालान्तर में पवित्रता और विराग की भावना के कारण नियोग एवं विधवा विवाह की प्रथा निन्दनीय समझी जाने लगी । लेकिन तरुण और पुत्रहीना

विधवा ही नियोग की अधिकारिणी थी । परन्तु नियोग कर्तव्य भावना से प्रेरित था । पुत्र प्राप्ति के पश्चात स्त्री का संभोग वर्जित था । आगे चलकर विधवा की स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि उसका जीवन ही उसके लिए अभिशाप बन गया । इस जंजाल से छुटकारा पाने केलिए पति की चिता के साथ जल मरना ही उसने उचित समझा, "मनुस्मृति तक आते-आते विधवा स्त्री केलिए की गई कठोर व्यवस्था ने चिता पर लेटने की प्रतीकात्मक परंपरा को सहमरण में परिवर्तित कर दिया । विधवा के जीवन की अपेक्षा सती होना अधिक उपयुक्त लगने लगा ।"[1] अपने तमाम अधिकारों से वंचित स्त्री पुरुष के अधीन रहने को विवश हो गयी । विवाह-आयु अब आठ-नौ साल मानी जाने लगी । उसकी शिक्षा भी नाममात्र हो गई। शिक्षा के अभाव में स्त्री में हीन भावना पनपने लगी । स्त्री सुरक्षा की दृष्टि से अशिक्षा, बाल-विवाह, पर्दा प्रथा आदि बंधन विदेशी आक्रमणों के बाद ही लगाए गए थे ।

बौद्धकाल में स्त्री

बौद्ध धर्म का उदय वैदिक कर्मकाण्डों एवं बाह्याडम्बरों की प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ था। भगवान बुद्ध ने समाज में पल रहे कई पाखण्डों के विरोध में अपनी आवाज़ बुलन्द की । पुत्र द्वारा ही स्वर्ग की प्राप्ति हो सकती है इसका डटकर विरोध किया । पहले संकोच करने पर भी अपने प्रिय शिष्य आनंद के कहने पर स्त्रियों को संघ में दीक्षा देकर उनका उद्धार किया । संघ का द्वार विधवा, पतिता, वेश्या आदि सभी केलिए खुला था । अम्बपाली, विमला जैसी पतिता स्त्रियों को भी प्रवेश दिया गया था । समाज के सभी तबके की स्त्रियाँ संघ में मौजूद थीं, जिन्होंने 'थेरीगाथा' में अपने जीवन की व्यथा कथा का चित्रण किया है। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात स्त्रियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई । बौद्ध धर्म के महायान और वज्रयान नामक दो शाखाओं के सिद्ध साधकों ने स्त्री -देह पर अपना आधिपत्य जमा लिया और बैद्ध संघों में स्त्रियों का जमघट सा लगा दिया । इस तरह बौद्ध धर्म में भी स्त्री को पुरुष के समकक्ष नहीं समझा गया ।

---

1 रेखा कस्तवार स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ पृ. 62

मध्यकाल में स्त्री

स्त्री मध्यकाल में आकर पूरी तरह से अबला बन चुकी थी । स्त्री संबंधी यह धारणा समाज में पुख्ता हो चुकी थी कि विपत्ति आने पर वह किसी की सहायता के बिना कुछ नहीं कर सकती यानी वह कमज़ोर है । इससे समाज में कन्या बोझ मानी जाने लगी । धड़ल्ले से कन्या शिशु हत्या की जाने लगी । कन्या जन्म सामाजिक अप्रतिष्ठा का विषय बन गया। बाह्मणों ने रक्त की शुद्धता, स्त्री सतीत्व की रक्षा और हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर स्त्रियों को बंधनों में कस दिया । समाज में स्त्री की स्वतन्त्र पहचान पर प्रश्न चिह्न लग गए । उसके पातिव्रत्य पर बल दिया जाने लगा, "कभी सामाजिक समस्याओं- यौन कारणों से होनेवाले संघर्षो से बचने केलिए पति-पत्नी के बीच एकनिष्ठा की जो नीति अपनाई गई थी, उसे अब पूरी तरह धार्मिक एवं अनिवार्य बना दिया गया । समय-समय पर नारी की पवित्रता को दैहिक पवित्रता-पति के प्रति एकनिष्ठ रहने को ही दिव्य पातिव्रत के रूप में अधिष्ठित कर दिया गया।"[1] सिर्फ स्त्री धन पर स्त्री का अधिकार था । स्त्री के बचे कुचे धन से उसे बेदखल करने के इरादे से सती प्रथा को महिमामंडित किया गया जबकि इसका प्रारंभिक मकसद कुछ और ही था । सती प्रथा ने सामाजिक बुराई का रूप ले लिया । सतीत्व की धारणा इतनी बलवती हो चुकी थी कि पति के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व ही नहीं माना जाता । अब सती प्रथा चरम सीमा तक पहुँच गई ।

उच्चवर्ग में स्त्री प्रशासकीय एवं अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा से वंचित न थी । लेकिन आम स्त्री शिक्षा के अधिकार से वंचित थी । रजिया सुल्तान ऐसी महिला थी जिन्होंने शासन की बागडोर अपने हाथों में संभाली । गौडवाना की रानी दुर्गावती, अहमद नगर की चाँद बीबी, अकबर की धाय माहमऊनगा, नूरजहाँ, महाराष्ट्र की ताराबाई ऐसे व्यक्तित्व थे जिन्होंने प्रशासन के क्षेत्र में अपने होने को प्रमाणित किया लेकिन उच्चवर्ग की तमाम स्त्रियों को ऐसे

---

1. सुभाषिणी पालीवाल भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता पृ. 20

अवसर प्राप्त न थे । बाल-विवाह, पर्दा प्रथा स्त्री शिक्षा के रास्ते में रुकावट बनें । मध्यकाल में ऐसी मान्यताएँ भी स्त्री शिक्षा में बाधक बनीं कि शिक्षा प्राप्त करने से लड़कियाँ विधवा हो जाती हैं।

मुसलमानों के आक्रमण और मुगलों के राज्यकाल में लड़कियों के अपहरण की घटनाएँ बढी तो छोटी आयु में ही उनका विवाह किया जाने लगा । कौमार्य के मिथक ने बाल विवाह को बढ़ावा दिया । कन्या विवाह की आयु 6-8 साल तक सीमित हो गई । अब कन्या केलिए समुचित विकास के अवसर समाप्त हो गए । दहेज प्रथा प्रारंभ हो चुकी थी ।

आर्थिक जीवन में स्त्री की महस्वपूर्ण भूमिका नहीं थी । जहाँ निम्न वर्ग की स्त्री खेतों और अन्य धन्धों में पति का साथ देती वहीं उच्चवर्ग की स्त्री केलिए जीविकोपार्जन का कोई साधन न था और न ही वह इसे ज़रूरी समझती । अब पुत्र जन्म पर ही स्त्री समाज में आदर और सम्मान की अधिकारी मानी जाती । पर्दा भारत में पहले भी प्रचलित था । लेकिन एक प्रथा के रूप में पर्दे की शुरुआत मुसलमानों के शासन काल में हुई, "प्राचीनकाल में भारत पर विदेशी बर्बर जातियों के आक्रमण होते रहे हैं और उन्हीं से रक्षा करने केलिए पर्दे की घृणित परन्तु तत्कालीन परिस्थिति को देखते हुए आवश्यक प्रथा का अवलंबन करना पड़ा।"[1] पर्दा अब हिन्दू व मुस्लिम दोनो स्त्रियों केलिए अनिवार्य था । स्त्री को अब वर चुनाव की आजादी न थी । निम्न वर्ग और मुसलमानों में विधवा विवाह सामान्य था । व्यवसाय के रूप में संगीत केवल वेश्याएँ ही सीखती थीं । वेश्याओं के संपर्क में रहना प्रतिष्ठा का विषय माना जाता । नगरवधुओं की स्थिति कुल वधुओं से भिन्न थी । नगरवधुएँ कुछ हद तक स्वतन्त्र स्त्रियाँ थीं ।

शिक्षा और उपनयन के अभाव में स्त्रियों की गणना शूद्रों में होने लगी थी । ऐसी हालात में स्त्री की सार्वजनिक हिस्सेदारी न के बराबर रही । केवल क्षत्रिय परिवारों में 14-

---

1 जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह-स्वाधीनता-संग्राम हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र पृ. 249

15 साल की अवस्था के बाद लड़कियों का विवाह होता था । एक ओर विरागी वर्ग स्त्री को माया, ठगनी कहकर उससे कोसो दूर रहने का निर्देश देते तो दूसरी ओर विलास और भौतिकता प्रधान वर्ग स्त्री की उपस्थिति को सुखमय मानता । अब समाज में स्त्री-पुरुष केलिए नैतिकता के दोहरे मानदण्ड प्रचलित थे, "पुरुष के ऊपर नैतिकता अथवा एक पत्नी व्रत का कोइ सामाजिक बन्धन नहीं था ।"[1] भक्ति आन्दोलन ने स्त्री को सामाजिक क्षेत्र एवं धार्मिक कार्यों में शामिल करने का कार्य किया । लेकिन इससे भी स्त्री की स्थिति में कोई फर्क नहीं पड़ा । स्त्री की यथास्थिति नवजागरण काल तक बरकरार रही ।

भारत का स्त्री मुक्ति आन्दोलन

भारतीय समाज अन्धविश्वासों, रूढ़ियों में डूबा घुटन भरी ज़िन्दगी जी रहा था । धार्मिक सदाचरण के नाम पर कर्मकाण्डों-पाखण्डों का ही बोलबाला था । ब्राह्मणों ने रक्त की शुद्धता, स्त्री सतीत्व की रक्षा, हिन्दू धर्म की रक्षा के नाम पर सामाजिक बंधनों को और सख्त कर दिया था । अब स्त्री को दोहरी मार झेलनी पड़ रही थी ।

नवजागरण और स्त्री

स्त्री की खोई हुई मानवीय प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के अथक प्रयासों का शुभारंभ नवजागरण काल में हुआ । अठारहवीं शताब्दी के आरंभ तक 'स्त्री मुक्ति' का प्रश्न समाज का अहम मुद्दा बनकर उभरा । भारतीय समाज में आधुनिक शिक्षा प्राप्त एक मध्यवर्ग का उदय हुआ । सती प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह, पर्दा प्रथा, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, बाल विधवा व विधवा समस्या, जैसे कुरीतियों पर इनके द्वारा गहन विचार कर उसे जड़ से उखाड़ फेंकने के कार्य किये गये जो जन-जागरण को अवरुद्ध किए हुए हैं एवं स्त्री की यथास्थिति को पुख्ता करते हैं । राजाराम मोहन राय, महर्षि कर्वे, दयानंद सरस्वती, ज्योतिबा

---

1 डॉ. उषा पाण्डेय मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पृ. 57

फुले, अम्बेडकर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी विवेकानंद आदि समाज सुधारकों ने इस ओर कदम उठाकर स्त्री जागरण की दिशा में सराहनीय कार्य किये, "पुरुष द्वारा भारतीय स्त्री चेतना का यह उद्घोष विश्व महिला आन्दोलन की एक अनुपम विशिष्टता है यहाँ स्त्रियों को दुर्दशा से उबारने का बीड़ा पुरुष जाति ने आगे बढ़कर उठाया। आगे चलकर यही नारी कल्याण और प्रगति का आधार बना।"[1] भारत में नवजागरण की प्रकृति एक सी नहीं रही । बंगाल का नवनागरण जहाँ उच्चवर्ग के हितों को व्यक्त करता है वहीं महाराष्ट्र के नवजागरण के केन्द्र में दलित रहा ।

नवजागरण के अग्रदूत राजाराम मोहन राय पहले भारतीय थे जिन्होंने सती प्रथा के खिलाफ आन्दोलन छेड़ा । सन् 1815 में राजाराम मोहन राय द्वारा एक पुस्तक लिखी गई जिसका सन् 1818 में अंग्रेज़ी में अनुवाद हुआ । A conferrence between an advocate for and an apponante to the practice of burning widows alive' शास्त्रों के आधार पर उन्होंने सती को अमान्य घोषित किया । जहाँ एक ओर मिशनरियों द्वारा इसे हिन्दू पशुता की संज्ञा दी गई, वहीं दूसरी ओर अंग्रेज़ी हुकूमत सती विरोधी कानून बनाने से कतराते रहे कि यह हिन्दुओं के धार्मिक मामले में हस्तक्षेप होगा । तत्कालीन सरकार द्वारा जो कानून बनाए गए उसमें जबरन सती किए जाने और स्वेच्छा से सती होने में भिन्नता थी । यह सती प्रथा को कानूनी कवच पहनाने की कोशिश भर थी । अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से पादरी भी इस अभियान से जुडे थे । राजाराम मोहन राय के अथक प्रयासों के फलस्वरूप सन् 1829 में तत्कालीन गवर्नर जनरल विलियम बैंटिक द्वारा सती निर्मूलन अधिनियम पारित किया गया । इस कानून के तहत किसी हिन्दू विधवा स्त्री को सती बनाने, उसे जलाने या ज़िन्दा दफन करने की कोशिश को गैरकानूनी और अपराधिक अदालतों द्वारा दण्डनोय अपराध माना गया ।

---

1 डॉ. ओमप्रकाश शर्मा समकालीन महिला लेखन पृ 67-68

सती प्रथा के विरोध के साथ-साथ स्त्री शिक्षा केलिए किए गए संघर्ष स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार की दिशा में महत्वपूर्ण सिद्ध हुए । स्त्री शिक्षा के आन्दोलन का उल्लेख आमतौर से उभरते मध्यवर्ग द्वारा अपनी स्त्रियों को पश्चिमी स्त्रियों के अनुरूप ढालने की आवश्यकता के रूप में किया गया । हेमलता महिश्वर के शब्दों में - "यहाँ पर मुझे यह भी कहना है कि उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में कुलीन समाज में नारी शिक्षा किसी सामाजिक सुधार या चेतना को लेकर नहीं, बल्कि अंग्रेज़ समाज में अपनी घुसपैठ बनाने केलिए थी । अंग्रेज़ समाज में स्त्रियों को घर के बाहर भी जो सम्मान प्राप्त था, उनकी सभ्यता और संस्कृति, उनके बच्चों की शिक्षा, व्यवहार से कुलीन समाज प्रभावित था । जब वह इनकी तुलना अपने बच्चों से करता स्त्रियों से करता तो सौम्यता के स्थान पर जाहिलपना पाता ।"[1] लड़कियों केलिए सबसे पहले स्कूल अंग्रेज़ और ईसाई मिश्नरियों द्वारा सन् 1810 में खोले गए । इनका मुख्य ध्येय शिक्षा की आड़ में धर्म का प्रचार-प्रसार करना था । बंगाल में ब्राह्मण और हिन्दू कन्या पाठशालाओं की स्थापना की गई । सन् 1916 में महाराष्ट्र में कर्वे ने 'श्रीमती नत्थी बाई दामोदर विश्वविद्यालय' की स्थापना की । यह स्त्रियों का प्रथम विश्व विद्यालय था । सन् 1848 में ज्योतिबा फुले ने लड़कियों केलिए अपना पहला स्कूल खोला। उनके द्वारा सन् 1852 में तीन कन्या पाठशाला और अछूतों केलिए एक स्कूल की स्थापना की गई । कुछ सुधारकों द्वारा अंग्रेज़ी शिक्षा की बात उठाई गई तो दयानंद सरस्वती, सैयद अहमद खान, रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्राचीन भारत के वैदिककाल के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जिससे वैदिककाल की विदुषी महिलाओं का दृष्टान्त पाकर भारतीय स्त्रियाँ अपनी अज्ञानता से मुक्ति पाने की कोशिश करें । सुधारकों द्वारा स्त्री शिक्षा पर तो बल दिया गया लेकिन उन्होंने स्त्रियों का कार्यक्षेत्र परिवार तक ही सीमित रखा । स्त्री को शिक्षित करना इसलिए भी बेहद ज़रूरी समझा गया ताकि वह अपनी गृहस्थी चला सके और इसका लाभ उनके पति और बच्चों को हों, "परन्तु उनका ध्येय शिक्षा का उपयोग स्त्रियों को उनके पत्नी

---

1. हेमलता महिश्वर स्त्री लेखन और समय के सरोकार पृ. 29

और माता के परंपरागत कर्तव्यों का पालन करने में अपेक्षाकृत अधिक योग्य बनाना था, न कि उन्हें सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक विकास की प्रक्रिया में अधिक दक्ष और सक्रिय सदस्य बनाना।"[1] महादेव गोविन्द रान्डे, बेहरामजी, सावित्रीबाई फुले, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि सुधारकों का योगदान स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व रहा है।

सुधार आन्दोलन में विधवा पुनर्विवाह का सवाल बंगाल में एक अहम मुद्दा रहा है । सन् 1850 में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह की दिशा में अथक प्रयास किए। स्त्री को मानवीय गरिमा दिलाने की दिशा में इनका योगदान महत्वपूर्ण है। उन्होंने शास्त्रों का हवाला देकर विधवा पुनर्विवाह को उचित ठहराया और बांग्ला में एक पुस्तिका लिखी जिसका 'Marriage of Hindu Windows' नाम से अंग्रेज़ी में अनुवाद किया गया । उन्हें हिन्दू रूढिवादियों के विरोध का सामना भी करना पड़ा। निम्न जाति के लोगों के बीच विधवा पुनर्विवाह पहले से ही मौजूद था । उच्च वर्ग के लोग विधवा पुनर्विवाह को अपनाने से कतरा रहे थे । सन् 1856 जुलाई को विधवा पुनर्विवाह कानून पारित किया गया जिसके तहत विधवा पुनर्विवाह पर कोई रोक नहीं लगाया गया । पुनर्विवाह के पश्चात स्त्री किस प्रकार की संपत्ति अपने पास रख सकती है यह भी कानून द्वारा निर्धारित कर दिया गया । कानून के पारित किये जाने पर भी विधवा स्त्रियों की स्थिति असंतोषजनक ही बनी रही । समाज में कौमार्य के मिथक की वजह से कुँवारी और बाल विधवाओं के विवाह की संख्या में ही बढोत्तरी हो पाई। महाराष्ट्र में कर्वे ने एक विधवा से विवाह किया । विधवा की स्थिति में सुधार केलिए उन्होंने 'हिन्दू विधवा आश्रम' तथा महिला विद्यालयों की स्थापना की। सती उन्मूलन अधिनियम (1829) और विधवा पुनर्विवाह अधिनियम (1856) स्त्रियों को सामाजिक अन्याय से मुक्ति दिलाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे ।

सन् 1880 में भारत में औद्योगिक श्रमिकों की दशा में (खासकर महिला श्रमिक

---

1. गायत्री माहेश्वरी समकालीन कविता में स्त्री पृ. 13

और बाल श्रमिक) सुधार केलिए 'फैक्ट्री कानून' की मांग की गई । इसके परिणामस्वरूप सन् 1891 में 'इंडियन फैक्ट्रीस अमेंडमेंट एक्ट' बनाया गया जिसमें बाल श्रमिक की न्यूनतम आयु नौ वर्ष कर दी गई और स्त्री एवं बाल श्रमिकों के काम के घंटे घटा दिये गए । सन् 1880 में बाल विवाह विरोधी आन्दोलन का आरंभ हुआ । इसे तत्कालीन चिकित्सकों का पूर्ण समर्थन प्राप्त था । आन्दोलन के दौरान विवाह की आयु बढ़ाने की मांग की गई यद्यपि सन् 1860 में विवाह केलिए दस साल की आयु निर्धारित करने वाला कानून पारित हुआ था । आन्दोलन को हिन्दू रूढिवादियों के विरोध का सामना भी करना पड़ा । सन् 1901 में तिलक ने सहमति आयु कानून (एज ऑफ कॉन्सेन्ट एक्ट) के विरुद्ध आन्दोलन का नेतृत्व किया जिसके परिणामस्वरूप विवाह की आयु दस से बारह वर्ष कर दी गई । सन् 1929 में 'बाल-विवाह निरोधक कानून' लागू हुआ । इस कानून के तहत 18 वर्ष से कमआयु के लड़के और 14 वर्ष से कम आयु की लड़की को नाबालिग माना गया और इनके विवाह को अवैध एवं दंडनीय अपराध घोषित किया गया । अपने समस्त कार्यों के बावजूद समाज सुधारक स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व के हिमायती नहीं थे उनका कार्य उद्धार की भावना से प्रेरित था, "उस समय बंगाल में जमींदार वर्ग से अलग एक अंग्रेज़ी शिक्षित शहरी उच्च वर्ग (भद्रलोक) का उदय हुआ जो साम्राज्यवादी शासकों के प्रशंसक थे । इन लोगों ने स्त्रियों के सुधार पर अत्यधिक जोर दिया । इसका उद्देश्य पितृसत्तात्मक व्यवस्था को खत्म करना नहीं था और न स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार देना था । उनका प्रमुख उद्देश्य था पितृसत्तात्मक ढाँचे के भीतर स्त्री की सामाजिक स्थिति को सुधारना ताकि वह अच्छी पत्नी और माँ की भूमिका निभा सके ।"[1]

लेकिन उनके कार्य एवं आधुनिक शिक्षा का असर स्त्रियों पर अवश्य पड़ा था । स्त्रियाँ जागरूक होकर अपनी मुक्ति का गुहार लगाने लगी । परंपरागत रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, रीति रिवाज़ों को समाप्त कर स्त्री की स्थिति को सुधारने, उनके उद्धार एवं सामाजिक सुधार

---

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह (सं) स्त्री-अस्मिता साहित्य और विचारधारा पृ. 471

के उद्देश्य से कई संस्थाएँ कार्यरत थीं, जिनमें प्रमुख थे राजाराम मोहन राय द्वारा सन् 1828 ई. में स्थापित ब्रह्म समाज । इस संस्था ने स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, अन्तर्जातीय विवाह आदि को प्रोत्साहन दिया । पर्दा प्रथा, सती प्रथा के खात्मे पर ज़ोर दिया और बाल विवाह, बहु विवाह का विरोध किया । सन् 1866 ई में ब्रह्म समाज दो भागों में बँट गया । प्रार्थना समाज की स्थापना महादेव गोविन्द रानाडे ने सन् 1870 में की। जाति व्यवस्था को समाप्त करना, विधवा विवाह, स्त्री शिक्षा केलिए रात्रि पाठशालाएँ खोलना, बाल आश्रम, विधवा आश्रमों की स्थापना तथा स्त्री केलिए महिला संघ खोलना आदि इसके प्रमुख ध्येय रहे । दयानंद सरस्वती द्वारा सन् 1875 ई. में आर्य समाज की स्थापना की गई । स्त्री शिक्षा, बाल विधवा विवाह को बढावा, पर्दा प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह, दहेज प्रथा व अनमेल विवाह का विरोध किया गया । थियोसाफिकल सोसाइटी की स्थापना सुश्री ब्लावत्स्की और कर्नल आल्काट ने सन् 1876 में की थी । इसका मुख्य ध्येय समाज में भातृ-भाव उत्पन्न करना था । ऐनी बेसेंट ने इस संस्था का नेतृत्व 1893 में संभाला। गोपाल कृष्ण गोखले द्वारा सन् 1905 में भारत सेवक समाज की स्थापना की गई। इस संस्था ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया। विवेकानंद द्वारा रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के पश्चात रामकृष्ण मिशन की स्थापना की गई। समाज में स्त्रियों के व्यक्तित्व विकास को समान अवसर प्रदान किये जायें यह उनकी मंशा रही है । इसके अलावा पंडिता रमाबाई ने उपेक्षित महिलाओं केलिए 'शारदा सदन' व 'मुक्ति सदन' की स्थापना की, रमाबाई रानाडे ने 'सेवा सदन' की स्थापना कर स्त्रियों को शिक्षित करने, आजीविका प्रदान करने और उनकी सामाजिक स्थिति को सुधारने का बीड़ा उठाया।

उन्नीसवीं शताब्दी में पुरुषों द्वारा स्त्री जागरण की जो शुरुआत की गई, शताब्दी के अन्त में तथा बीसवीं शताब्दी में आकर उसकी कमान स्त्रियों ने अपने हाथों में थामी, "वह अपनी गुलामी के अवशेषों को चुनौती देने केलिए खुद उठ खड़ी हुई है, क्योंकि पुरुष एक सीमा के बाद अपने हितों और अंतर्निहित संस्कारों की वजह से स्त्री की विस्तृत स्वाधीनता

की कल्पना करने में असमर्थ होता है।"[1] पंडिता रमाबाई, रमाबाई रानाडे, भगिनी निवेदिता,स्वर्ण कुमारी देवी, चट्टोपाध्याय, विजयलक्ष्मी पंडित, रामेश्वरी नेहरू द्वारा स्त्री अधिकार के साथ-साथ शिक्षा, समाज सुधार, सामाजिक बदलाव, देश की आज़ादी और सामाजिक पुनः निर्माण की मांग उठाई गई । उनका आन्दोलन पुरुषों के बरक्स खड़ा न होकर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से चलाया गया था, "वास्तव में यह नारी मुक्ति आन्दोलन, नारी को पुरुष से मुक्ति दिलाने केलिए नहीं, नारी की खोई हुई शक्ति, सम्मान व स्थिति, जो प्राचीनकाल में थी उसे पुनः अर्जित करने का प्रयास है । यह नारी शोषण, असमानता, नारी अत्याचार और आर्थिक परतंत्रता के विरोध में है।"[2]

अनेक स्त्री लेखिकाएँ सामने आई । अनेक स्त्रियों ने पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया तथा उसमें लिखना शुरू किया । स्त्री आन्दोलन की सशक्त पत्रिका 'स्त्री दर्पण' के ज़रिए उस समय की प्रखर नारीवादी विचारक उमा नेहरू के साथ-साथ हृदय मोहिनी, हुक्मादेवी, सत्यवती और सौभाग्यवती आदि लेखिकाओं ने अपने लेखों एवं कहानियों के द्वारा अपनी सक्रिय भागीदारी निभाई। स्त्री का स्त्री आन्दोलन इन मायनों में भी पुरुष के स्त्री आन्दोलन से भिन्न था, वीर भारत तलवार के शब्दों में- "इसकी पहली विशेषता स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के आन्दोलन का होना था। यह स्त्रियों के सवालों को पुरुषों की नज़र से नहीं, स्त्रियों की नज़र से उठाता था । इसकी दूसरी विशेषता स्त्रियों के अपने संगठनों का बनना था । इस आन्दोलन में शामिल स्त्रियों ने अपने लेखन में पुरुषों की स्वार्थपरता, समाज में उनके विशेषाधिकारों स्त्री के प्रति उनकी तिरस्कारपूर्ण दृष्टि और स्त्रियों पर अत्याचार और शासन करने की उनकी प्रवृत्ति की कटु आलोचना की जो 19 वीं सदी के पुरुष सुधारकों के स्त्री-आन्दोलन में नहीं मिलती ।"[3] स्त्री दर्पण पत्रिका के अलावा गृहलक्ष्मी, आर्य महिला, महिला सर्वस्व आदि पत्रिकाएँ भी सक्रिय थी । सन् 1909 से सन् 1929 तक स्त्री दर्पण पत्रिका नियमित रूप से छपती रही, सन् 1923 से यह कानपुर से प्रकाशित होने लगा । स्त्री दर्पण

---

1. शंभुनाथ हिन्दी नवजागरण और संस्कृति पृ. 113
2. डॉ. उषा बाला महिला मुक्ति आन्दोलन और महिला दशक की सार्थकता पृ. 66
3. वीर भारत तलवार राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य कुछ प्रसंग पृ. 121

पत्रिका के योगदान का उल्लेख करते हुए प्रज्ञा पाठक लिखती है "स्त्री दर्पण 'भारतीय स्त्री को मनुष्योचित पद दिलाने का संकल्प' लेकर चलनेवाली पहली और अकेली पत्रिका थी। बीस वर्षों के स्त्री विमर्श के सामाजिक, राजनैतिक, वैचारिक, आन्दोलनात्मक और रचनात्मक परिदृश्य की सभी समस्याओं तथा उन समस्याओं को लेकर उठने वाले वाद-विवाद को सामने रखते हुए भविष्य के प्रति सकारात्मक और प्रगतिकामी दृष्टिकोण से उसका समाधान प्रस्तुत करने में इस पत्रिका की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका है।"[1] पत्रिकाओं के ज़रिए स्त्रियों के मुख्य छः मुद्दों को उठाने का कार्य करते हुए, इस मुद्दों को अपने नज़रिए से देखने, परखने का प्रयास किया गया जिसे 19 वीं सदी के पुरुष सुधारकों द्वारा पहले ही उठाया जा चुका था । पर्दा प्रथा, बाल-विवाह, विधवा विवाह, मृतस्त्रीक विवाह, शिक्षा और राजनीतिक अधिकारों का सवाल स्त्रियों के बहस का मुद्दा रहा । जहाँ पुरुषों द्वारा सिर्फ पर्दा का विरोध किया गया वहीं स्त्रियों ने परदे को अपनी अन्य समस्याओं से भी जोड़कर देखा, स्वास्थ्य केलिए हानिकारक माना और शिक्षा केलिए बाधक । श्रीमती सत्यवती द्वारा 'स्त्रियाँ और परदा', श्रीमती सौभाग्यवती द्वारा आधुनिक पर्दा प्रणाली तथा उससे हानियाँ' आदि लेखों से उस समय की पत्रिकाएँ रंग दी गईं ।

मृतस्त्रीक विवाह द्वारा पुरुषों के दूसरे, तीसरे एवं अनगिनत विवाह करने का विरोध किया गया । क्योंकि ऐसे में पुरुषों के जीवन में स्त्री की कोई अहमियत ही नहीं रह जाती। श्रीमती हुक्मादेवी ने अपने लेखों द्वारा इसका विरोध किया । उनके द्वारा इस प्रथा को मिटाने के उद्देश्य से 'कन्या हितकारिणी सभा' स्थापित करने का प्रस्ताव भी रखा गया । उनके द्वारा 'गूढ़ भाव प्रकाश' नामक पुस्तक भी लिखी गई ।

जहाँ पुरुषों केलिए विधवा विवाह स्त्री की उद्धार भावना से प्रेरित था, वहीं स्त्रियों द्वारा विधवा विवाह की खुलकर मांग नहीं की गई और न ही उन्होंने इसका विरोध किया ।

---

1 प्रज्ञा पाठक - स्त्री मुक्ति आन्दोलन और दुखिनी बाला पृ. 11

छोटी उम्र में लड़कियों को विवाह की अपेक्षा उनके द्वारा उनकी शिक्षा पर ध्यान देने की मांग की गई । स्त्री शिक्षा स्त्री आन्दोलन का अहम मुद्दा था । स्त्रियों ने अपने अपमान और तिरस्कार का मूल कारण शिक्षा के अभाव को माना । उनके द्वारा पर्दा प्रथा और बाल विवाह का विरोध किया गया क्योंकि ये स्त्री शिक्षा केलिए बाधक थे । स्त्री शिक्षा के उद्देश्य से कई स्कूल एवं विश्व विद्यालय की स्थापना की गई । ऐनी बेंसेट ने बनारस में लड़कियों केलिए स्कूल खोला जो आज वसंत कन्या महाविद्यालय के नाम से जाना जाता है ।

राजनीतिक अधिकारों का सवाल राष्ट्रीय आन्देलन के विकास के दौरान उठा था । देवी चौधरानी, महारानी तपस्विनी, शिरोमणि, रानी चेनम्मा, भीमाबाई, रानी तुलसीपुर आदि वीरांगनाओं ने अपनी दिलेरी से यह प्रमाणित कर दिया था कि वक्त आने पर स्त्रियाँ भी जान की बाजी देकर कुछ कर गुज़रने की हिम्मत रखती हैं । स्त्रियों की भागीदारी के बिना देश की आजादी की लडाई अधूरी ही रहेगी इसका एहसास अब तक पुरुषों को हो चुका था । भारत में 'स्त्री मुक्ति' के प्रश्न को 'देश की आजादी' के प्रश्न से अलगाकर नहीं देखा गया, "भारतीय स्त्री-विमर्श पाश्चात्य स्त्री विमर्श से इस अर्थ में भिन्न और विशिष्ट है कि उसमें नारी जागरण व्यापक राष्ट्रीय सरोकारों का हिस्सा बनकर आया है । आजादी की लड़ाई भी साथ-मिलकर लड़ी गई है ।"[1]

बीसवीं सदी में राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय से स्त्री मुक्ति आन्दोलन को काफी बल मिला। पहले स्त्रियाँ समितियों में, क्रान्तिकारी संगठनों में सक्रिय रूप से हिस्सा नहीं लेती थी। उनका कार्य संगठनों केलिए संदेशवाहक के रूप में, अस्त्र-शास्त्रों को छुपाने और क्रान्तिकारियों को पनाह देने तक ही सीमित था । राधा कुमार के शब्दों में "1920 के दशक में महिलाओं की विशेष भूमिका शायद यह सोचकर बनाई गई थी कि स्त्री होने के कारण उन्हें शारीरिक यातना का शिकार नहीं बनाया जाएगा और वैसा उस समय में हुआ भी, परन्तु

---

1 सुमन राजे राष्ट्रीय आन्दोलन और महिला लेखन पृ. 23

1930 के दशक के आन्दोलनों में यह मान्यता ज्यादा दिनों तक टिकी नहीं रह सकी ।"[1] स्त्री की योग्यता को सन्देह की निगाह से देखा गया । पुरुष उन्हें मित्र के रूप में स्वीकार करने से कतराते थे, स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल स्त्रियों ने निरन्तर संघर्ष करके चुनौतीपूर्ण भूमिकाओं की मांग की लेकिन वे नाकाम रही । पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण के कारण नेताओं ने उन्हे निर्णायक भूमिकाओं से वंचित रखा । निम्न वर्ग की स्त्रियों की भागीदारी को आन्दोलन में हेय दृष्टि से देखा गया । प्रमाण-आँकड़ों के अभाव में इनका योगदान रेखांकित ही नहीं हो सका ।

एनी बेसेंट, मार्गरेट नोबेल, मार्गरेट कजिन्स, सरोजनी नायडू, कस्तूरबा गाँधी, अरुणा आसफ अली, सुचेता कृपलानी आदि स्त्रियाँ राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रमुख नेत्रियों के रूप में उभरी । स्वतन्त्रता संग्राम में शामिल स्त्रियों ने ही स्त्री मुक्ति एवं स्त्री जागृति का कार्य किया । स्त्री जागृति ने स्त्री मुक्ति को जन्म दिया । देश सेवा और समाज सेवा स्त्री जागृति के आयाम रहे, "नारी मुक्ति केलिए कोई नेत्री विशेष रूप से सामने नहीं आई । जिन नारियों के नाम गिनाए गए हैं वे राजनीतिक क्षेत्र या साहित्यिक क्षेत्र से मुख्य रूप से जुड़ी रही और गौण रूप से नारी मुक्ति आन्दोलन में हिस्सा लेती रही ।"[2] थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापक सुश्री ब्लावत्स्की स्त्री जागरण की दिशा में कार्यरत थी । बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में मार्गरेट नोबोल (भगिनी निवेदिता) ने भारतीय स्त्रियों को शिक्षित कर जागृत करने का बीड़ा उठाया । यह शिक्षा मात्र स्त्रियों को ज्ञान प्रदान करने के उद्देश्य से ही नहीं दी गई बल्कि विदेशी दासता के विरुद्ध जागृत कराना भी इसका मुख्य ध्येय था । उनका कार्यक्षेत्र बंगाल रहा । थियोसोफिकल सोसाइटी का नेतृत्व संभालने वाली एनी बेसेन्ट सन् 1893 में भारत में आई । सन् 1914 तक इनका कार्यक्षेत्र समाज सुधार तक ही सीमित रहा । 'सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज' की स्थापना और 'न्यू इंडिया' के संपादन द्वारा उन्होंने सामाजिक जागरण का कार्य किया । ऐनी बेसेन्ट ने मार्गरेट नोबेल व मार्गरेट कजिन्स के साथ मिलकर 'होमरूल लीग'

---

1. राधा कुमार स्त्री संघर्ष का इतिहास पृ. 168
2. शांति कुमार स्याल नारी मुक्ति संग्राम पृ. 36

की स्थापना की । उन्हें 1917 में कलकत्ता अधिवेशन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्षा चुनी गयी । सन् 1917 में मद्रास में श्रीमती मार्गरेट कजिन्स ने अखिल भारतीय स्तर पर एक महिला संगठन 'इंडियन विमेन्स ऐसोसिएशन' की स्थापना की, जो कि मताधिकार और अन्य राजनीतिक अधिकारों केलिए सरकार से लड़ रही थी । इसी वर्ष जब मांटेग्यू भारत आए तब सरोजनी नायडू के नेतृत्व में स्त्रियों के एक प्रतिनिधि मंडल द्वारा स्त्रियों केलिए मताधिकार की मांग की गई। भारतीय स्त्रियों द्वारा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का यह पहला प्रयत्न था । सन् 1925 में सरोजनी नायडू क्रांग्रेस की पहली भारतीय महिला अध्यक्षा बनीं । सरोजनी नायडू द्वारा 'माउंटफोर्ड रिफार्म्स' का विरोध किया गया । भारतीय स्त्रियों ने पहली बार सन् 1926 में चुनाव में भाग लिया । स्वतन्त्र भारत के संविधान में वयस्क मताधिकार की प्राप्ति के साथ स्त्रियों को मतदान और चुनाव लड़ने का पूर्ण अधिकार प्रदान किया गया । स्त्रियों में राजनीतिक चेतना जागृत करने के उद्देश्य से सन् 1927 में 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' की स्थापना की गई । अखिल भारतीय महिला सम्मेलन एक गैर राजनीतिक संस्था थी जो कि स्त्रियों में सामाजिक सुधारों के साथ-साथ राजनीतिक जागृति की दिशा में कार्यरत था । संगठन का नारा था - 'समान अधिकार और समान दायित्व'। संगठन द्वारा किसी तरह की रियायत या आरक्षण पाने के पक्ष में किये जानेवाले प्रयत्नों का खुलकर विरोध किया गया ।

इसके अलावा इंडियन होमरूल लीग (1928), इंटरनेशनल फेडरेशन आफ यूनिवर्सिटी वीमेंस (1917) आदि संगठनों का उद्देश्य महिलाओं में जागृति उत्पन्न करना, उन्हें शिक्षा देना, अन्धविश्वासों से मुक्त करना तथा अधिकार और कर्तव्य के प्रति उन्हें सजग करना था । स्त्री मुक्ति आन्दोलन की खामी की ओर इशारा करते हुए आशारानी व्होरा लिखती है "यह नारी आन्दोलन उच्च संभ्रान्त शिक्षित नारी वर्ग द्वारा नगरों से प्रारंभ होकर मुख्यतः नगरीय ही बना रहा । शिक्षा-प्रसार के साथ धीरे-धीरे मध्य व निम्न मध्यवर्ग की

सदस्याओं की संख्या बढ़ने पर भी इसकी गूंज छोटे शहरों, कस्बों तक ही पहुँची । बहुसंख्यक ग्रामीण व आंचलिक स्त्री-समुदाय इस जागृति की क्षीण आवाज़ और धुधंली किरण से भी लगभग वंचित रहा।"[1] स्त्री जागरण, स्त्री उत्थान के मकसद से कस्तूरबा गाँधी मैमोरियल ट्रस्ट (1944), श्रद्धानन्द अनाथ वनिता आश्रम, अखिल भारतीय महिला आश्रम, नारी निकेतन, नारी रक्षक गृह, दि लेडीज थियोसोफिकल सोसाइटी, 'सखी समिति' शारदा सदन, सेवा सदन आदि संस्थाओं की स्थापना की गई । विदेशी वस्तु बहिष्कार, 1930 का नमक सत्याग्रह, 1932 का सविनय अवज्ञा आन्दोलन, 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन, सरकारी नियमों का उल्लंघन कर जंगल से ईधन इकट्ठे करने में भी स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी रही ।

राजनीतिक क्षेत्र में उभरे गाँधी जी ने स्त्री की सहभागिता को विदेशी दवावों, शराब की दूकानों की घेरेबंदी तक सीमित रखा । इसका विरोध करते हुए मार्गरेट कजिंस द्वारा हर क्षेत्र में स्त्रियों की बराबरी की मांग की गई, चाहे वह धरना, प्रदर्शन, या जेल में जाने की बात ही क्यों न हो, स्त्री होने के कारण उन्हें पीड़ादायक कार्यों से हटाये रखने की रीति को उचित नहीं ठहराया गया । स्त्रियों द्वारा कहा ही नहीं गया बल्कि नमक सत्याग्रह के दौरान उन्होंने साबित कर दिया कि स्त्री भी कुछ कर गुज़रने की हिम्मत रखती है । उसके हौसले बुलन्द है । गाँधी ने घर की चारदीवारी में कैद स्त्री को ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मोर्चे में शामिल करने का सराहनीय कार्य किया । उन्होंने जो अहिंसात्मक रणनीति अपनाई थी वह तभी सफल हो सकती थी जब अधिक संख्या में जन सरकारी कानून को तोडे, धरना दे और पुलिस आक्रमण का डटकर सामना करे । यह स्त्रियों के सहयोग से ही संभव था और गाँधी जी ने स्त्री की शक्ति को राष्ट्रीय आन्देलन में समाहित कर लिया ।

गाँधी का मानना था कि स्त्रियों के सहयोग के बिना स्वाधीनता आन्दोलन की

---

1. आशारानी व्होरा नारी विद्रोह के भारतीय मंच पृ. 63-64

कामयाबी नामुमकिन है । उनके आह्वान पर स्त्रियों ने जिस दिलेरी के साथ कार्य किया उसे देखकर खुद भारतीय समाज तक दंग रह गया । इसे उघाड़ने का प्रयास करते हुए महादेवी वर्मा लिखती है "महात्मा गाँधो की इस उक्ति का, कि यदि माताएँ साथ नहीं आती तो मैं सौ वर्ष प्रयत्न करके भी देश को स्वतन्त्र नहीं कर सकूँगा, का जैसा उत्तर भारत की नारी ने दिया वह उसकी व्यापक पीड़ा और युगव्यापी अशिक्षा देखते हुए अकल्पनीय था"[1] सन् 1930 के नमक सत्याग्रह के दौरान पूरे देश में सत्याग्रहियों का नेतृत्व करने केलिए महिलाओं का चुनाव किया गया । पहली बार नमक सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी संख्या में स्त्रियों की भागीदारी दर्ज की गई । गाँधी की गिरफ्तारी के साथ ही ऊँचे ओहदे पर आसीन अधिकारियों द्वारा इस्तिफा दे दिए गए जिनमें मुत्तुलक्ष्मी रेड्डी तथा हंसा मेहता भी शामिल थी । सन् 1930 से लगातार स्त्रियों ने उग्रवादी गतिविधियों में प्रत्यक्ष भाग लिया था ।

गाँधीजी स्त्री-पुरुष समानता के पक्षधर थे, लेकिन स्त्री के पढ़-लिखकर नौकरी करने के पक्ष में नहीं थे । स्त्री संबंधी उनके विचार परंपरा से पोषित थे । उन्होंने दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा और तलाक का विरोध किया । पर्दा प्रथा का विरोध करते हुए गाँधी ने कहा कि "पवित्रता कुछ पर्दे की आड़ में रखने से ही नहीं पनपती । वह बाहर से नहीं लादी जा सकती। उसे तो भीतर से ही पैदा होना होगा । "[2] 'उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन किया । गाँधी जी के आह्वान पर घर-बाहर के दोहरे दायित्व का निर्वाह करते हुए राष्ट्रीय आन्दोलन में स्त्रियाँ कूद पड़ी । सदियों से कुंद पड़ी हुई उनकी प्रतिभा फिर से जाग उठी, जागृत होकर उन्होंने अपने अधिकार एवं मुक्ति केलिए गुहार लगाया । विदेशी दासता के विरुद्ध पुरुषों के साथ मिलकर अपनी आवाज़ बुलन्द की । यह उनकी जागृति का जीता-जागता मिसाल था, "ये आन्दोलन पितृसत्ता के बजाय विदेशी सत्ता के विरोध में किए गए थे । लेकिन ये स्त्री जागृति के महत्वपूर्ण मिसाल थे, जिससे इन आन्दोलन को नारीवादी

---

1. निर्मला जैन (संपादन) महादेवी साहित्य खण्ड 4 पृ. 324
2. डॉ. राजरानो शर्मा हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी पृ. 35

आन्दोलन के इतिहास से दर किनार नहीं किया जा सकता "[1]। स्वाधीनता आन्दोलन में स्त्रियों की भागीदारी ने उनके भीतर यह एहसास दिलाया कि उनके लिए एक नई जगह बन रही है । आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी में पुरुषों द्वारा स्त्रियों की स्थिति में सुधार से आरंभ होकर स्त्री-पुरुष समानता के ज़रिए स्त्री को समाज का उपयोगी अंग बनाने एवं स्वनिर्णय के अधिकार तक विस्तृत हुआ । सन् 1920 में स्त्री-पुरुष समानता की वकालत की गई । मज़दूर आन्दोलन के साथ-साथ ट्रेड यूनियन में भी स्त्रियाँ सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में कार्यरत रही । वीमेंस इंड़ियन एसोसिएशन पहला महिला संगठन था जिसके द्वारा सन् 1921 में महिला श्रमिकों के प्रसूति अवकाश का प्रश्न उठाया गया । बाद में अन्य आन्दोलनों के ज़रिए इसे कानूनी मान्यता प्रदान की गई ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्रियों को संविधान में समान अधिकार दिए गए। उत्तराखण्ड में साठ के दशक के पूर्वार्द्ध में महिलाओं का शराब-विरोधी आन्दोलन सक्रिय हुआ जिसमें सुन्दरलाल बहुगुणा के नेतृत्व में शराब निर्माताओं तथा विक्रेताओं के विरुद्ध कार्यवाही की गयी । नशाखोरी को पत्नी उत्पीड़न का प्रमुख कारण स्वीकारा गया और पति द्वारा कमाई को लुटाने से जोड़ा गया । शहादा आन्दोलन के दौरान ऐसे ही मुद्दे उठाए गए। आन्दोलनकारियों द्वारा पत्नी उत्पीड़कों की खुलेआम पिटाई की गई । घरेलू हिंसा जैसे निजी मामलों को सार्वजनिक रूप से उठाया गया और पुरुष वर्चस्व के खिलाफ आवाज़ उठाई गई। सन् 1973 में बम्बई में मूल्यवृद्धि आन्दोलन-मूल्यवृद्धि, भ्रष्टाचार, कालाबाज़ारी के खिलाफ छात्रों द्वारा चलाया गया आन्दोलन था जिसमें स्त्रियाँ भी शरीक हुईं, जो गुजरात में 1974 में नवनिर्माण आन्दोलन में बदल गया । आन्दोलन के दौरान 'प्रगतिशील महिला संगठन' द्वारा स्त्रियों की संपूर्ण समस्याओं पर विचार किया गया । स्त्री शोषण से मुक्ति के रास्ते ईजाद किए गए । श्रम विभाजन के भेदभाव को स्त्रियों को आर्थिक रूप से पुरुषों पर निर्भर रखने की मंशा का ही हिस्सा कहा गया । दलित स्त्रियों द्वारा 'महिला समता सैनिक

---

1. Dr. Leelavathi - Feminism Charithraparamaya Oranweshanam -p. 45

दल' का गठन किया गया जिसने स्त्री की जुझारू छवि पर बल दिया । प्रगतिशील महिला संगठन और महिला समता सैनिक दल ने महिलाओं के यौन उत्पीड़न पर अपना ध्यान केन्द्रित किया । जहाँ प्रगतिशील महिला संगठन ने स्त्री उत्पीड़न के कारणों को श्रम विभाजन से जोड़ा वहीं महिला समता सैनिक दल ने जैविक कारणों से । आगे चलकर पुरुषों का स्त्रियों पर नियंत्रण, स्त्री का परिवार से जुड़ा होना, पूँजीवादी व्यवस्था, वर्ग विभेद में इसके कारण खोजे गए ।

आजादी के बाद के स्त्री आन्दोलन में स्त्री उत्पीड़न, स्त्री शोषण, स्त्री पुरुष भेदभाव केन्द्रीय मुद्दे के रूप में उभर आये। संविधान प्रदत्त समानता के सिद्धान्त को व्यावहारिक तौर पर अमल किये जाने के प्रयास किये गये । राधा कुमार के शब्दों में "स्वतन्त्र भारत का समकालीन नारी आन्दोलन महिलाओं की उपेक्षा, शोषण और श्रम में लिंग आधारित भेदभाव को समाप्त करने तथा बराबरी के सिद्धान्त का दृढतापूर्वक पालन करने की नीति के साथ शुरू हुआ । स्त्री और पुरुष के बीच असमानता को बड़े पैमाने पर उठाया गया और कहा गया कि जैविक तौर पर दोनों समान हैं अतः महिलाओं की बराबरी के अधिकारों के मामले में सार्वजनिक या निजी किसी भी क्षेत्र में असर नहीं पड़ना चाहिए।"[1] संगठनों द्वारा दहेज प्रथा विरोधी आन्दोलन, बलात्कार विरोधी आन्दोलन भी चलाए गए । दहेज विरोधी आन्दोलन और बलात्कार विरोधी आन्दोलन द्वारा स्त्रियों पर होनेवाली हिंसा पर प्रकाश डाला गया । दहेज विरोधी आन्दोलन की शरुआत दिल्ली में हुई जो कि बाद में पंजाव, महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल में फैल गया । इस आन्दोलन में पितृसत्ता-विरोधी, पूँजीवाद विरोधी स्त्रियों से लेकर रूढ़िवादी पितृसत्ता के पक्षधर सहित अनेक विभिन्न दृष्टिकोण रखनेवाली स्त्रियों ने भाग लिया । दहेज विरोधी आन्दोलन में 'स्त्री संघर्ष' और 'महिला दक्षता समिति' अधिक सक्रिय रहे । अब तक जिन मामलों को पारिवारिक या निजी कहकर दफना दिया जाता था उसे ही सरेआम लाने का प्रयास किया

1. राधा कुमार स्त्री संघर्ष का इतिहास पृ. 14

गया । आन्दोलनकारियों द्वारा माँगें उठाई गई कि मृत्यु पूर्व दिये गए बयान को साक्ष्य माना जाए, पुलिस द्वारा चुस्ती से कार्यवाही की जाए और हत्यारों को सजा सुनाई जाए । आत्महत्या के मामले को हत्या के रूप में स्वीकारा जाय । संगठनों द्वारा इसके विरोध में अभियान एवं प्रदर्शन किए गए । 'स्त्री संघर्ष' द्वारा 'ओम स्वाहा' नुक्कड़ नाटक खेला गया। इसके अलावा 'मुलगी जाली हो' 'एक लड़की पैदा हुई है' आदि नाटक खेले गए । इन नुक्कड़ नाटकों का मुख्य ध्येय था, "जन्म से लेकर मृत्यु तक जीवन की अलग-अलग अवस्थाओं में स्त्री किन-किन पूर्वग्रहों के भार सहती है इसका संकेतात्मक चित्रण और फिर इनसे उबरने केलिए आदि शक्तियों का आह्वान इन नाटकों का लक्ष्य था ।"[1] जन जागृति लाने में आन्दोलनकारी सफल हुए । आन्दोलन में सक्रिय स्त्रियों ने दहेज हत्या को पूँजीवाद से उपजी समस्या से जोड़कर देखा तो दूसरी ओर इसे पितृसत्ता से जोड़कर देखा गया । सन् 1980 में स्त्रियों को कानूनी सुरक्षा प्राप्त हुई । एक पुलिस अधीक्षक और एक उपअधीक्षक के नेतृत्व में दहेज हत्या, दहेज उत्पीड़न के मामले को निपटाने केलिए एक स्थायी समिति का गठन किया गया ।

दहेज संबंधी शिकायतें दर्ज करने केलिए थानों में अलग से अपराध शाखाएँ खोले गए । सन् 1983 में क्रिमिनल लॉ ऐक्ट पारित किया गया जिसके तहत पत्नी उत्पीड़न केलिए तीन साल की सजा और जुर्माने का प्रावधान हुआ । 'एविडेन्स ऐक्ट' का सेक्शन 113 -ए संशोधन द्वारा कोर्ट को छूट दी गयी कि आत्महत्या लगने वाले केसों का अलग से अध्ययन हो । क्रिमिनल प्रोसिड़योर कोड के सेक्शन 174 का संशोधन किया गया जिसके तहत विवाह के सात वर्ष के भीतर मरनेवाली स्त्रियों की शव-परीक्षा अनिवार्य घोषित कर दी गई । लेकिन कई बार यह स्पष्ट नहीं हो पाया कि मृत्यु का कारण हत्या है या आत्महत्या।

बलात्कार स्त्रियों के प्रति होने वाले अत्याचारों में सबसे घिनौना अपराध है जिसकी

---

1. अनामिका स्त्रीत्व का मानचित्र पृ. 114

रिपोर्ट सबसे कम दर्ज कराई जाती है । बड़े पैमाने पर पुलिस द्वारा एकल एवं सामूहिक बलात्कार किए गए । बलात्कार के विरुद्ध स्त्री संगठनों द्वारा प्रदर्शनियाँ, नुक्कड़ नाटक, सभाएँ आयोजित किए गए । भारतीय दण्ड संहिता के बलात्कार संबंधी कानूनों में सुधार करने की मांग की गई । हिरासत में हुए बलात्कार केलिए अनिवार्य रूप से दस वर्ष के कारावास का दण्ड निर्धारित किया गया और मुकदमें की सुनवाई कैमरे के सामने करने के साथ-साथ साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार अभियुक्त पर डाल दिया गया । संगठनों द्वारा कैमरे के सामने सुनवाई का विरोध किया गया । इन संगठनों ने यह भी प्रस्ताव रखा कि साक्ष्य जुटाने का उत्तरदायित्व केवल हिरासत में हुए बलात्कार के मामले में ही नहीं बल्कि हर प्रकार के मामले में एक जैसे हो । अभियुक्त को दी जानेवाली सजा पर्याप्त और विशिष्ट कारणों से घटाया भी जा सकता है । अधिकतर मामलों में बलात्कार के समय स्त्री की उम्र को साबित न कर पाना,देर से रिपोर्ट दर्ज करना, बलात्कार के समय इस्तेमाल किए गए वस्त्रों को साक्ष्य के रूप में सुरक्षित न रखना स्त्री के हित में नहीं गया । कानून की खामियों की वजह से अभियुक्त बाइज्जत बरी कर दिये गये । लेकिन आन्दोलन की उपलब्धियों को खारिज नहीं किया जा सकता।

आन्दोलनों के परिणास्वरूप स्त्रीवादी गतिविधियाँ शिक्षा, पत्रकारिता एवं चिकित्सा के क्षेत्र में विस्तृत हुईं । हर महत्वपूर्ण अखबारों में स्त्री संबंधी विमर्शों केलिए एक अलग सा कॉलम रखा गया । अखबारों एवं पत्रिकाओं में नारीवादी विषयों पर लिखने केलिए महिला पत्रकारों को चुना जाने लगा । स्त्री से जुड़ी घटनाएँ छपने लगीं। स्वतन्त्र अनुसंधान संस्थाओं के माध्यम से स्त्रियों के जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन प्रारंभ हुआ । इनमें दिल्ली का 'सेंटर फॉर वीमेन्स डवलपमेंट स्टडीज़ प्रमुख है । मुंबई के एस.एन.डी.टी महिला विश्वविद्यालय द्वारा महिला अनुसंधान एकांश स्थापित किया गया । केन्द्रीय सरकार की एक संस्था विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा महाविद्यालय स्तर पर महिला अध्ययन की

योजनाएँ बना रहा है । महिला अध्ययन केन्द्रों में नारीवादी गतिविधियों केलिए महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध कराई गई । मेडिको फ्रेंड्स सर्किल एवं वालंटरी हेल्थ एसोसिएशन ऑफ इंडिया के सहयोग से नारीवादियों द्वारा भारत जैसे विकासशील देशों की दवाइयों के 'डम्पिंग जोन' बनाने का विरोध किया गया । इन संगठनों द्वारा 'नेट-एन' तथा 'डीपो-प्रोवेरा' नामक हानिप्रद गर्भनिरोधक गोलियों तथा कन्या भ्रूण-हत्या की दोषी एमिनोसेण्टोसिस आदि ऐण्टी-नेटल जाँच प्रणालियों के विरुद्ध डटकर प्रचार किया गया एवं एमिनोसेण्टोसिस को अवैध घोषित कराया गया ।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् 1975 का वर्ष 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' के रूप में घोषित किया गया । यह स्त्री की स्थिति में सुधार लाने की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण घटना थी। इसके उद्देश्य को उद्घाटित करते हुए आशारानी व्होरा लिखती है "मुख्य उद्देश्य था स्त्रियों के पिछड़ेपन और उनकी समस्याओं की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करना तथा उनके साथ जुड़ी भेदभाव की स्थितियों व कथित निर्योग्यताओं के निवारण केलिए संबंधित सरकारों को विशेष योजनाएँ बनाने केलिए बाध्य करना ।"[1] 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' का नारा था- समानता, विकास और विश्वशांति । केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा स्त्री की सामाजिक स्थिति में सुधार केलिए कई जोयनाएँ लागू की गईं । सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों द्वारा 'आठ मार्च' अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया गया । कमेटियाँ, गोष्ठियाँ, सेमिनार और सम्मेलन आयोजित किए गए । आगामी दस वर्षों में इन योजनाओं के क्रियान्वयन केलिए 'महिला दशक' की योजना बनी, अधिकांश कार्यक्रमों के केन्द्र में स्त्री शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार को रखा गया । इनसे स्त्री मुक्ति आन्दोलन को बल मिला ।

समय-समय पर स्त्री मुक्ति आन्दोलन को नई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा। जब तक धार्मिक सम्प्रदाय द्वारा स्त्री मुद्दों को परिभाषित करने की छूट दी जाएगी तब तक

---

1. आशारानी व्होरा औरत कल, आज और कल पृ. 163

स्त्री जाति, सम्प्रदाय, धर्म के नाम पर विभाजित होती जाएगी । हिन्दू स्त्री के प्रश्न मुस्लिम स्त्री के प्रश्न से अलग हो जाएगें और स्त्री एकजुटता को कमज़ोर करने की दिशा में यह एक कारगर कदम होगा । निजी कानूनों के तरजीह ने स्त्री-पुरुष असमानता को बरकरार रखने में सहयोग दिया और समान नागरिक संहिता पर अमल करने की संवैधानिक मंशा को साकार नहीं होने दिया । समान नागरिक संहिता का सवाल स्त्री की बेहतरी से जुड़ता है, "समान नागरिक संहिता का लक्ष्य सिर्फ निजी कानूनों की विविधता को समाप्त करना नहीं है, इसका मूल लक्ष्य औरतों के सामाजिक, आर्थिक और कानूनी दृष्टि से उत्थान का लक्ष्य है । "[1] शाहबानो और रूपकँवर के प्रकरण में यह बात बड़ी शिद्दत के साथ महसूस की गई। दोनों प्रकरणों में स्त्री को स्त्री के खिलाफ खड़ा किया गया । 'व्यक्तिगत औरत' के विपरीत 'अच्छी औरत' की छवि गढ़कर नारीवादियों को मुँहतोड जवाब दिया । शाहबानो और रूपकँवर के मामले में धार्मिक नेताओं द्वारा 'धर्म खतरे में है' कहकर समान नागरिक संहिता को नकारा, वोटों की राजनीति ने इस अलगाव को और अधिक भडकाने का कार्य किया परिणामस्वरूप स्त्री के पक्ष में निर्णय नहीं हो पाए । बावजूद इसके समान नागरिक संहिता का मुद्दा इन मामलों के केन्द्र में बना रहा ।

भारतीय नवजागरण के दौरान निजी कानूनों को संहिताबद्ध करने के प्रस्ताव के ज़रिए समान नागरिक संहिता की दिशा में पहल की गई । राजाराम मोहन राय एवं ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप सती प्रथा विरोधी अधिनियम, विधवा पुनर्विवाह अधिनियम लागू किए गए । इस तथ्य को भी खारिज नहीं किया जा सकता कि अंग्रेज़ों द्वारा एक ऐसी नीति अपनाई गई जिसमें पारिवारिक संबंधों के मामले में हिन्दू-हिन्दू कानूनों द्वारा चालित होगे और मुसलमान-मुसलमान कानूनों द्वारा । सन् 1920 में हिन्दू कानून को संहिताबद्ध करने के प्रयास किए गए । डॉ. गंगानाथ झा द्वारा इसी उद्देश्य से दो खण्डों में 'हिन्दू ला इन इट्स सोर्सेस' नामक किताब लिखी । हिन्दू कानून को संहिताबद्ध

---

1. सरला माहेश्वरी समान नागरिक संहिता पृ. 93

करने की दिशा में वास्तविक कार्य 1937 के 'हिन्दू वीमेंस राइट टू प्रोपर्टी एक्ट' पारित किये जाने के बाद हुआ जो 'देश मुख एक्ट' के रूप में जाना जाता है । सन् 1941 में कलकत्ता उच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश बी.एन. राव की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया गया जिसने एक व्यापक कानून बनाने की ज़रूरत पर बल दिया । इसके बाद बी.एन. राव की ही अध्यक्षता में 1944 में एक ला कमेटी का गठन किया गया । कमेटी द्वारा उत्तराधिकार, भरण पोषण, विवाह और तलाक, अभिभावकत्व, संयुक्त परिवार की संपत्ति, महिलाओं की संपत्ति, विरासत और दत्तक पर एक संहिता का मसविदा तैयार किया गया जिसे 'हिन्दू कोड बिल' का नाम दिया गया और डॉ. बी आर अम्बेडकर की अध्यक्षता में बनी एक सिलेक्ट कमेटी को सौप दी ।

विवाह और उत्तराधिकार के क्षेत्र को छोड़कर तमाम क्षेत्र में कानून की एकविध संहिता कायम है । विवाह और उत्तराधिकार का क्षेत्र निजी कानून पर आधारित है । निजी कानून न सिर्फ पुरुष और स्त्री के प्रति भेदभावपूर्ण रवैया अपनाता है वरन् अलग-अलग धर्मों के निजी कानून धर्म के आधार पर स्त्री केलिए अलग-अलग कानून मुहैया कराते हैं। ये कानून स्त्री को धर्म के आधार पर न केवल विभाजित करते हैं वरन् स्त्री के विपक्ष में भी खड़े हैं । संविधान निर्माण के दौरान संविधान सभा ने विवाह और उत्तराधिकार के प्रश्न पर एकरूपता लाने का प्रयत्न हिन्दूकोड बिल के रूप में स्वतन्त्रता पश्चात किया था, जिसे संसद के अन्दर और बाहर के विरोध के कारण तत्काल टाल दिया और बाद में हिन्दू कोड़ बिल को चार अलग-अलग कानूनी रूपों में पारित किया हिन्दू विवाह अधिनियम (1955), हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम (1956), हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम (1956) तथा हिन्दू अल्पवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम (1956) । इनमें भी खामियाँ हैं जिसकी वजह से ये कानून भी स्त्री के पक्ष में नहीं जाते ।

सन् 1971 में भारत में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और अधिकारों की जाँच करने के उद्देश्य से एक स्टेट्स कमेटी का गठन किया गया । सन् 1974 में कमेटी ने 'समानता की ओर' शीर्षक से अपनी रिपोर्ट पेश की । इसका एक अध्याय 'महिलाएँ और कानून' विषय पर था, उसमें खास तौर से निजी कानून पर चर्चा की गई थी । कमेटी द्वारा निजी कानून से संबंधित एक-एक विषय पर अलग से अपना विचार स्पष्ट किया गया । कमेटी द्वारा किसी भी निजी कानून को आदर्श कानून के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया और किसी एक सम्प्रदाय के निजी कानून को दूसरे सम्प्रदाय पर थोपने का कड़ा विरोध किया । कमेटी के योगदान को रेखांकित करते हुए सरला माहेश्वरी लिखती है "हम सभी जानते हैं कि 'स्टेट्स कमेटी' की इस रिपोर्ट ने भारत के नारी आन्दोलन और महिलाओं के प्रति सामाजिक और कानूनी दृष्टिकोण की दिशा में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी ।"[1] कमेटी द्वारा लड़कियों केलिए विवाह की आयु 18 वर्ष करने एवं विवाह को पंजीकृत करने की भी मांग उठाई गई । बहु-विवाह से संबंधित कमेटी के विचार थे कि जब तक बहु विवाह को अनुमति दी जाएगी तब तक समाज में स्त्री-पुरुष समानता या लिंगाधारित समानता की बात नामुमकिन है । दहेज, तलाक, अभिभावकता, भरण-पोषण, विरासत, दत्तक, फौजदारी कानून नागरिकता आदि विषयों पर महत्वपूर्ण विमर्श प्रस्तुत किया गया और निजी कानून की खामियों को दूर करने के सुझाव दिये गए ।

मुस्लिम निजी कानून

भारत का मुस्लिम निजी कानून एकमात्र निजी कानून है जिसमें बहु-विवाह को मान्यता प्राप्त है । मेहर की राशि न देना पडे इसलिए बिना तलाक दिये बहु विवाह के प्रावधान के तहत नया विवाह कर लिया जाता है । आर्थिक रूप से स्त्रियों की पुरुषों पर निर्भरता पत्नी को पति से बाँधे रखती है जो एक से अधिक स्त्रियों का भी पति है । भारत

---

1. सरला माहेश्वरी समान नागरिक संहिता पृ. 83

में तलाक - ए बिदअत् (तीन तलाक) तलाक का सबसे प्रचलित रूप है जिसका इस्तेमाल स्त्री को दबाकर रखने केलिए किया जाता है । अन्य मुस्लिम देश जहाँ तलाक में न्यायालय की भूमिका सुनिश्चित कर रहे हैं वहीं भारत में इस दिशा में कोई ठोस कार्य नहीं किया जा रहा । तुर्की, इराक, सीरिया, ट्यूनिशीया, इंडोनेशिया, पाकिस्तान, बंगलादेश के मुस्लिम निजी कानूनों में संशोधन किया जा चुका है । पाकिस्तान में मुतल्लिका दफ्तरों या अदालतों में बिना कार्यवाही किए पति अपनी पत्नी को तलाक नही दे सकता एवं निकाह के वक्त स्त्री को भी तलाक का अधिकार दिया गया है । हिन्दू निजी कानून की अपेक्षा मुस्लिम निजी कानून में उत्तराधिकार के अधिकार बेहतर है । लेकिन वहाँ भी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त नहीं ।

हिन्दू निजी कानून

हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 में पुत्री को पुत्र के समान एक साथ और बराबर का वारिस बनाया । पुत्री को उसके पिता की सह-उत्तराधिकारी (संयुक्त परिवार) संपत्ति में हिस्सा दिया, परन्तु उसको उसके भाई के साथ बराबर का हिस्सेदार नहीं बनाया, जो जन्म से अपने पिता के समान हिस्से का उत्तराधिकार होता है । इस अधिनियम की धारा 4(2) के द्वारा कृषि लायक ज़मीन के विभाजन को रोकने का प्रावधान करने अथवा हदबन्दी के निर्धारण केलिए इस प्रकार के खेतों के संबंध में काश्तकारी अधिकार के हस्तांतरण का प्रावधान करने वाले कानूनों को छोड़ दिया गया अथवा अधिनियम के लागू होने से छूट दे दी गई । इसमें स्त्रियों के साथ न्याय नहीं हो सका । भारत में अधिकांश ज़मीन विरासत से प्राप्त संपत्ति में है । इस अधिनियम की धारा 23 के अधीन किसी स्त्री को यदि ऐसा मकान विरासत में मिलता है जिसमें परिवार के सदस्य रह रहे हैं, तो उसे मकान का 'बंटवारा' करने का कोई अधिकार नहीं । वह उसमें तभी रह सकती है जब वह अविवाहित या तलाकशुदा

हो । इस अधिनियम की धारा 30 के अधीन हिन्दू पुरुष अपनी पैतृक या स्वअर्जित संपत्ति के संबंध में वसीयत करने केलिए भी स्वतन्त्र है । हिन्दू विवाह अधिनियम (1955) में 1976 में संशोधन किया गया । विवाह और तलाक के अधिकार भी व्यावहारिक रूप में स्त्री के पक्ष में नहीं गए । पुरुष द्वारा दूसरा विवाह किए जाने पर साबित करना मुश्किल होता है । गुजारा भत्ता की राशि पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण केलिए अपर्याप्त होती है । हिन्दू दत्तक और भरण-पोषण अधिनियम में हिन्दू सिर्फ हिन्दू को गोद ले सकता है । गोद लेने केलिए पत्नी की सहमति की ज़रूरत होती है । किन्तु विवाहिता स्त्री को गोद लेने का अधिकार नहीं दिया गया । स्त्री द्वारा गोद लिया बच्चा पति का सौतेला बच्चा माना जाता है । यह कानून स्त्री को 'बालिका' को गोद लेने की अनुमति देता है । बालक गोद लेने पर उसकी प्राकृ तिक संरक्षता पिता को सौंपी गई है, बालिका के बारे में कोई संकेत नहीं दिया गया है । हिन्दू अल्पवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम नाबालिग पति को नाबालिग पत्नी का प्राकृतिक संरक्षक बनाता है । स्त्री को बच्चों का संरक्षकत्व पति के बाद प्रदान किया गया है । इस तरह स्त्री को बराबर का अधिकार नहीं देता ।

इस तरह निजी कानून का मसला धार्मिक मसला न होकर एक सामाजिक मसला है जिसका सीधा संबंध स्त्रियों की स्थिति से है और समान नागरिक संहिता का मसला स्त्री के प्रति न्याय, समानता का अधिकार एवं उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार से जुड़ता है । बृंदा कारात लिखती है "समान नागरिक संहिता की अवधारणा के दो पहलू हैं विभिन्न समुदायों (हिन्दू, मुस्लिम, सिख, आदिवासी, ईसाई आदि) के बीच समानता और खुद हरेक समुदाय के भीतर (स्त्री-पुरुष के बीच) समानता ।"[1] समान नागरिक संहिता पर अमल करने की दिशा में सुप्रीम कोर्ट की अहम भूमिका रही है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा भारत सरकार से अगस्त 1996 तक हलफनामे के रूप में समान नागरिक संहिता हासिल करने की दिशा में किए गए प्रयासों का लेखा जोखा प्रस्तुत करने का निर्देश दिया गया । 29 अक्तूबर 1996

---

1. बृंदा कारात जीना है तो लड़ना होगा पृ. 83

को केन्द्रीय सरकार के कानून मन्त्रालय द्वारा हलफनामा पेश किया गया और स्वीकारा गया कि सरकार की तरफ से अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानून में परिवर्तन लाने का कोई कदम नहीं उठाया गया । अन्य सम्प्रदाय के निजी कानून में हस्तक्षेप न करना ही हमेशा से सरकार की नीति रही है । धर्म की स्वतन्त्रता सुनिश्चित करने वाली संविधान की धारा 25 का आदर करती है एवं परिवर्तन की पहल संप्रदायों के भीतर से होनी चाहिए । हलफनामे में विवाह, तलाक, उत्तराधिकार के मामले को धार्मिक मामला बताया गया और हस्तक्षेप करने से मनाही की गई । केन्द्रिय सरकार द्वारा हिन्दू विवाह कानून, विशेष विवाह कानून जो कि सिख, जैन, बौद्ध जैसे अल्पसंख्यकों पर भी लागू होता है इसे समान नागरिक संहिता की दिशा में हासिल उन्नति बताया गया । सुप्रीम कोर्ट द्वारा हलफनामें को अस्वीकार किया गया और एक बेहतर हलफनामे की मांग की गई । विवाह, तलाक, उत्तराधिकार के कानूनों को एकविध कानूनों के अन्तर्गत रखने की मंशा अधूरी रह गई । स्त्री के समानाधिकार, स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष ला खड़ा करने केलिए समान नागरिक संहिता की दिशा में की गई पेशकश पर गंभीरता से विचार करना आज की ज़रूरत है । ताकि आज की जागरूक, प्रगतिशील स्त्री केलिए ऐसा माहौल बने जिसमें ज़िन्दगी को अकेले जीने के बजाय वह पुरुष को अपना हमसफर मानने लगे ।

सन् 1946 में संयुक्त राष्ट्र संघ की आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने महिलाओं की स्थिति के बारे में एक आयोग का गठन किया । इसके प्रतिक्रियास्वरूप समाज में महिलाओं की स्थिति के बारे में कई सम्मेलन किए गए, लिंग विभेद समाप्त करने हेतु घोषणा पत्र भी तैयार किए गए । इसी दौरान स्त्री आन्दोलन के ज़रिए स्त्री के राजनैतिक अधिकारों की मांग ज़ोरो से उठाई जाने लगी क्योंकि स्त्रियाँ अब तक जान गयी थी कि, "सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि जब तक महिलाएँ राष्ट्रीय तथा राज्य स्तर पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदार नहीं बनती, तब तक उनको अधिकारिता और सर्वांगीण विकास का उद्देश्य प्राप्त

नहीं हो सकता । इसलिए निर्णय लेने तथा शासन करने में उनकी भागीदारी बढ़ाने की महती आवश्यकता है ताकि उन्हें आर्थिक नीति और नियोजन में अपने योगदान का लाभ मिल सके।"[1] सन् 1952 में संयुक्त राष्ट्र संघ की घोषणा 'International Convention on the political right of women' द्वारा विश्व स्तर पर स्त्रियों के समान राजनैतिक अधिकारों की मांग की गई । इस घोषणा के तहत सभी राष्ट्रीय सरकार स्त्री-पुरुष समानाधिकार की दिशा में प्रयत्न केलिए बाध्य हो गए । सन् 1971 की स्टेट्स कमेटी की रिपोर्ट का एक अध्याय स्त्रियों की राजनीतिक स्थिति से संबंधित था । कमेटी द्वारा जहाँ एक ओर स्थानीय निकाय के स्तर पर स्त्रियों केलिए आरक्षण की सिफारिश की गयी वहीं दूसरी ओर विधान सभाओं और संसद में महिलाओं केलिए आरक्षण का विरोध भी किया गया । सन् 1995 में बीजिंग में हुए चौथे विश्व महिला सम्मेलन में स्त्रियों को राजनीतिक तौर पर सक्षम बनाये जाने पर गंभीर विचार विमर्श किये गये और उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार के साथ-साथ उनकी राजनीतिक स्थिति को भी समान रूप से महत्वपूर्ण बताया गया । किसी भी राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक नीतियों को निर्धारित करने वाले निर्णयकारी निकायों में स्त्रियों की सक्रिय भागीदारी की पहल की गई ।

आज स्त्रियों ने बड़े शिद्दत के साथ महसूस किया कि राजनीतिक सत्ता के बिना राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्त्री हितों की रक्षा, सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक बदलाव संभव नहीं । सितंबर 1996 को आरक्षण संबंधी विधेयक संसद में पेश किए जाने के बावजूद भी आज तक पारित नहीं हो पाया है । इससे साफ जाहिर हो जाता है कि समाज संविधान प्रदत्त समानता के सिद्धान्त को व्यावहारिक तौर पर अमल करने का हिमायती नहीं और दुनिया की आधी आबादी को हाशिये पर धकेलने में ही अपना हित समझता है, "इस संबंध में लाए विधेयक ने न केवल राजनीति में स्त्री की स्थिति पर प्रकाश डाला है वरन् स्त्री के प्रति समाज की सांस्कृतिक संरचना और पुरुष के स्त्री के प्रति रवैये को भी रेखांकित किया है।"[2] पंचायतों में स्त्रियों की भागीदारी और प्राप्त अवसरों का लाभ उठाकर स्त्रियों ने

---

1 सुमन कृष्णकान्त (सं) -इक्कीसवीं सदी की ओर पृ. 20

2. रेखा कस्तवार स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ पृ. 125

जिस कुशलता के साथ कार्य किया है उससे यही साबित होता है कि आधी आबादी को मुख्यधारा से काटकर नहीं रखा जा सकता ।

रोजमर्रा की घरेलू ज़रूरतों को पूर्ती केलिए गाँव की निर्धन स्त्रियाँ पूरी तरह से प्रकृति पर आश्रित होती है । इसलिए प्रकृति से जुडे प्रश्नों का असर सर्वाधिक तौर पर स्त्रियों को ही झेलना पड़ता है । इसे मद्देनज़र रखते हुए स्त्री आन्दोलन में पर्यावरण संरक्षण का मुद्दा उभर आया और स्त्रियों ने चिपको आन्दोलन में गौरी देवी के नेतृत्व में 1974 में अपनी उपस्थिति दर्ज की । पानी, ईंधन, चारे केलिए लगने वाला समय उनके श्रम समय को 14-15 घंटे तक बढ़ा देता है । इसका असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है । आन्दोलन निकटवर्ती गाँवों में भी फैलता चला गया । आन्दोलन में स्त्रियों की सफलता के बावजूद उन्हें गाँव के पुरुषों की प्रताड़ना का भी शिकार होना पड़ा । लेकिन स्त्रियाँ टस से मस नहीं हुई। खीराकोट में स्त्रियों द्वारा पर्यावरणवादी लड़ाई पहाड़ों को काटने के खिलाफ की गई थी ।

बहरहाल भारत में स्त्री मुक्ति आन्दोलन स्त्री के प्रति समाज के सोच में बदलाव लाने में कामयाब हुआ है । स्त्री संबंधी नए कानून पारित किए गए और कई कानूनों में संशोधन भी किए गए । स्त्री समस्याओं पर गहराई से विचार विमर्श कर उन्हें निपटाने की दिशा में ये महत्वपूर्ण कार्य किए गए । मात्र घर की चारदीवारी में सीमित रहने वाली स्त्रियों ने समाज के कई क्षेत्रों में पहलकदमी की । स्त्री शोषण के खिलाफ आवाज़ बुलन्द की । आत्मनिर्भरता, सामाजिक परिवर्तन हेतु सत्ता और संपत्ति में भागीदारी को महत्वपूर्ण समझा । आज स्त्री अपनी मानवीय गरिमा को बनाये रखने में संघर्षरत है । ऐसी स्त्रियों की संख्या कम होने के बावजूद भी यह खुद को खुद के नज़रिए से देखने-परखने की दिशा में एक बेजोड़ कदम है। स्त्री मुक्ति आन्दोलन के नए नारों का क्षेत्र विस्तृत है - स्वतन्त्रता, समानता, विकास-कार्यों में भागीदारी, विश्व-शांति और बच्चों की सुरक्षा । स्त्री आन्दोलन का रुख अब स्त्री-

अधिकारों से अधिक विश्व शांति से संबंधित प्रश्नों की ओर मोड़ दिया गया है । समाज के साथ-साथ साहित्य में भी स्त्री की छवि बदली है । साहित्यिक फलक पर स्त्री ने स्वतन्त्र पहचान अख्तियार की है ।

स्त्री मुक्ति आन्दोलन और साहित्य

साहित्य की एक प्रमुख विशेषता है कि वह अपने समकालीन समाज की सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक गतिविधियों को प्रतिबिंबित करता है, समसामायिक समस्याओं, बदलावों एवं उथल-पुथल को रेखांकित करता है । साहित्य द्वारा स्त्री मुक्ति आन्दोलन को सक्रिय बनाने में अहम भूमिका निभाई गई । समाज के साथ-साथ साहित्य में भी स्त्री की सक्रिय भागीदारी देखी जाने लगी । स्त्रियों ने स्त्री मुक्ति आन्दोलन के साथ-साथ साहित्य में अस्मिता का संघर्ष शुरू किया । अस्मिता यात्रा का पहला कदम मीरा ने ही उठाया था । उन्होंने पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती दी । स्त्री की दमित इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं अनुभूतियों को खुलकर अभिव्यक्त किया, "पितृसत्ताक व्यवस्था में स्त्री के साथ किस तरह के ज़ुल्म होते हैं और परिवारीजनों का रवैया किस कदर अमानवीय होता है उसे सामाजिक तौर पर अभिव्यक्त करनेवाली मीरा पहली भारतीय लेखिका है । स्त्री का दुःख, उत्पीड़न एवं दमन हमेशा निजी रहा है । स्त्रियाँ इसे छिपाती रही हैं, इससे पुंसवादी वर्चस्व को लाभ होता है । मीरा ने जो कुछ व्यक्तिगत था उसे सामाजिक कर दिया।"[1] बीसवीं सदी के पहले हिन्दी में मीरा को छोड़कर किसी दूसरे स्त्री साहित्यकार का स्वर सुनाई नहीं देता ।

पहले जहाँ स्त्री लिखे और लेखिका के रूप में अपनी पहचान बनाए यह पुंसवादी व्यवस्था को कभी स्वीकार्य ही नहीं था । वहीं स्त्रियाँ छद्म नाम का इस्तेमाल कर समाज से अपनी वास्तविक पहचान छिपाए रखती थी । इस मामले में भारत एवं पश्चिमी स्त्रियों की स्थिति एक जैसी थी । वर्जोनिया वुल्फ लिखती है - "करेर बेल, जार्ज इलियट, जार्ज

---

1. जगदीश्वर चतुर्वेदी स्त्रोवादी साहित्य विमर्श पृ. 35

सैंड-इन सबके लेखन से सिद्ध होता है कि ये आंतरिक संघर्ष का शिकार रहीं और किसी मर्द के नाम का इस्तेमाल कर इन्होंने अपने आपको छुपाने का असफल प्रयास किया ।"[1] राजेन्द्रबाला घोष ने 'बंग महिला' और सीमन्तनी उपदेश की लेखिका ने 'अज्ञात हिन्दू औरत' नाम से अपनी रचनाएँ लिखी । डरते-डरते ही सही साहित्य के फलक पर इक्के-दुक्के स्त्री नाम उभरने लगे ।

बीसवीं सदी में समाज के बने बनाये चौखटे को तोड़कर महादेवी वर्मा ने सामाजिक-साहित्यिक आन्दोलनों में शिरकत की । 'श्रृंखला की कड़ियाँ' के ज़रिए भारतीय संदर्भ में स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति को उघाडने का अथक प्रयास कर स्त्री विमर्श की दिशा में पहल की, "श्रृंखला की कड़ियाँ' महादेवी वर्मा की वह किताब है, जिससे स्त्री विमर्श का वास्तविक आरंभ मानना चाहिए । इस पुस्तक में हमारी सामाजिक संरचना में स्त्री को दी गयी पराधीनता की नियति पर गंभीर विचार करते हुए महादेवी जी ने धर्माचार्यों के उस सोच की भर्त्सना की है, जिसके चलते स्त्री को श्रृंखला की कड़ियों में बाँधा गया है । भारतीय समाज तथा जीवन-व्यवस्था की असंगतियों को स्पष्ट करते हुए उन्होंने आदर्श और यथार्थ तथा सिद्धान्त और व्यवहार की विसंगतियों को ठेठ उन्हीं के भीतर देखा और दिखाया है।"[2]

उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, कविता आदि साहित्यिक विधाओं के ज़रिए स्त्री समस्याओं को केन्द्र में रखा गया । समाज में स्त्री शोषण के साथ-साथ उसके प्रति विद्रोह एवं प्रतिरोध को भी अभिव्यक्ति दी गई । समाज में स्त्री की स्वतन्त्र पहचान की दिशा में पहल की जाने लगी । स्त्री की परंपरागत छवि को तहस-नहस कर उपन्यास में स्त्री विमर्श उभर आया जिसके ज़रिए अपने व्यक्तिगत अनुभवों की अभिव्यक्ति द्वारा साहित्य में पुरुष वर्चस्व को तोड़ने का अथक प्रयास किया । स्त्री को वस्तु से व्यक्ति का दर्जा दिलाने में उपन्यासों द्वारा प्रयास किया गया ।

---

1. वर्जीनिया वुल्फ, गोपाल प्रधान (अनु) अपना कमरा पृ. 58
2. शिवकुमार मिश्र महादेवी वर्मा पृ. 11-12

भारत में हिन्दी उपन्यासों का प्रारंभिक दौर समाज सुधारों का युग था । इसीलिए उपन्यासों में लेखकों की सुधारवादी दृष्टि ही स्पष्ट दिखाई दी । सुधारवादी आन्दोलनों ने सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध समाज में नई चेतना जागृत की । बाल-विवाह, अनमेल विवाह, विधवाओं की बुरी दशा के प्रति आक्रोश का भाव तत्कालीन उपन्यासों में दिखाई पड़ा। इस युग में स्त्री विलास की वस्तु ही समझी गई । उपन्यासों में स्त्री का परंपरागत सती-साध्वी रूप ही अधिक चित्रित हुआ स्त्री शिक्षा पर बल देते हुए पं गौरीदत्त का 'देवरानी-जेठानी की कहानी' कल्याणराय का 'बामा शिक्षक' श्रद्धाराम फिल्लोरी का 'भाग्यवती' आदि उपन्यास रचे गए । शिक्षा की अपर्याप्तता, अध्ययन की सीमाएँ, कार्यक्षेत्र में व्यापकता का अभाव, पारिवारिक उत्तरदायित्व, समाज और परिवार का विरोध, प्रोत्साहन के अभाव के कारण उपन्यासों के प्रारंभिक दौर में स्त्रियों की संख्या नगण्य रही ।

हिन्दी कथा साहित्य में प्रेमचन्द युग नव युग का प्रारंभ था । स्त्री-शिक्षा एवं विधवा-विवाह को प्रोत्साहित किया गया । संपत्ति विषयक अधिकारों तथा विजातीय विवाह के महत्व पर प्रकाश डाला गया । उपन्यासों में स्त्री की दुर्दशा के साथ उसे सुधारने के प्रयास भी किये गये । प्रेमचन्द ने स्त्रियों की समस्या के प्रति गहरी चिन्ता प्रकट की । सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह करती धनिया जैसे पात्र भी प्रेमचन्द ने प्रस्तुत किया है । लेकिन वे भी स्त्री को व्यक्ति का दर्जा दिलाने में असमर्थ ही रहे, "यह ठीक है कि स्त्री की दयनीय दशा का, उसके जीवन संघर्ष का चित्रण अनेक पुरुष लेखकों ने भी किया है जो कई बार प्रभावशाली भी बना है । लेकिन वह रचनादृष्टि करुणा से उपजी हुई सहानुभूति तक की सीमित है । उसमें आत्मानुभूति की आग और बेचैनी नहीं होती । यह बात शरत, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र आदि के बारे में भी सच है जबकि उन्होंने पूरी सहानुभूति के साथ भारतीय स्त्री के जीवन की विडंबनाओं और यातनाओं का चित्रण किया है ।"[1] उनके उपन्यासों की अधिकांश स्त्रियाँ अन्याय और अत्यातार का विरोध करने में सक्षम दिखाई देती हैं । वे कर्मठ और संघर्षशील

---

1 जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह स्त्री-अस्मिता साहित्य और विचारधारा पृ.197

हैं, लेकिन उनके विरोध की एक सीमा है । उनमें वह साहस नहीं दिखाई देता जो उन्हें पुरुष के समकक्ष खड़ा कर सके । अतः वह पुरुष की आश्रिता बनकर ही रह जाती है । इस युग के उपन्यासों में स्त्री समस्याओं को चित्रित कर समाज को जागृत करने का प्रयास ही हुआ है। इस युग की लेखिकाओं प्रभा सिन्हा, सत्यवती देवी भैया, प्रियंवदा देवी, हेमन्त कुमारी चौधरी, ब्रह्मकुमारी भगवानदेवी दुबे, गिरिजा देवी, कंचनलता सब्बरवाल, उषादेवी मित्रा, आशा सहाय ने भी स्त्री समस्या को ही अधिकतर चित्रित किया । आर्थिक दृष्टि से परतन्त्र, समाज से प्रताड़ित विधवा की कारुणिक चीत्कार उनके उपन्यासों में प्रति-ध्वनित है । दहेज प्रथा, जाति-प्रथा, बाल-विवाह, अनमेल विवाह जैसी समस्याओं को भी चित्रित किया है । उपन्यासों में विधवा, निराश्रिता, अशिक्षिता, परावलंबी स्त्री की दशा सुधारने की कामना के साथ स्त्री के परंपरागत गुणों के रक्षण की भी अभिलाषा की गई है।

प्रेमचन्दोत्तर काल हिन्दी उपन्यासों में अनेक नये प्रयोगों तथा परिवर्तनों का काल था। हिन्दी उपन्यासों में पाश्चात्य साहित्य चिन्तन का प्रभाव पड़ा । साथ-ही साथ मार्क्सवाद एवं मनोवैज्ञानिक विचारधारा का भी प्रभाव परिलक्षित होता है । इस काल के उपन्यासों में चित्रित समस्याओं में स्त्री-पुरुष संबंधों का चित्र उकेरा गया । स्त्री अपनी समस्याओं के प्रति जागरूक दिखाई देने लगी । उनके प्रगतिशील रूप को उभारा गाया ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात बदलते सामाजिक एवं राजनीतिक स्थितियों से स्त्री भी प्रभावित हुई । शिक्षित स्त्री का दायरा विस्तृत हुआ एवं उनके भीतर अपने अधिकारों की मांग बलवती होती गई । इस भावना को बल मिला पाश्चात्य साहित्य, सभ्यता, संस्कृति और स्त्रीवादी संगठनों के संपर्क से । स्त्री में आत्मविश्वास सजग हुआ । स्त्री के प्रति होने वाले शोषण एवं दमन के प्रति उनमें चेतना जागृत हुई । तलाक की स्वतन्त्रता और आर्थिक स्वतन्त्रता ने उनके सामने अनेक समस्याएँ ला खडी की। समाज मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद,

व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद जैसी विचारधाराओं से प्रभावित हुआ । उपन्यास के फलक पर उभरी स्त्री उपन्यासकारों के लेखन में स्त्री अधिकारों के प्रति सजगता, आक्रामकता, तीखापन और पितृक समाज की कड़ी आलोचना दिखाई दी । इनमें प्रमुख थी कृष्णा अग्निहोत्री, कृष्णा सोबती, रजनी पनिकर, मंजुल भगत, मृदुला गर्ग, निरुपमा सेवती, मालती जोशी, सूर्यबाला आदि । इनका लेखन अपनी पूर्ववर्ती लेखिकाओं के लेखन से इस मायने में भिन्न था कि - "पूर्ववर्ती लेखिकाएँ नारी की दीन स्थिति का चित्रण कर दबे स्वर में पुरुष की निन्दा किया करती थीं और सुधार की कामना करती थी, जबकि परवर्ती लेखिकाओं ने स्पष्ट और दृढ़ स्वरों में पुरुष की आलोचना की है । उन्होंने पुरुष से लोहा लेने का प्रयास किया है ।"[1] स्त्री अब बराबरी की मांग ही नहीं कर रही बल्कि स्त्री अब बराबरी के स्तर पर बैठने भी लगी है ।

साठ के दशक के बाद उभरी लेखिकाओं-चित्रा मुद्गल, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, अनामिका, राजी सेठ, कुसुम अंसल, गीतांजली श्री, सुशीला टाकभौरे, क्षमा शर्मा, प्रभा खेतान ने स्त्री विमर्श को नए ढंग से उठाना शुरू किया । राकेश कुमार के शब्दों में - "आज के स्त्री लेखन में स्त्री अपनी स्थिति को नियति मानकर नहीं देखती, अपितु उन स्थितियों के जिम्मेदार तत्वों, पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना के अन्तर्विरोधों, कारणों को भी तलाशती हैं कि उनकी निष्क्रिय, कमज़ोर उपेक्षित उत्पीडित स्थिति किसने बनाई है और क्यों ? यही स्त्री लेखन की सोच में बुनियादी बदलाव है।"[2] आज स्त्री समस्याओं को उकेरना लेखिकाओं का मात्र उद्देश्य नहीं है बल्कि उसके उत्स पितृसत्तात्मक व्यवस्था में खोज कर मूल व्यवस्था में बदलाव भी उनका उद्देश्य है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था के कठोर नैतिक बंधनों से स्त्री देह को मुक्त कर, श्लील-अश्लील के घेरे का अतिक्रमण कर एक व्यक्ति के रूप में जीना उसकी मंशा है । स्त्री ने आज यौन शुचिता और कौमार्य के पुराने मिथक को तोड़ा है । समकालीन संदर्भ में उपन्यास के फलक पर ऐसे स्त्री पात्रों की भरमार देखी जा सकती है जो निडर

---

1 डॉ. उर्मिला प्रकाश नारी-नवजागरण और महिला उपन्यासकारों की स्त्री-पुरुष परिकल्पना पृ. 25

2. राकेश कुमार नारीवादी विमर्श पृ. 196

होकर चुनौतियों को स्वीकार करती हैं । बिना हिचक के समाज के बने बनाये चौखटे को तोड़कर अपनी एक अलग पहचान बनाती है । निर्णय केलिए किसी पुरुष का मुँह नहीं ताकती, निर्णय एवं चुनाव करती हुई एक स्वतन्त्र व्यक्ति की तरह उभरती है । वहीं प्रतिभा और अस्मिता से लैस प्रभा खेतान के स्त्री पात्र समाज के चाबुक से लहूलुहान होती हुई हिम्मत नहीं हारती बल्कि समाज को चुनौती देती है । राजेन्द्र यादव के शब्दों में -"सिर्फ सेक्स और सौन्दर्य का इस्तेमाल करते हुए ऊपर उठती नायिकाएँ चरित्रहीनों, वेश्याओं या अभिनेत्रियों की तरह चित्रलेखाएँ पहले भी आती रही है - मगर प्रतिभा और अस्मिता से लैस प्रिया पहली नारी है जो सामाजिक चुनौती की तरह उभरती है । प्रभा स्त्री-विमर्श की सबसे महत्वपूर्ण लेखिका है ।"[1] प्रिया, रमा जैसे पात्र समाज द्वारा स्त्री केलिए वर्जित क्षेत्र व्यवसाय में खुद को स्थापित करते हैं और व्यावसायिक महिला के रूप में अपनी पहचान बनाती हैं। उनका काम उनकी पहचान है जो उन्हें मशीन का पुतला नहीं बनाता बल्कि उनके दायरे को और अधिक विस्तृत करता है ।

प्रभा खेतान का रचनात्मक क्षेत्र मारवाड़ी समाज की महिला का आत्मसंघर्ष है जो एक रूढ़, परम्पराप्रिय और बन्द समाज से टकराते खुद को भावात्मक स्तर पर लहूलुहान करते हुए अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को नये सिरे से परिभाषित करती है । सोमा (पीली आँधी) रमा (अपने अपने चेहरे), प्रिया (छिन्नमस्ता) जैसे पात्र मारवाड़ी समाज के घेरे में अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं की खुली अभिव्यक्ति कर, परंपरा एवं मर्यादाओं का लबादा उतार फेंक बिना किसी अपराधबोध के अपनी मर्जी की ज़िन्दगी जीती है । जर्जरित रिश्तों को ढोने के बजाय उसे एक ही झटके में तोड़ देना उचित समझती है । वीणा यादव लिखती है - "प्रभा खेतान के लेखन की यह विशेषता है कि वे बंधे-बंधाये चौखटे के उन रिश्तों को, जिनका पानी मर चुका है, जो ठूँठ होकर रह गए हैं, स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है । इसके विपरीत उनकी सद्भावना उन रिश्तों में हैं, जहाँ स्नेह की गरमाहट अब भी है ।"[2]

---

1. राजेन्द्र यादव आदमी की निगह में औरत पृ. 230
2. वीणा यादव हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति पृ. 159

प्रभा खेतान द्वारा अपने व्यावसायिक जगत् के अनुभवों को उकेरने के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर स्त्री की स्थिति एवं स्त्री के संघर्ष को चित्रित करना, मारवाड़ी समाज में अपनी अस्मिता केलिए निरंतर संघर्षरत रहना एवं अपनी स्वतन्त्र पहचान को स्थापित करना ऐसे कुछ तत्व हैं जो उन्हें अपनी समकालीन लेखिकाओं से भिन्न करते हैं । मधुरेश के शब्दों में "....अपने व्यवसाय के सिलसिले में यूरोप से उनका सहज संपर्क, इस नये संबंध को परिभाषित करने की उनकी सुचिंतित और संयत दृष्टि और यूरोप में नारी स्वातन्त्र्य संबंधी अनेक आन्दोलनों के लम्बे इतिहास से सुपरिचित होते हुए भी अपनी ज़मीन पर स्त्री की अस्मिता की लड़ाई का विवेक-ये कुछ ऐसी चीज़ें है जो प्रभा खेतान को समकालीन हिन्दी कथा-लेखिकाओं के बीच एक अलग और विशिष्ट पहचान देती है।"[1]

प्रभा खेतान का जीवन वृत्त

प्रभा खेतान का जन्म 1 नवम्बर 1942 को कलकत्ता के एक मारवाड़ी परिवार में हुआ। प्रभा लादूरामजी खेतान और पुरनी देवी खेतान की आखिरी सन्तान थी । प्रभा के जन्म के बाद से ही उनकी माँ बीमार रहने लगी । माँ के प्यार से वंचित प्रभा दाई माँ के खूँटे के सहारे बँधी रही । उनके बचपन में याद करने लायक ऐसा कोई सुनहरा पल नहीं था, "कैसा अनाथ बचपन था । अम्मा ने कभी मुझे गोद में लेकर चूमा नहीं । मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाज़े पर खड़ी रहती । शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें । शायद... हाँ, शायद अपनी रजाई में सुला ले । मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच । अम्मा मेरी बातों को समझ नहीं पाती थीं ।"[2] वर्जीनिया वुल्फ की किताब 'ए रूम ऑफ ओवर ओन' से प्रभावित प्रभा को सात-भाई बहनों के बीच अपना कमरा कभी नसीब नहीं हुआ । परिवार में उपेक्षित प्रभा को बोकी, भाटा, पत्थर, गधी, भंगना आदि विशेषणों से नवाज़ा जाता । बरामदे में बैठे-बैठे चिड़ियों से संवाद, एकालाप करना, कल्पना जगत में विचरण करना उनका शगल था ।

---

1. मधुरेश महिला लेखन की सक्रियता पृ. 3
2. प्रभा खेतान अन्या से अनन्या पृ. 31

साढे नौ साल की उम्र में उनके पिता का निधन हो गया । प्रभा के साँवले रंग से परेशान उनकी माँ को हमेशा प्रभा की शादी की फिक्र सताती रहती । प्रभा बचपन में अपने बड़े भाई के हवस की शिकार हुई । कम उम्र में ही सयानी हो जाने की वजह से उन्हें माँ की फटकार सुननी पड़ी, बिना अपराध के अपराधबोध से प्रभा छटपटाती रही । स्वभाव से विद्रोही उनकी माँ का विद्रोही तेवर प्रभा को विरासत में मिला । प्रभा ने हमेशा अपनी माँ को जूझते देखा । घर और बाहर उन्होंने स्त्री को रोते-बिलखते हुए पाया । तब से प्रभा ने ठान लिया कि वे औरत की आँसू भरी नियति को नहीं स्वीकार करेंगी और आजीवन इसे चरितार्थ करने में जुटी रही । महाश्वेता देवी के शब्दों में "प्रभा के जीवन से यह सीख ली जा सकती है कि अपने जीवन का निर्माण स्वयं अपनी तरह कैसे किया जा सकता है।"[1] उन्होंने स्त्री विरोधी परंपराओं को नकारा और नए प्रतिमान रचे।

संपन्न घराने में जन्मी प्रभा खेतान को पैसों का मोहताज होना पडता, राजेन्द्र यादव के शब्दों में "प्रभा उन दिनों कड़की में चल रही थी । बेहद संकोच से, चलते समय बस-ट्राम का किराया भी मांगने वाले दिन थे ।"[2] उन्होंने अपने जीवन में सीमोन के शब्दों को आत्मसात कर लिया था - 'फ्रीडम स्टार्टस फ्रॉम पर्स।' आर्थिक स्वतन्त्रता उनके जीवन का मूलमन्त्र रहा और अपनी ज़िन्दगी से उन्हें यही सीख मिली कि पैसे कमाने के ज़रिए स्त्री निर्णय लेना सीखती है और निर्णय की क्षमता उसके संघर्ष को मज़बूत करती है ।

प्रभा खेतान की शिक्षा बालीगंज शिक्षा सदन में हुई । पढाई के दिनों में उनके बौद्धिक व्यक्तित्व को सँवारने में मन्नू भण्डारी और राजेन्द्र यादव का बहुत बड़ा हाथ रहा । चौथी कक्षा से ग्यारहवीं कक्षा तक मन्नू भण्डारी उनकी हिन्दी की अध्यापिका रही । प्रभा के अनुसार वह उनके जीवन की मूल प्रेरणाओं में से एक रही है । पढ़ने में माहिर प्रभा ने बचपन में ही बौद्धिक स्तर पर अपनी काबिलियत को साबित कर दिया था, "स्कूल के स्तर

---

1 महाश्वेता देवी अनन्य थी प्रभा खेतान पृ. 17
2. राजेन्द्र यादव मुड मुडके देखता हूँ पृ. 128

पर ही उनकी पढने की रुचि देखकर आज तो आश्चर्य होता है क्योंकि पढ़ने की वैसी रुचि तो मैंने दिल्ली में कॉलेज की छात्राओं में भी कभी नहीं पाई । वहाँ की प्रभा खेतान ने तो इस क्षेत्र में अपने योगदान से काफी ख्याति भी अर्जित की है ।"[1] प्रभा ने प्रेसिडेन्सी कॉलेज से दर्शन में स्नातक की उपाधि प्राप्त की । कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातकोत्तर की उपाधि और दर्शन शास्त्र में पी.एच.डी हासिल की । उन्होंने अनुसंधान केलिए 'सार्त्र के साहित्य की दार्शनिक व्याख्या' विषय का चुनाव किया ।

प्रभा खेतान डॉ. सर्राफ के साथ भावनात्मक स्तर पर जुड़ी रही । उन्होंने स्वेच्छा से अपने अकेले जीवन का वरण किया था । इस संबंध के सिलसिले में उनके अपने विचार है - "डाक्टर सर्राफ से मैं भावनात्मक स्तर पर जुडी हुई थी । किसी रूप में मुझे यह संबंध गलत नहीं लगा क्योंकि उनसे जुड़ने का निर्णय मेरा अपना था ।"[2] तमाम लाछनों के बावजूद भी प्रभा डॉ सर्राफ से अलग नहीं हो पाई । डॉ. सर्राफ की सहायता से प्रभा को 1966 में स्टूडेंट एक्सचेंज प्रोग्राम के दौरान विदेश भ्रमण का मौका मिला । इसी दौरान उन्हें विदेशी स्त्रियों की ज़िन्दगी को करीब से जानने का मौका मिला, तमाम भौतिक सुविधाओं के बीच उन्हें रोते-बिलखते पाया । विदेश में ब्यूटी थेरापी का कोर्स करने के बाद उन्होंने कलकत्ता में महिला स्वास्थ्य केन्द्र 'फिगरेट' की स्थापना की । फिगरेट उनके लिए आर्थिक संबल सिद्ध हुआ । फिगरेट के ज़रिए उन्होंने स्त्रियों को देह के घेरे में सीमित होते हुए देखा ।

व्यावसायिक क्षेत्र में प्रभा खेतान

प्रभा खेतान ने समाज में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करने हेतु निर्यात के व्यवसाय का चुनाव किया । वे 1976 से चमड़े के साधनों का निर्यात करने वाली अपनी कंपनी न्यूहोराइजन लिमिटेड की प्रबंध निदेशक हैं । बाहरी दुनिया में कदम रखते ही वे परंपरा का लबादा उतार फेंकने में कामयाब हुई, आत्मविश्वास से लबरेस होकर समाज के

---

1 मन्नू भण्डारी- एक कहानी यह भी पृ. 34

2. उषा कीर्ति राणावत प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार पृ 198

बने बनाये चौखटे को तोड़ने में सफल हुई, "बाहरी दुनिया में कदम रखते ही मेरी कार्यक्षमता दुगुनी हो गई । एक असह्य यथार्थ से पलायन कर रही थी, मैं केवल डाक्टर साहब की होकर नहीं रह गई थी । लोगों से मैं कहना चाहती, डॉक्टर साहब से अलग भी मेरी कोई हैसियत है । मैं भी कुछ हूँ । दुनिया देखने का, पारम्परिक दायरों के अतिक्रमण का यह दौर था । मैं व्यापारी महिला बन चुकी थी ।"[1] व्यापार उनकी अपनी पहचान थी, उनके लिए साधना थी । व्यावसायिक जगत में भी उन्हें औरत होने की यंत्रणा से गुज़रना पड़ा, लेकिन उनके कदम लड़खडाए नहीं और वे एक प्रतिष्ठित व्यावसायिक महिला के रूप में उभरी। देश की दस शीर्षस्थ महिला उद्यमियों के रूप में इंडिया टुडे में प्रभा खेतान की तस्वीर भी छपी थी। उद्योगपति होने के बावजूद उनकी संवेदना आम जनता खासकर मज़दूरों के साथ थी । कलकत्ता चैम्बर आफ कॉमर्स की पहली महिला अध्यक्ष होने का श्रेय भी प्रभा खेतान को ही जाता है ।

सामाजिक कार्य-कर्ता के रूप में प्रभा खेतान

समाज सेवा प्रभा खेतान के व्यक्तित्व का एक अभिन्न हिस्सा रहा है । महाश्वेता देवी के शब्दों में - "प्रभा खेतान की एक बड़ी खूबी यह थी कि वे बड़ी सामाजिक कार्यकर्त्ता भी थी । उन्होंने अनेक लेखकों - कलाकारों और पत्र-पत्रिकाओं की समय समय पर आर्थिक मदद की । उनकी संस्था प्रभा खेतान फाउंडेशन ने भी संस्कृति कर्मियों और सांस्कृतिक गतिविधियों की बहुविध मदद की ।"[2] भूतपूर्व निर्वाचन आयुक्त श्री. टी.एन शेषन के साथ देशभक्त ट्रस्ट रेडक्रॉस जिला सैनिक बोर्ड की सदस्या रही । अन्तर्राष्ट्रीय मारवाड़ी सम्मेलन युवा शाखा के साथ 'सभी केलिए शिक्षा' कार्यक्रम के तहत उन्होंने एक बृहत्तर कार्यक्रम का संचालन किया, जिसमें राजस्थान के गरीब एवं मेधावी छात्र-छात्राओं केलिए विशेष व्यवस्था का प्रावधान किया । कलकत्ता चेम्बर ऑफ कॉमर्स के सहयोग से 'प्रभा खेतान पुरस्कार' की

---

1 प्रभा खेतान अन्या से अनन्या पृ. 210

2. महाश्वेता देवी अनन्य थीं प्रभा खेतान पृ. 17

शुरुआत की, जो कि प्रत्येक वर्ष अपने क्षेत्र में विशेष योगदान देनेवाली महिला को पुरस्कृत किया जाता है । पुरस्कार स्वरूप एक लाख रुपये तथा प्रशस्ति पत्र प्रदान किया जाता है । सुजानगढ़ (राजस्थान) में उन्होंने लड़कियों केलिए एक कॉलेज की स्थापना की । सन् 1990 में स्थापित प्रभा सांस्कृतिक संस्था और प्रभा चारिटबल ट्रस्ट को सम्मिलित करके 2003 में प्रभा खेतान फाउंडेशन की स्थापना की गई जो कि साहित्यिक, सांस्कृतिक गतिविधियों एवं बेसहारा, लाचार बच्चों की प्राथमिक शिक्षा केलिए कार्यरत है ।

पुरस्कारों के घेरे में

प्रभा खेतान के व्यावसायिक एवं साहित्यिक अवदान केलिए उन्हें पुरस्कृत किया गया। इंडिया इंटरनेशनल सोसायटी फॉर यूनिटी द्वारा 'रत्न शिरोमणि' इंडियन सॉलिडियरिटी कॉउसिल द्वारा 'इंदिरा गाँधी सॉलिडियरिटी, एवार्ड (उद्योग) लायंस क्लब द्वारा 'टाप पर्सनाल्टी' उद्योग टेक्नोलॉजी फाउंडेशन द्वारा 'उद्योग विशारद' भारत निर्माण संस्था द्वारा 'प्रतिभाशाली महिला पुरस्कार' केन्द्रीय हिन्दी संस्थान द्वारा (राष्ट्रपति द्वारा प्रदत्त) 'महापंडित राहुल सांकुत्यायन पुरस्कार' यात्रा संस्मरण केलिए, के.के. बिड़ला फाउंडेशन का 'बिहारी पुरस्कार' पीली आँधी (उपन्यास) केलिए प्रदान किये गए ।

प्रभा खेतान का साहित्यिक अवदान

साहित्य के प्रति उनकी रुचि बचपन से ही थी । सातवीं कक्षा में ही उनकी पहली कविता 'सुप्रभात' में छपी थी । लेकिन अस्सी के दशक में ही वे साहित्यिक जगत में एक लेखिका का दर्जा हासिल कर पाईं । डॉ. सर्राफ और प्रभा के रिश्ते के परिणामस्वरूप उन्हें जो सामाजिक अस्वीकृति झेलनी पड़ी, अपनी घुटन भरी ज़िन्दगी के तहखाने से मुक्त होने के लिए वे साहित्यिक सृजन का ज़रिया अपनाती हैं, "मेरे लिए हर दिन मानो फाँसी के फन्दे

से साक्षात्कार था । यदि मेरे पास फिगरेट नहीं होता और उससे एक नियमित आय नहीं होती तो शायद इस सामाजिक प्रताड़ना को झेलना बिल्कुल असम्भव हो जाता । कविता लिखना भी इन्हीं दिनों शुरू किया, कविता के सहारे मैं असहनीय यथार्थ से पलायन कर पाती । मैं हर कीमत पर अपने आपको जिन्दा रखना चाहती थी । यथार्थ के बदले में फन्तासी में पूरी तरह पलायन कर चुकी थी।"[1]

कवि प्रभा खेतान

अपरिचित उजाले (1981): प्रस्तुत कविता संग्रह का मूल स्वर प्रेम है, रोमांस है । प्रेम के साथ-साथ वेदना और अकेलेपन की पीड़ा को भी लेखिका ने उकेरा है ।

सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं (1982): इस कविता संग्रह में लेखिका ने प्रेम, मिलन, विरह, अकेलेपन की पीड़ा को चित्रित किया है ।

एक और आकाश की खोज में (1985): प्रस्तुत कविता संग्रह का मूल स्वर प्रेम की शिकायत, समर्पण, स्व की पहचान, जीवन की सफलताएँ, महत्वाकांक्षाएँ आदि हैं ।

कृष्णधर्मा मैं (1986): यह प्रभा खेतान की लम्बी कविता है । कविता में प्रभा खेतान अस्तित्व की स्थापना केलिए ललायित है । अपने होने के सच को स्वीकारती है । अपने स्व को उन्होंने कृष्ण के साथ जोड़ दिया है । चुनौती के बीच कृष्ण को अपना साझीदार पाती है। प्रभा खेतान के शब्दों में "पूरी रचना के दौरान मैं आज की चुनौतियों के बीच अपने को कृष्ण की साझीदार पाती रही हूँ - हास उल्लास के क्षणों से लेकर महाभारत के महासंहार तक के प्रकरणों के बीच, केलि-कुजों से लेकर प्रभास-तीर्थ तक की रचना-यात्रा के बीच । शायद साझेदारी के इस एहसास ने ही मुझे स्थूल कथा-सूत्रों से बचाकर चेतना के स्तर पर कृष्ण से जोड़ा है, कृष्ण धर्मा बनाया है ।"[2] दैन्य लेखिका को स्वीकार नहीं । बेझिझक

---

1 प्रभा खेतान अन्या से अनन्या पृ. 175

2. प्रभा खेतान कृष्णधर्मा में पृ. 6

अन्याय का सामना करने, जीवन संघर्ष में बिना हार माने डटे रहने का आह्वान लेखिका करती है ।

हुस्नाबानो और अन्य कविताएँ (1987): इसके माध्यम से प्रभा खेतान समाज और समय के साथ संपर्क रखती हुई समकालीन समस्याओं का चित्रण करती हैं । अपनी बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में असफल आम जनता के साथ लेखिका की संवेदना जुड़ी हुई है। परमानंद श्रीवास्तव के शब्दों में 'हुस्नाबानो और अन्य कविताएँ' में संकलित प्रभा खेतान की कविताएँ व्यक्ति के निजत्व के बाहर, अपने समय और समाज की वास्तविकता से व्यग्र बेचैन साक्षात् का ही परिणाम कही जा सकती हैं।"[1] तमाम वैभव के बीच मिसेज गुप्ता का अकेलापन, हुस्नबानो द्वारा अपने घर को पाने की ललक का चित्र उकेरने के साथ लेखिका आतंकवाद के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलन्द करती हुई शांति का संदेश देती है । जेनी की पीड़ा को भी लेखिका ने चित्रित किया है जिसे दुल्हन सजाते-सजाते वक्त के बीतने का पता ही नहीं लगता ।

अहल्या (1988) : अहल्या प्रभा खेतान की लम्बी कविता है । अहल्या सदियों से पीड़ित, शोषित स्त्री का प्रतीक है । लेखिका सदियों से शोषण की शिकार हुई स्त्रियों को अहल्या के माध्यम से झकझोरते हुए खुद मुक्ति की पहल करने की प्रेरणा देती हैं । लेखिका के अनुसार दूसरों द्वारा दी जानेवाली मुक्ति का मोह छोड़ दो । राम द्वारा प्राप्त मुक्ति के बाद भी मुक्ति की सही यात्रा हमें ही तय करनी है । हमें मुक्त होना है देह और मन पर थोपी गई हिंसा से । प्रभा खेतान यह कहना चाहती हैं कि स्त्री में इतनी शक्ति है कि उसे अपनी मुक्ति केलिए दूसरों के सामने हाथ पसारने या राम के चरण स्पर्श की ज़रूरत नहीं है । स्त्री को सिर्फ अपने भीतर की शक्ति को पहचानना होगा । रामचन्द्र तिवारी के शब्दों में - "सुश्री प्रभा खेतान ने अहल्या को केन्द्र में रखकर नारी की चिरन्तन पीड़ा को व्यक्त किया है । अपनी लम्बी

---

1. प्रभा खेतान हुस्नाबानो और अन्य कविताएँ फ्लाप पर

कविता में उन्होंने 'नारी' के अभिशप्त जीवन की व्यथा का सीधा साक्षात्कार किया है।"[1] लेखिका ने स्त्री मुक्ति के प्रश्नों को उठाया है । संपूर्ण कविता तीन अवस्थाओं से ही गुजरती है - समाज द्वारा स्त्री का शोषण, सदियों से स्त्री शोषण के प्रति मौन स्वीकृति और लेखिका द्वारा स्त्री को उसकी शक्ति का एहसास दिलाकर मुक्ति की दिशा में खुद पहल करने का संदेश देना ।

प्रभा खेतान ने कविता के ज़रिए साहित्यिक जगत में पदार्पण किया मगर कथा लेखन के ज़रिए ही वे साहित्यिक जगत में प्रतिष्ठित हुई । लेकिन कविता उनकी ज़रूरत थी, साधारण जन और उनके बीच की कड़ी थी ।

उपन्यासकार प्रभा खेतान

प्रभा खेतान के कुल आठ उपन्यास अब तक प्रकाशित हो चुके हैं । अपने मन की बात दूसरों तक पहुँचाने के उद्देश्य से उन्होंने उपन्यास विधा को अपनाया, "मगर बड़ी जल्दी मुझे समझ में आ गया कि कविता के माध्यम से मैं अपनी बात नहीं कह पाऊँगी । इस विधा की अपनी सीमा है । अतः मुझे कविता नहीं बल्कि उपन्यास का सहारा लेना चाहिए । यहाँ तक कि कहानी भी मुझे अपनी परिधि में छोटी लगी ।"[2] तालाबंदी 'उपन्यास को छोड़कर उनके तमाम उपन्यासों के केन्द्र में स्त्री की व्यथा-कथा है । उनके स्त्री पात्रों में सामाजिक चौखटे को तोड़कर अपनी मानवीय पहचान को हासिल करने की छटपटाहट है । मुक्ति केलिए गुहार लगाती, लहूलुहान होती स्त्री की छवि को लेखिका ने उकेरा है । उनके स्त्री पात्र टूटकर चिन्दियों में नहीं बिखरते बल्कि अपने अस्तित्व एवं अस्मिता केलिए डटे रहते है, "उनके उपन्यासों की स्त्री पात्र अपनी तरह से अपने जीवन का निर्माण करती और अपनी पहचान केलिए जूझती दृष्टिगोचर होती है।"[3]

---

1 रामचन्द्र तिवारी अहल्या पृ. 54

2. राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभयकुमार दुबे पितृसत्ता के नए रूप पृ. 15

3. महाश्वेता देवी अनन्य थी प्रभा खेतान पृ. 17

आओ पेपे घर चलें (1990): आओ पेपे घल चलें प्रभा खेतान का पहला उपन्यास है । 1966 में लेखिका को स्टूडेंट एक्सचेंज प्रोग्राम के दौरान विदेश भ्रमण का मौका मिल था । इसी दौरान लेखिका इस सच्चाई से वाकिफ हुई कि स्त्री के आर्थिक स्वांवलम्बी होने के बावजूद भी हर कहीं उसके शोषण का सिलसिला जारी है । उपन्यास में आईलिन के द्वारा व्यक्त किया गया है, "दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ, जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे?"[1] विदेशी स्त्री भी भावनात्मक स्तर पर ठगी जाती है, छली जाती है । लेखिका तमाम स्त्रियों को एक ही मंच पर खड़ी करती हैं । उपन्यास का परिवेश विदेशी है और पूरी कहानी अमेरिका के तीन बड़े शहरों में घटित होती है 'लॉस एंजेल्स' 'सेण्ट लुइस' और 'न्यूयार्क'। गोपालराय के शब्दों में 'हिन्दी उपन्यास में भारतीय नारी की पीड़ा का चित्रण तो प्रचुर और अनेक रूपों में हो चुका था पर अमरीकी औरत के जीवन के भयानक सच को प्रस्तुत करनेवाला यह हिन्दी का पहला उपन्यास है । भोग विलास में डूबी अमरीकी औरत भीतर से कितनी अकेली, असहाय और पीडित है, इस का चित्रण इस उपन्यास में गहरो संवेदनशीलता के साथ किया गया है।"[2] दुनिया के हर कोने में बिलखती स्त्री का चित्रण कर इस सच्चाई का पर्दाफाश किया गया है कि व्यवस्था हर कहीं स्त्री के प्रति निष्ठुर रहा है । उपन्यास का अनुवाद अंग्रेज़ी, उड़िया और बांग्ला में हुआ है ।

तालाबंदी (1991): तालाबन्दी प्रभा खेतान का दूसरा उपन्यास है । उपन्यास के केन्द्र में मारवाड़ी पिवेश से जुड़े श्यामबाबू है, जिनके ज़रिए प्रभा खेतान ने अपने व्यावसायिक जीवन से जुड़े अनुभवों का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, 'तालाबन्दी' व्यावसायिक दुनिया का एक दस्तावेज है जिसमें एक महत्वाकांक्षी पुरुष को सफलता के शिखर पर पहुँच जाने के उपरान्त अन्तर्विरोधों और समस्याओं से दो चार होते दिखाया गया है।"[3] साथ ही साथ उपन्यास तत्कालीन परिस्थितियों से भी पाठकों को रू-ब-रू कराता है कि किस तरह बंगाल में लाल झण्डे का दहशत काले साये की तरह मंडरा रहा था और

---

1 प्रभा खेतान आओ पेपे घर चले पृ. 35
2. गोपाल राय हिन्दी उपन्यास का इतिहास पृ. 383
3. परवीन मलिक प्रभा खेतान और उनका साहित्य पृ. 85

उद्योगपति, निर्यातक वर्ग इस लाल झण्डे के दहशत से सहमे हुए थे एवं अपने अस्तित्व केलिए संघर्षरत यूनियन की भूमिका को नकार रहे थे ।

अग्निसंभवा (1993): अग्निसंभवा हंस पत्रिका में प्रकाशित हुआ था । 'अग्निसंभवा' एक किसान की बेटी आइवी की मि. डिक्रे के मैनेजर शिव की सेक्रेटरी बनने और बाद में हांगकांग ब्रांच की मैनेजर बनने की कहानी बयान करता है । प्रतिकूल परिस्थितियों में मुँह मोड़कर भागने के बजाय अदम्य साहस के साथ जूझती हुई आइवी अपने जीवन को गति प्रदान करती है । डॉ. उषा कीर्ति राणावत के शब्दों में "लेखिका ने वैश्विक धरातल पर स्त्री के संघर्ष को मुखर किया है।"[1] अपना दुःखड़ा रोकर हाथ पर हाथ धरे बैठने के बजाय आइवी अपनी ज़िन्दगी को सार्थक बनाने की कोशिश करती है ।

छिन्नमस्ता (1994): पुरुष प्रधान समाज में पुरुष वर्चस्व के विरुद्ध अपनी पहचान केलिए संघर्षरत स्त्री का चित्र उपन्यास में उकेरा गया है । प्रस्तुत उपन्यास समाज एवं परिवार में छिन्नमस्ता (जिसका मस्तक कटा हो) की भांति जीने को अभिशप्त स्त्री की दास्तान का खुलासा करता है । छिन्नमस्ता प्रभा खेतान की आत्मकथा का अधूरा अंश है, 'अन्या से अनन्या' से पहले छिन्नमस्ता ही आधारग्रन्थ था प्रभा खेतान के निजी जीवन की रेखाओं और ब्योरों को जानने का जहाँ तमाम पाशविकताओं और पारिवारिक-सामाजिक नृशंसताओं के खिलाफ डटकर खड़ी हैं वह ।"[2]

एड्स (1994): प्रभा खेतान का उपन्यास एड्स पूजा पत्रिकांक में छपा था । उपन्यास के ज़रिए वैश्विक स्तर पर मंडराते एड्स के आतंक को उद्घाटित किया गया है जिसके परिणामस्वरूप दाम्पत्य संबंधों में दरारें पड़ रही हैं ।

अपने अपने चेहरे (1996): प्रस्तुत उपन्यास के ज़रिए लेखिका यह जाहिर करना चाहती हैं कि समाज में स्त्री की पूर्वनिर्धारित भूमिकाओं से परे भी उसकी कोई भूमिका हो सकती

---

1. डॉ. उषा कीर्ति राणावत प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार पृ. 50
2. रोहिणी अग्रवाल ज़िन्दा रहने की जिद पृ 14

है, उसकी अपनी पहचान है । समाज में अकेली स्त्री का भी परिवार हो सकता है जो अधिनायकवादी पारिवारिक व्यवस्था पर आधारित न होकर सहयोग और जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित है । पुरुष रूपी खूंटे से बंधे रहना ही स्त्री के जीवन का एकमात्र ध्येय नहीं है। उपन्यास में दूसरी औरत की पीड़ा एवं उसके अन्तर्द्वन्द्व को भी लेखिका ने अभिव्यक्ति दी है।

पीली आँधी (1997): पीली आंधी में एक मारवाड़ी परिवार के तीन पीढ़ियों के उजड़ने बसने का चित्र उकेरा है, "हिन्दी उपन्यासों में बिहार के नितान्त पिछड़े अंचल की कथा कही गई है, उत्तर प्रदेश के किसानों के शोषण और दमन की गाथा प्रस्तुत की गई है, बुन्देलखण्ड, असम और महाराष्ट्र के उपेक्षित क्षेत्र की कहानी भी देखने को मिलती है, पर राजस्थान के मारवाड़ी समाज की व्यथा-कथा को सुनाने वाली पहली कथा लेखिका प्रभा खेतान ही है।"[1] मारवाड़ी समाज में स्त्री की व्यथा, पीड़ा और उसकी मुक्ति की छटपटाहट को वाणी दी गई है ।

स्त्री पक्ष (1999): स्त्री पक्ष 'जनसत्ता सबरंग' पत्रिका में प्रकाशित हुआ । प्रस्तुत उपन्यास समाज की मुख्य धारा में कर्ता के रूप में पुरुष की उपस्थिति, समाज के हर क्षेत्र में अन्या रूप में स्थापित स्त्री की तस्वीर एवं समाज द्वारा स्त्री की सुरक्षा के झूठे आश्वासन का पर्दाफाश करता है । स्त्री के आर्थिक स्वावलंबी हो जाने से जीवन में किये जाने वाले समझौते उसे अखरने लगते हैं जिसे वृंदा के ज़रिए उघाडने का प्रयास लेखिक करती हैं ।

उपन्यास के अलावा लेख, यात्रा संस्मरण, अनुवाद, चिन्तन ग्रन्थ, आत्मकथा के ज़रिए भी प्रभा खेतान ने साहित्यिक साधना को संपुष्ट किया है ।

अन्या से अनन्या (2007): अन्या से अनन्या प्रभा की संघर्ष भरी जीवन गाथा का खुला

---

1 गोपाल राय पीली आंधी का हाहाकार पृ. 11

दस्तावेज है । परिवार में उपेक्षित, महज तीन सौ रुपयों से ज़िन्दगी की शुरुआत करती हुई करोडों के व्यावसायिक जगत में प्रतिष्ठित महिला के रूप में उभरती प्रभा बुलन्दियों को छूती हुई समाज से अलग हटकर एक 'अकेली स्त्री' के परिवार की अवधारणा को साबित करती हैं । पुरुष प्रधान समाज में शादीशुदा मर्द से भावनात्मक स्तर पर जुड़कर, डॉ. सर्राफ द्वारा भावनात्मक स्तर पर छली गई । इस कड़वी सच्चाई को निगलते हुए इस रिश्ते को अन्त तक निभाती हुई अपने ही निर्णय पर अडिग रही । सदियों से स्त्री के आर्थिक अवदान को नकारता समाज प्रभा के आर्थिक अवदान को नकारने के साथ-साथ इस साबुत स्त्री को नेस्तनाबूत करने के तरीके को अपनाने से भी बाज नहीं आता । इन प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें पंगु बनाने के बजाय उनके मनसूबे को बुलन्द किया और समाज के चाबुक से लहूलुहान हुई डॉ प्रभा खेतान समाज को चुनौती देती हुई अपनी एक अलग पहचान स्थापित करने में कामयाब हुई। इसका खुला चिट्ठा पाठकों के सामने पेश करता है उनकी आत्मकथा अन्या से अनन्या । स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को उद्घाटित करती यह आत्मकथा स्त्री विमर्श में अपना एक विशेष स्थान दर्ज करती है, "स्त्री विमर्श की शुष्क सैद्धांतिकी को अनवरत कर्म की आस्था में पल्लवित करती यह आत्मकथा असल में स्त्री विमर्श की सशक्ततम पुस्तक है।"[1] अन्या से अनन्या का अंग्रेज़ी और बंगला में अनुवाद हुआ है ।

संपादक प्रभा खेतान : सृजनात्मक साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं संपादन के क्षेत्र में भी उनका योगदान रहा है । 'एक और पहचान' (1986) उनके द्वारा संपादित काव्य-संग्रह है । इसके अलावा उन्होंने 'पितृसत्ता के नए रूप: स्त्री और भूमण्डलीकरण' का भी (2003) संपादन कार्य किया है ।

चिन्तक प्रभा खेतान

सार्त्र का अस्तित्ववाद (1984): चिन्तन के क्षेत्र में भी प्रभा खेतान का योगदान अभूतपूर्व है । सार्त्र से प्रभावित लेखिका प्रस्तुत कृति में सार्त्र के अस्तित्ववादी विचारधारा को

1. रोहिणी अग्रवाल जिन्दा रहने की जिद पृ. 18

विश्लेषणात्मक रूप में प्रस्तुत करती है । पुस्तक के संबंध में प्रभा खेतान लिखती हैं - "इस पुस्तक में मैंने उन विद्वानों के उठाए गए मुद्दों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, जिसका अध्ययन-मनन करके सार्त्र ने उन्हें अपने दर्शन में उतारा, उसे आगे बढ़ाया या उसका विरोध किया है, उन्हें नकार दिया है।"[1]

सार्त्र शब्दों का मसीहा (1985): लेखिका ने सार्त्र के जीवन, साहित्य, दर्शन पर विस्तार से अपने विचार प्रस्तुत किए हैं । साथ ही साथ सार्त्र की पीड़ा को भी चित्रित किया है जो उन्होंने अपने जीवन काल में झेला था । लेखिका ने प्रथम अध्याय में सार्त्र के जीवन और साहित्य पर प्रकाश डाला है । द्वितीय अध्याय में सार्त्र के राजनीतिक दृष्टिकोण को सामने रखा है । तृतीय अध्याय में मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के प्रति सार्त्र के विचार प्रस्तुत किये गए हैं । चतुर्थ अध्याय में प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध तक के सार्त्र के विचारों को उन्होंने सामने रखा है । पाँचवें अध्याय में 1968 से लेकर 1983 तक के सार्त्र के विचारों को पेश किया गया है ।

अल्बेयर कामू वह पहला आदमी (1993) प्रस्तुत रचना में प्रभा खेतान ने अल्बेयर कामू का जीवन वृत्त, उनके बहुआयामी व्यक्तित्व को उद्घाटित किया है । गरीबी एवं अभावों के बीच पले बढ़े कामू आम आदमी के दर्द और उनकी पीड़ा से बखूबी वाकिफ थे । उन्होंने हमेशा मानवीय गरिमा पर बल दिया है, "कामू जैसे लेखक से हमें अपनी मानवीय गरिमा को बचाए रखने में और इस गरिमा के प्रति संघर्षरत रहने में मदद मिलती है।"[2] दमन एवं अत्याचार के प्रतिरोध में कामू ने अपनी आवाज़ बुलन्द की थी ।

उपनिवेश में स्त्री मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ (2003)

'उपनिवेश में स्त्री' स्त्री को समाज की मुख्यधारा से धकेलकर हाशिये पर रखने, स्त्री

---

1. प्रभा खेतान सार्त्र का अस्तित्ववाद यह पुस्तक क्यों ? (भूमिका)
2. प्रभा खेतान अल्बेयर कामू वह पहला आदमी पृ. 14

का खुला शोषण और दमन के विरुद्ध एक सशक्त दस्तावेज है । मुक्ति कामना की दस वार्ताएँ जीवन के दो पक्ष पर प्रकाश डालता है - एक स्त्री दूसरा उपनिवेश । स्त्री मुक्ति की कामना से छटपटा रही है और उपनिवेश के वर्चस्व से उसका मनोजगत आज भी आक्रांत है । उपनिवेश से लेखिका का तात्पर्य नव उपनिवेश के नाम से परिभाषित हो चुकी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय पूँजी, पितृसत्ता, इतर लिंगी यौन चुनाव और पुरुष वर्चस्व की ज्ञान मीमांसा का उपनिवेश है, जिसकी सीमाएँ मनोजगत से व्यवहार जगत तक राज सत्ता से परिवार तक फैली हुई हैं ।

बाज़ार के बीचः बाज़ार के खिलाफ भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न (2004)

भूमण्डलीकरण और उसके आर्थिक पहलुओं का स्त्री जीवन पर पड़नेवाला प्रभाव, उत्तर औपनिवेशिक परिवर्तन, भूमण्डलीय प्रक्रियाओं के कारण स्त्री जीवन से जुड़ी नई भूमिकाएँ, भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था में आर्थिक रूप से पुरुष की तुलना में स्त्री की बदहाली, सस्ते श्रम के रूप में स्त्री की बढ़ती मांग, पर्यटन उद्योग, मनोरंजन उद्योग की आड़ में उभरता सेक्स उद्योग, उपभोक्तावादी संस्कृति की गिरफ्त में फँसती स्त्री एवं पितृसत्ता को जबर्दस्त चुनौती देता गे और लेस्बियन आन्दोलन से रू-ब-रू कराता है प्रभा खेतान की प्रस्तुत रचना। स्त्रियों को धडल्ले से कमाने की नसीहत देती लेखिका स्त्रियों को उपभोक्तावादी संस्कृति की गुलाम न बनने का संदेश भी देती है । इसका असर उनके बरसों के मुक्ति संघर्ष पर पड़ सकता है। वे चयन करने की स्वतन्त्रता स्त्रियों पर छोड़ती हैं कि उन्हें एक निष्क्रिय उपभोक्ता बनना है या सक्रिय सृजनशील व्यक्ति ।

भूमण्डलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र (2007)

ब्रांड का जीवनशैली या दृष्टिकोण के रूप में उभरना, उदारीकरण की नीति की

शुरुआत, ब्रांड के चंगुल में फंसते हमारे मूल्यबोध, राष्ट्र-राज्य के सामाजिक, आर्थिक नीति को बनाने एवं लागू करने का अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय संस्था द्वारा हथियाना । लेखिका नस्लवाद की नींव पर टिकी अमरीकी संस्कृति, तमाम विश्व पर अपने नियंत्रण को स्थापित करने की उसकी मानसिकता और समकालीन संदर्भ में उभरते धार्मिक मौलवाद द्वारा नारीवाद को नई चुनौती देना आदि सच्चाईयों को प्रस्तुत रचना में उद्‌घाटित करने का प्रयास करती है । इस रचना की विशिष्टता को व्यक्त करते हुए पंकज बिष्ट लिखते हैं - "ये इस मामले में भी विशिष्ट हैं कि इन के पुस्तकाकार प्रकाशित हो जाने के एक वर्ष बाद भी इस जैसे महत्वपूर्ण विषय पर कोई और रचना हिन्दी में उपलब्ध नहीं है ।"[1] 2006 में समयांतर में 'ब्रांड' पर प्रभा खेतान के लेख आठ किस्तों में प्रकाशित हुए थे, जो बाद में पुस्तक रूप में उपलब्ध हुआ ।

सोफ़िया तोलस्तोया की डायरी: संपूर्ण रचना भोपाल से प्रकाशित 'रचना समय' पत्रिका में छपी थी । सोफिया तोलस्तोया की डायरी का जिस्ट छपा था हंस के जून-जुलाई 2008 के अंक में । प्रभा खेतान ने सोफिया तोलस्तोया की डायरी के ज़रिए उनकी मेधाबुद्धि एवं उनके साहस को सरेआम लाने का प्रयास किया है, "टॉलस्टॉय के शिष्य उसे आत्मकेन्द्रित, चिड़चिड़ी निरंतर शिकायत करनेवाली स्त्री के रूप में देखते हैं । दुनिया सोफिया के उसी रूप से परिचित है । यह सच है कि उसके स्वभावगत दोष, उसकी भावुकता और रूढ़िग्रस्तता के कारण हम उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण शायद ही रह पाते हैं लेकिन उसकी डायरी से पता चलता है कि वह मेधाबुद्धि और साहस तथा मानवीय गरिमा की मिसाल थी।"[2] पति की मंशा केलिए खुद की प्रतिभा, मेधाबुद्धि की कुर्बानी देनेवाली सोफिया टॉलस्टाय की निजी जीवन का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया है । साथ ही साथ मानवीयता का संदेश देने वाले टॉलस्टाय किस कदर अपनी पत्नी के प्रति अमानवीय रहे हैं इसका चित्र भी लेखिका ने उकेरा है ।

---

1. पंकज बिष्ट प्रभा खेतान पृ. 3
2. प्रभा खेतान सोफिया तोलस्तोया की डायरी पृ. 47

अनुवादक प्रभा खेतान

सीमोन द बोउवार से प्रभावित प्रभा खेतान ने स्वीकारा है कि सीमोन से बड़ा बौद्धिक मित्र उन्हें दूजा कोई नहीं मिला । अनुवाद का कोई तजुर्बा न होते हुए भी सीमोन की विश्वविख्यात कृति 'द सेकेंड सेक्स' का अनुवाद करने के पीछे उनका मुख्य ध्येय रहा है "शायद किसी की धरोहर मेरे पास है, जो मुझे लौटानी है । यह किताब जहाँ तक बन पड़ा मैंने सरल और सुबोध बनाने की कोशिश की । मेरी चाह बस इतनी है कि यह अधिक से अधिक हाथों में पहुँचे । इसकी हर पंक्ति में मुझे अपने आस-पास के न जाने कितने चेहरे झांकते नज़र आए । मूक और आँसू-भरे । यदि कोई इससे कुछ भी प्रेरणा पा सके, औरत की नियति को गहराई से समझ सके, तो मैं अपनी मेहनत बेकार नहीं समझूँगी । हालांकि जो इसे पढ़ेगा, वह अकेले पढ़ेगा, लेकिन वह सबकी कहानी होगी । हाँ, इसका भावनात्मक प्रभाव अलग-अलग होगा।"[1]

स्त्री उपेक्षिता (1988)

इस किताब में स्त्री की गुलामी, उसकी नियति बड़े ज़ोरदार शब्दों में अभिव्यक्त है । इसमें स्त्री को विश्व के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखा गया है । पश्चिम की स्त्री जो स्वाधीन और उन्मुक्त नज़र आती है उसका इतिहास भी यातनाओं से भरा पड़ा है इस सच्चाई को उघाड़ने का प्रयास इस किताब ने किया है । सीमोन ने पहली बार स्त्री की जैविक स्थिति को अपनी लेखनी का मुद्दा बनाया । शारीरिक संरचना के कारण स्त्री 'अन्या' ठहराई गई इस सच्चाई का खुलासा भी सर्वप्रथम सीमोन ने ही किया । दुनिया भर में स्त्री की नियति एक जैसी है। बचपन से बुढापे तक की स्त्री की मानसिकता को उद्‌घाटित किया गया है । इस रचना में आदिकाल से स्त्री का ऐतिहासिक रूप चित्रित है । सर्वप्रथम सीमोन ने उजागर किया कि स्त्री पैदा नहीं होती बल्कि बनाई जाती है । खुले शब्दों में पितृसत्ता की आलोचना करने वाली

---

1 प्रभा खेतान स्त्री उपेक्षिता पृ. 15

यह किताब स्त्री विमर्श के संदर्भ में मील का पत्थर साबित होती है । इस रचना ने अपनी गुलामी को अपनी नियति मान लाचार, बेबस ज़िन्दगी गुजारनेवाली स्त्रियों केलिए मुक्ति के नए द्वार खोले हैं ।

साँकलों में कैद क्षितिज (1988): प्रस्तुत रचना में दक्षिण अफ्रीकी कविताओं का अनुवाद किया गया है । इसमें काले लोगों की हीन अवस्था का चित्रण उनकी जुबानी पेश की गई है। उनके विद्रोह को अभिव्यक्ति दी गई है जो अपने अधिकारों केलिए पहल करते हैं और रंगभेद, नस्लवाद के नाम पर इन्सान को बाँटने वाली नीति के विरुद्ध खड़े हैं ।

प्रभा खेतान का बौद्धिक पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उनका साहित्यिक पक्ष । राजेन्द्र यादव के शब्दों में "मुझे लगता है कि जितनी भी लेखिकाएं लिख रही हैं उनमें प्रभा खेतान बौद्धिक रूप से सबसे ज्यादा मज़बूत और प्रखर हैं । सबसे ज्यादा मानसिक और बौद्धिक तैयारी के साथ हिन्दी में कोई लेखिका है तो वह प्रभा खेतान है।"[1] उनके चिन्तन के केन्द्र में स्त्री है । वह जहाँ भी गई है उन्होंने स्त्री को खोजा है । उसे जानने की चेष्टा की है । लेखिका समकालीन संदर्भ में स्त्री के चारों ओर मंडराते 'भूमण्डलीकरण' के संकट को उद्घाटित करती है जो स्त्री को जिन्स में बदल रहा है, उसकी मानवीय पहचान को खारिज कर उसे हाशिये पर धकेलने का हिमायती है । उनके अनुसार यह स्त्री की मुक्ति नहीं बल्कि मुक्ति के नाम पर फिर से स्त्रियों को अपदस्थ करने का षड्यन्त्र है । भूमण्डलीकरण द्वारा स्त्री को नए अवसर तो मिले हैं साथ ही साथ नई समस्याएँ भी उठ खड़ी हुई हैं । स्त्री के खिलाफ हिंसा बढ़ी है । कार्यक्षेत्र में स्त्री यौन-उत्पीड़न झेलती है ।

स्त्री श्रम आज भी निचले पायदान पर खड़ा है, स्त्री श्रम को कमतर करके आंका जाता है । आज समस्या है स्त्री श्रम की पहचान की । घरेलू स्तर पर काम करने वाले श्रमिकों में स्त्रियों की संख्या बड़ी तादाद में है, जो तमाम कानूनी सुविधाओं से वंचित रह जाती है । तकनीकी प्रगति के साथ ही स्त्री श्रम की माँग घटने लगती है । तकनीक को

---

1. राजेन्द्र यादव जवाब दो विक्रमादित्य पृ. 51

स्वीकारने की क्षमता अलग-अलग देशों की स्त्रियों में अलग-अलग होती है । भूमण्डलीकरण के दौर में असमानता मिटने के बजाय बढ़ती चली जा रही है । उपभोक्तावादी संस्कृति के चंगुल में स्त्री फंसती चली जा रही है, "उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में एक ओर, यदि स्त्री की स्थिति मजबूत हुई है, तो दूसरी ओर, वह कमजोर भी हुई है । यदि उसे धन कमाने के नए अवसर मिले हैं, तो दूसरी ओर, पारंपरिक उद्योगों के बंद होने से पुरुषों से पहले उसे ही निकाल दिया जाता है । एक ओर वह सीधे बाज़ार से बातचीत कर रही है; विज्ञापन की दुनिया में मॉडल के रूप में उभरी है; सेक्स-श्रमिक के रूप में अपनी पहचान मांगती है और उसको यह पहचान अनेक देशों में मिली भी है, तो दूसरी ओर, व्यवस्था उसे जिंस की भांति खरीदने-बेचने या उसका उपयोग करने में पीछे नहीं रहती है।"[1]

उपभोक्तावादी संस्कृति की आड में दहेज प्रथा को बढ़ावा मिल रहा है । आज उपभोक्ता और उत्पादक के रूप में स्त्री की क्षमता बढ़ी है । उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रभाव नारीवाद पर भी पड़ा है जिससे नारीवाद के तीसरे दौर में नव नारीवाद की शुरुआत हुई है। नव नारीवाद उपभोग को गलत नहीं मानता । लेखिका स्त्रियों को धड़ल्ले से कमाने का संदेश देती हुई अपनी कमाई को उचित कार्य केलिए खर्च करने की नसीहत देती हैं, "साथ ही नारीवाद का एक छोटा-सा संदेश याद रखिये, भूमंण्डलीकरण के दौर में आप कमाने निकली हैं, आपकी क्रयशक्ति बढ़ी है, पहले की अपेक्षा आपका पर्स भारी है लेकिन मेहनत से कमाए हुए धन के प्रति आपकी भी कोई जिम्मेदारी है, इसे आप किसी अच्छे काम में खर्च कर सकती हैं । औरत, औरत की दुश्मन नहीं दोस्त है । माँ-बहन और बेटी हैं, किसी अन्य औरत को इस धन की बेहद ज़रूरत हो सकती है। इस धन से किसी वृद्धाश्रम का एक कमरा बनवा कर, किसी अंधे का इलाज करवा के, किसी बच्चे की स्कूल फीस चुका कर आप बता सकती हैं कि स्त्री सब कुछ करने में समर्थ है । क्योंकि ज़िन्दगी केवल उपभोग नहीं, केवल बनाव-श्रृंगार ही नहीं, कुछ और भी है । ज़िन्दगी में उसे खोजना चाहिए।"[2] उनके अनुसार भूमण्डलीकरण के दौर में नारीवादी आन्दोलन धीमा पड़ गया है।

---

1. प्रभा खेतान भूमण्डलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र पृ. 220
2. प्रभा खेतान बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ - पृ. 231

विश्व के परिदृश्य पर उभरता गे और लेस्बियन आन्दोलन पुरुष वर्चस्व को चुनौती देता है । समलैंगिकवाद नारीवादी आन्दोलन का ही हिस्सा है । लेखिका के अनुसार उत्तर आधुनिक युग में समलैंगिकता यौन रोग नहीं बल्कि एक जीवन शैली है । लेकिन प्रभा खेतान इतरलिंगी व्यवस्था को पूर्ण रूप से खारिज करने की पक्षधर नहीं है, बल्कि सुरक्षित यौन जीवन केलिए समलैंगिकता का बहिष्कार करने का समर्थन करती है । वे स्त्री और पुरुष को यौन चुनाव के अवसर प्रदान करने एवं उसके लिए सामाजिक माहौल निर्मित किये जाने की पक्षधर हैं ।

प्रभा खेतान की बौद्धिकता को गढ़ने में सार्त्र और सीमोन का विशेष योगदान रहा है, "मैंने सार्त्र पर शोध किया था, इसलिए उनकी प्रेमिका, उनकी जीवन मित्र को भी पढ़ा । सीमोन को पढ़ने से नारीवादी विचारधारा, चिन्तन और जीवन-मूल्यों के प्रति मेरा आग्रह बढ़ता गया ।"[1] उन्होंने सीमोन की विश्वविख्यात कृति 'द सेकेंड सेक्स' का अनुवाद किया। स्त्री उपेक्षिता ने हिन्दी साहित्य में स्त्री विमर्श और स्त्रीत्ववादी विमर्श को विस्तार देने में विशेष भूमिका निभाई है । प्रभा खेतान नारीवाद को देहवाद के घेरे से मुक्त करने की पक्षधर है । उनके शब्दों में - "स्त्री सिर्फ कामना की वस्तु नहीं, बल्कि एक व्यक्ति और अपने बारे में समाज से खुली बहस चाहती है।"[2] आलोचक, संपादक, लेखक स्त्री को मात्र देह स्थापित करने पर तुले हुए हैं । सारी चर्चा स्त्री की देह पर केन्द्रित है । स्त्री की मुक्ति केलिए उसे देह के घेरे का अतिक्रमण करना होगा ।

निधन

प्रभा खेतान का निधन 19 सितम्बर, 2008 को हुआ ।

निष्कर्ष

स्त्री विमर्श द्वारा समाज और साहित्य में स्त्री को देखने-परखने का एक नया नज़रिया प्रदान किया जा रहा है । स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं सचेत हुई है । स्त्री आज

---

1. प्रभा खेतान उपनिवेश में स्त्री पृ. 57
2. जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह (सं) स्त्री अस्मिता साहित्य और विचारधारा पृ. 347

जुझारू होकर स्त्री अधिकारों की मांग कर रही है । उसे आज किसी के सहारे की ज़रूरत नहीं । स्त्री शोषण के उत्स व्यवस्था में ढूँढ निकालने के प्रयास करते हुए, व्यवस्था में परिवर्तन लाने के कार्य भी किये जा रहे हैं । इसके लिए स्त्री-पुरुष दोनों की मानसिकता में बदलाव पर बल दिया जा रहा है । विद्रोही स्त्री की छवि उपन्यासों में उभरी है । शोषण के खिलाफ विद्रोह करती स्त्री, अपनी अस्मिता की तलाश करती स्त्री, शिक्षित एवं आत्मनिर्भर स्त्री, समाज को चुनौती देती स्त्री, प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझती हुई स्त्री की छवि को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है ।

दूसरा अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री शोषण के विभिन्न आयाम

समकालीन उपन्यासों में स्त्री शोषण के विभिन्न आयामों को अभिव्यक्ति देनेवाले स्त्री-विमर्श के उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है । उनमें स्त्री द्वारा लिखे जानेवाले उपन्यास विशेष उल्लेखनीय हैं । वे स्त्री के प्रति होने वाले सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा न्याय व्यवस्था के शोषण का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत करती हैं । इनमें प्रभा खेतान के उपन्यासों का विशेष स्थान है । उनके उपन्यासों में खासकर मारवाड़ी समाज के शोषण से त्रस्त स्त्री की त्रासद स्थिति को उभारने का कार्य किया गया है । प्रभा खेतान ने भारतीय स्त्री के साथ-साथ विदेशी स्त्री के शोषण, उसकी पीड़ा, उसके दर्द को बड़ी शिद्दत के साथ उकेरने का प्रयास किया है । उनके उपन्यासों में उल्लिखित स्त्री-शोषण के विभिन्न आयामों का विश्लेषण यहाँ किया जा रहा है ।

सामाजिक शोषण

समाज में स्त्री सदियों से शोषण का शिकार रही है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा संचालित सामाजिक संरचना इसके मूल में है जो पुरुष की श्रेष्ठता का बखान करते नहीं थकती । समाज में सत्ता एवं संपत्ति का वारिस पुत्र ही माना जाता है । इसके परिणामस्वरूप पुत्र के जन्म की चाहत लोगों के दिलो-दिमाग में हावी रहती है । प्रभा खेतान के 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में वृंदा को जब पहली बार बेटी पैदा होती है तब वह सोचती है, "सबने खुशी जाहिर की । वृंदा को फिर लगा कि यदि लड़का होता तो अच्छा था । माँ और सासूजी दोनों थोड़ी उदास थीं । "[1] समाज में वृंदा की तरह स्त्रियाँ भी बेटे की चाहत से तड़पती रहती हैं । पुत्र जन्म पर ढोलक पीटनेवाला समाज लड़की के जन्म पर जश्न नहीं मनाता ।

---

1 प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 23

'आओ पेपे, घर चलें' में प्रभा घर की पाँचवीं बेटी है । इसलिए उसे घर में उपेक्षा और अवमानना झेलनी पड़ती है । घर में शोषित, प्रताड़ित प्रभा टूटने के बजाय कुछ बनने की मंशा के साथ अमेरिका जाती है और वहाँ ब्यूटी थेरापी का कोर्स करती है । प्रभा अपनी दोस्त मरील से कहती है, "सात-भाई-बहनों में आखिरी संतान मैं । यूँ भी पाँचवीं बेटी के जन्म पर कौन सा जश्न मनाया जाता है हमारे समाज में ?"[1] समाज पुत्र को जन्म देनेवाली स्त्री की इज्जत करता है । वह सम्मान की अधिकारी मानी जाती है । ऐसा न होने पर समाज स्त्री को ही अपराधी महसूस करवाता है । 'पीली आँधी' उपन्यास में मिस्टर अगरवाल की तीन बेटियाँ हैं । मिस्टर अगरवाल के मित्र मिस्टर गुप्ता हमेशा उनका कोई बेटा न होने की वजह से उन्हें छोटा महसूस करवाते रहते हैं । गुप्ता कहते हैं - "सोमा के भाई नहीं । अरे आप लोग क्या ज़िन्दगी भर बैठे रहेंगे ? पीहर तो भाईयों के नाम से चलता है । "अगरवालजी एकदम चुप हो गए थे । भावना वहाँ से उठ गई ।"[2] उपन्यास में मिसेज अगरवाल कदम-कदम पर खुद को ही अपराधी महसूस करती है । बेटे का अभाव उन्हें भी दुःखी करता है। इस तरह पितृसत्तात्मक समाज की जड़ें खुद स्त्रियों के मन में भी गहरी पैठ जमाए हुए हैं ।

पुत्र की चाहत से ग्रस्त समाज पुत्री से उसके जन्म के अधिकार को ही छीन रहा है। पुत्री को जन्म से पहले या जन्म के बाद मौत के घाट उतार दिया जाता है । ऐसे वारदात सिर्फ भारत में ही नहीं घटते बल्कि विदेशों में भी स्त्री की हालत बद से बदत्तर है । इसका खुलासा लेखिका ने 'अग्निसंभवा' उपन्यास में किया है । चीनी महिला आइवी के घर बेटी पैदा हुई थी । उसके पति ने उसकी पहली संतान को देखा तक नहीं । उसकी सास ने उस नवजात बच्ची को मार डाला था - "मेरी पहली संतान लड़की थी । सरकार की ओर से हम दो ही बच्चे पैदा कर सकते थे । अतः किसान के घर लड़की होना अभिशाप था । पति ने बच्ची

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 24
2. प्रभा खेतान पीली आंधी - पृ. 169

को देखा तक नहीं । सास ने खाने में पता नहीं कौन सी दवा मिलाकर दी कि दूध से भरी मेरी छातियाँ सूख गयीं । बच्ची को दूध सास ही पिलाती थी । पर वे उसे दूध नहीं पिलाती थी । घोला हुआ सफेद पानी जैसा स्टार्च पिलाती रहीं । बच्ची का पेट फूलता गया और दस दिन में वह मर गयी।"[1] उसे आज भी इस बात का बेहत अफसोस है । जब उसे इस सच्चाई का पता चला था तब वह अपनी सास पर टूट पड़ी थी । सास ने उसे बताया था कि इनकी दो बेटियों को बड़ी बेरहमी के साथ मार डाला गया था । उसके बाद आइवी का पति किंगफू पैदा हुआ था । आज समाज में ऐसे वारदात आम घटना बन गई हैं । परिणामस्वरूप उनकी संख्या में कटौती हो रही है ।

समाज लड़के को ही कुलदीपक के रूप में प्रतिष्ठित करता आया है । बचपन से ही उसके ज़ेहन में यह बात ठूँसकर भर दी जाती है कि वह श्रेष्ठ है । समाज में तमाम सुख-सुविधाओं का हकदार है । बचपन से ही उन्हें यह सीख दी जाती है कि लड़कियाँ उनकी अपेक्षा एक निकृष्ट प्राणी है । 'अपने अपने चेहरे' में टिंकू रीतू का इकलौता बेटा है । और उनके घर का चिराग । वह अपनी माँ रीतू को कुलदीपक का अर्थ समझाता है । उसे उसकी दादी ने समझाया था - "हाँ, दादी ने मुझे समझाया था । मुझसे कहा था -कुलदीपक वह जो अपने परिवार की लकीर को जिंदा रखे । परिवार का नाम रोशन करे ।"[2] इस तरह समाज लड़की को दोयम दर्जे का मानता रहा है । उसे अपने अधिकारों से बेदखल करता आया है।

लिंगभेद की इस नीति से स्त्री शोषण को बढ़ावा मिलता है । उसे समाज में बोझ समझा जाता है । 'छिन्नमस्ता' में प्रिया को उसकी दादी बोझ मानती है । क्योंकि उनकी दो पोतियों की शादी करवानी है और ऊपर से यह एक और टपक पड़ी । प्रिया को आजीवन अपनी माँ के प्यार से वंचित रहना पड़ता है । दूसरों के ताने सुनने पड़ते हैं । और परिवार

---

1 प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 58

2. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 120

में माँ की भेदभाव की नीति से उसका मन दहल उठता है । वह सोचती है - "घर में पड़े रहकर दो वक्त का खाना मिल सकता था । बस, उस बड़े घर में जहाँ दस-दस नौकर, दाई, महाराज, दरबान, ड्राइवर थे; जहाँ अंगूर और अलफाँसो आम कुछ विशिष्ट जनों केलिए खरीदा जाता था और आम जनता केलिए खीरे, ककड़ी, मौसंबी । फलों का खैर मुझे ऐसा कोई शौक नहीं था, पर मन विद्रोह करता था । अम्मा की भेदभाव की नीति देखकर कुछ खाने को मन नहीं करता था । संतरे का रस, अम्मा बडे भैया, सरोज और छोटे बच्चों को देती थीं । यदि मौसम की पहली मटर महँगी आ रही है तो वह बड़े भैया और सरोज की थाली में परोसी जाएगी । एक दिन मैं रोती-रोती थाली से उठ गई।"[1] प्रिया परिवार का एक उपेक्षित हिस्सा ही थी । अगर प्रिया से कोई प्यार करता था तो वह उसके पिता और दाई माँ थीं ।

बेटियों को बोझ के साथ-साथ पराया धन भी माना जाता है । बचपन से ही उसके ज़ेहन में यह बात ठूँस-ठूँसकर भर दी जाती है कि उन्हें पराये घर जाना है । पिता के घर में तो वह सिर्फ थोडे दिनों की मेहमान होती है । 'छिन्नमस्ता' में प्रिया अपनी सास से ज़्यादा अपनी सौतेली सास को चाहती है । तिलोत्तमा भी प्रिया को अपनी बेटी से बढ़कर मानती है और वह कहती है -"मेरी तो बेटी प्रिया है । यही करती है जो करना है । बेटियों का क्या? बेटियाँ तो पराया धन होती हैं ।"[2] नीना की शादी के बाद तिलोत्तमा प्रिया के साथ ही रहती है और नीना के लाख कहने पर भी उसके साथ नहीं जाती । 'अपने अपने चेहरे' की मिसेज गोयनका के भी यही विचार है । वह अपनी बेटी रीतू और बहुओं में कोई फर्क नही करती। उनके अनुसार रीतू पराई अमानत है और बहुएँ ही उनके काम आयेगी । इसी तरह 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में वृंदा का भाई उसे हमेशा पराया धन कहकर चिढ़ाता रहता है ।

---

1 प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 125-126

2. वही पृ. 221

स्त्री को बोझ और पराया धन मानने की वजह से उसे व्यक्तित्व विकास के अवसरों से वंचित रखा जाता है । उसे शिक्षित कराना ज़रूरी नहीं समझा जाता । 'अपने अपने चेहरे' उपन्यास में मिसेज गोयनका को शिक्षा से वंचित रखा गया । यही वजह है कि उन्हें आजीवन पति के खूँटे के सहारे बँधे रहना पड़ा । और पति की ज़िन्दगी में आई दूसरी स्त्री रमा को चुपचाप झेलते रहना पड़ा । उन्हें अपने गँवार-अनपढ़ होने का अफसोस है, "मुझे किसी ने पढ़ाया क्यों नहीं, क्या यह मेरा कसूर था ? लेकिन जब इन्होंने पढ़ाने की कोशिश की तब भी क्या मेरा मन लगा ? मन लगता भी कैसे, सास तो सिर पर थी फिर जिठाणियों की ताना-बोली, तीन-तीन बच्चे, बीस की उमर तक तो लगने लगा था कि आधी ज़िन्दगी ढलान पर आ गई हो ।"[1] लेकिन इसके बावजूद भी वह अपनी बेटी रीतू को ज्यादा पढाने के पक्ष में नहीं थी । उनका मानना था कि ज्यादा पढने से लड़कियाँ हाथ से फिसल जाती हैं । वैसे भी उन्हें पढ-लिखकर घर ही तो संभालना है ।

बचपन से ही लड़की को घरेलू कामकाज में झोंक दिया जाता है । उसे घरेलू कामकाजों में माहिर बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि उसे आगे की ज़िन्दगी में किसी परेशानी का सामना न करना पड़े । स्त्रियों का आर्थिक रूप से स्वावलंबी होना ज़रूरी नहीं समझा जाता । 'पीली आँधी' में रूँगटा परिवार की पढ़ी-लिखी बहुओं को भी घरेलू कामकाज में ही खटना पड़ता है । लता भाभी द्वारा नई नवेली दुल्हन सोमा को बहुओं द्वारा किये जानेवाले कार्यों की जानकारी दी जाती है । लता भाभी कहती है, "नाश्ते के बाद ये लोग तो आफिस चले जाते हैं और बहुओं की पारी बंधी हुई है । जैसे एक महीने भंडार घर मैं संभालती हूँ । एक महीने भाभी जी । भंडार घर से सारा सामान निकालकर घी, तेल नापकर महाराजजी को संभला देना पड़ता है । सुबह लंच में एक सूखी सब्जी आलू की और एक

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 15

हरी सब्जी रसे वाली । दाल, चावल, फुलके और दही का रायता और सलाद । बस । दस बजे से एक बजे तक गद्दी वाले कमरे में ताईजी के सामने बैठकर सिलाई करनी पड़ती है। एक बजे के करीब ये लोग घर जीमने आते हैं । सबको खिलाते -पिलाते दो ढाई बज ही जाते हैं । ऊपर कमरे में आराम करने केलिए बस एक घंटे की छुट्टी मिलती है । साढ़े-तीन से पाँच बजे तक फिर वही सिलाई-कढ़ाई । कभी दर्जो आ गया तो कभी सुनार।"[1] इस तरह स्त्री की प्रतिभा को कुंद किया जाता है और उसे पंगु बनाये रखने के तरीके ईज़ाद किये जाते हैं । उसकी प्रतिभा को रसोई घर में झोंक दिया जाता है ।

लड़की के जन्म के साथ ही मानसिक अनुकूलन की प्रक्रिया शुरू हो जाती है । इसके ज़रिए उसे दिमागी एवं मानसिक तौर पर गुलाम बनाये रखने के षड्यंत्र रचे जाते हैं । परंपरा इसमें अहम भूमिका निभाती है । इसके माध्यम से स्त्री को अत्याचार को सहने की हिदायत दी जाती है और समझाया जाता है कि चुप्पी साधे रहने में ही उसकी भलाई है । 'स्त्री पक्ष' उपन्यास की प्रमुख पात्र है वृंदा । पढ़ी लिखी वृंदा भी अपने जीवन में अपने पति की ज्यादतियों को चुपचाप सहती रही है । उसके पति के जीवन में एक दूसरी स्त्री का प्रवेश होता है । वृंदा का पति अपनी इस सेक्रेटरी के साथ एक अलग घर बसा लेता है । वृंदा सोचती है - "मुझे विरासत में न जायदाद मिला न धन, ज़िन्दगी की शुरुआत में मुझे तो बस मुट्ठी भर भ्रम पकड़ा दिए गए थे । और अपने गहरे भ्रमों को ज़िन्दा रखने केलिए मैं दिन रात पीसती रहती हूँ, क्यों नहीं मैं ठहरकर एकबार खुद से सवाल करती हूँ कि क्या वास्तव में मुझे इन भ्रमों की ज़रूरत है ?"[2] इसतरह चुपचाप सहने के बावजूद न पति और न ही घर वृंदा के हो पाते हैं ।

प्यार, त्याग, ईमानदारी, समर्पण आदि शब्द मानसिक अनुकूलन द्वारा स्त्री के भेजे में ठूँसकर भर दिये जाते हैं और आजीवन स्त्री अपने भ्रमों को जिलाए रखती है । यही कारण

---

1 प्रभा खेतान पीली आँधी पृ. 180

2. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 21

है कि छिन्नमस्ता की प्रिया जैसी विद्रोही स्त्री तक समर्पित रहने को विवश हो जाती है । प्रिया सोचती है - "अम्मा ! तुम्हारी जैसी, जीजी लोगों जैसी ज़िन्दगी मैं नहीं स्वीकारना चाहती थी। मैं बड़ी भाभीजी की तरह घुट-घुटकर नहीं मरना चाहती । मगर फिर भी इस परंपरा की जड़े शरीर के रेशों में समाई रही हैं ? सदियों की इस अमानवीय परंपरा को किस बीमारी का नाम दूँ जहाँ मेरी जैसी विद्रोही लड़कियाँ भी समर्पिता पत्नी और माँ बन जाने को विवश हो जाती हैं ? "[1] विद्रोही प्रिया भी अपने पति के अत्याचार को चुपचाप पहले-पहल सह लेती थी ।

मानसिक गुलामी के इस बंधन में बंधी स्त्रियाँ आजीवन अत्याचारों के खिलाफ एक शब्द तक नहीं उठाती और दूसरों को भी सहने की हिदायत देती हैं । अपने अपने चेहरे की मिसेज गोयनका, पीली आँधी की ताई माँ, छिन्नमस्ता की प्रिया की माँ ऐसी ही स्त्रियाँ हैं । ऐसा सबकुछ केवल भारत में ही नहीं घटता बल्कि विदेशों में भी तमाम भोग-विलास में डूबी स्त्री की हालत इससे भिन्न नहीं है ।

'आओ पेपे, घर चलें' में डॉ डी की ज़िन्दगी में एक दूसरी स्त्री है क्लारा ब्राउन । डॉ डी की पत्नी इस सच्चाई से वाकिफ है । लेकिन इसके बावजूद वे अपने पति को छोड़ने की बजाय उन्हीं के साथ बंधी रहती हैं । मिसेज डी सिर्फ इसी वजह से डॉ डी को छोड़ना नहीं चाहती । प्रभा को आइलिन से इस सच्चाई का पता चलता है । उसके पूछने पर कि इस देश में भी औरतें त्रिशंकु होकर जी लेती है तब आइलिन का जवाब था - "कहाँ नहीं जीती वे ? दुनिया में ऐसा कोई कोना बताओ, जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे ?"[2] आइलिन डॉ डी की सेक्रेटरी है । लेकिन वह मिसेज डी को अपनी बेटी मानती है । उनकी इस हालत से आइलिन भी बहुत परेशान है । और मिसेज डी की इस हालत केलिए ज़िम्मेदार क्लारा ब्राउन से नफरत करती है ।

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 91
2. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 35

मानसिक अनुकूलन के परिणामस्वरूप स्त्री में हीनभावना पनपने लगती है । इसी हीनभावना के कारण वह खुद को पुरुष से पिछड़ा हुआ मान लेती है । 'अग्निसंभवा' में प्रभा एक व्यावसायिक महिला है और खुद को व्यावसायिक जगत में प्रतिष्ठित करने केलिए तन-मन से जुटी हुई है । वह सोचती है "औरतपने का हीन भाव, पुरुषों की दुनिया में बार-बार अपना औचित्य स्थापित करना चाहता रहा है । क्या मैं औरत हूँ इसलिए यह काम नहीं करूंगी ? करके दिखा दूंगी । दिखाया । पर देखा भी कम नहीं ।"[1] व्यावसायिक जगत जहाँ सिर्फ पुरुषों का दबदबा था वहाँ महज एक स्त्री होने के नाते प्रभा को अथक प्रयास करना पड़ा । 'छिन्नमस्ता' की प्रिया जो संपन्न घराने में जन्म लेकर भी गरीबों सा जीवन बिताती है, संपन्न घराने में ब्याही जाकर हीनभावना की शिकार बनती है "ईमानदारी से कहूँ तो नरेन्द्र, यह बड़े आदमियों का सोशल सर्कल, शादी-ब्याह की दावतें, कॉकटेल पार्टियां । ओह, मैं एकदम थक जाती हूँ । पहले एक घंटा तैयार होने में, फिर डरते-डरते पतिदेव के सामने, जो कुछ न कुछ खामी निकाले बिना नहीं मानते । सारे रास्ते झकझक-'शऊर नहीं.....सलीका नहीं.... गहने क्यों नहीं पहने? यह कार्टियार-वाली घड़ी का क्या अचार डालोगी ? मोटी होती जा रही हो !' और मैं कह नहीं पाती कि नरेन्द्र, ऐसे ही मैं हीनभाव से ग्रसित हूँ, दाई माँ की बेटी हूँ, अम्मा की नहीं।"[2] 'अपने अपने चेहरे' की रमा पढ़ी लिखी अपने पैरों पर खड़ी है । रमा ने एक शादीशुदा पुरुष मिस्टर गोयनका के साथ नाता जोड़ रखा है । इस वजह से वह खुद को अपराधी महसूस करती है । सार्वजनिक जगहों में वह हमेशा एक कोने की तलाश करती रहती है । यह रमा की हीनभावना ही है जो उसे सबके सामने आने से रोकता है ।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री शोषण पर ही टिका हुआ है । पितृसत्ता पुरुष के प्रभुत्व

---

1. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ.51
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 204

और स्त्री की अधीनस्थता को ही मान्यता देती है । स्त्री समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ी है । स्त्री को गुलामी के सांकलों में जकड़े रखने के कुचक्र रचे गये हैं । इसी का खुलासा उपन्यासकार ने अपने अपने चेहरे उपन्यास में किया है । समाज के निचले पायदान पर खड़े पुरुष भी स्त्री को रौंदने, कुचलने से बाज नहीं आता । जहाँ स्त्री शोषित और पीडित दिखाई देती है वहाँ पुरुष के कलेजे को ठंडक मिलती है । उपन्यास में मिस्टर गोयनका का नौकर महेंदर ऐसा ही मर्द है । जब मिस्टर गोयनका और उनकी पत्नी आपस में झगडते हैं तो महेंदर को तसल्ली मिलती है । उसके चेहरे पर एक शैतानी मुस्कुराहट होती है ।

लकीर से हटकर चलनेवाली स्त्री को तहस-नहस करने का कार्य समाज द्वारा किया जाता है । समाज में स्त्री अपनी एक अलग पहचान बनाए यह मुमकिन नहीं । 'छिन्नमस्ता' में प्रिया को व्यावसायिक जगत में प्रतिष्ठित होता देख उसके पति के अहं को चोट पहुँचती है । नरेन्द्र प्रिया से शिकायत करता है कि वह अपनी भूमिका बखूबी नहीं निभा पा रही और प्रिया को बरबाद करने की चेतावनी भी देता है । इसका खुलासा प्रिया अपने दोस्त फिलिप से करती है । तब प्रिया का दोस्त फिलिप पुरुष की मानसिकता का पर्दाफाश करते हुए कहता है "देखो प्रिया ! नरेन्द्र जैसे पुरुष स्त्री की महत्वाकांक्षा को समझ नहीं सकते । वे एक सफल स्त्री की ओर आकर्षित ज़रूर होते हैं, मगर उनके भीतर का पुरुष बस उस स्त्री को दबोचना चाहता है, यानी उसके अहम को संतुष्टि मिलती है कि देखो ऐसी औरत भी मेरे वश में है ।"[1]

'अपने अपने चेहरे' की रमा अकेली स्त्री है, और व्यावसायिक जगत में एक प्रतिष्ठित महिला है । रमा ने शादी नहीं की और वह एक शादीशुदा पुरुष से प्रेम करती है।

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 203

इस तरह उसने समाज के बने बनाये चौखटे को तोड़ने की जुर्रत की है । समाज के लिए वह खतरा साबित होती है और उसे कदम-कदम पर अपराधी होने का एहसास दिलाया जाता है । उसे सबक सिखाने से भी समाज बाज नहीं आता । रमा को इसकी कीमत चुकानी पड़ती है । रमा सोचती है "मेरा महज अकेले जीवित रहना भी उन लोगों केलिए चुनौती है । समाज, औरत को केवल संबंधों के माध्यम से जीवित देखने का आदी है । जब समाज किसी औरत के विरोध में खड़ा होता है, तब उसके पास कोई मानवीय पैमाना नहीं होता - "तुम शादी क्यों नहीं करती? तुम्हारा इस व्यक्ति से क्या संबंध है ? तुम बेचारी अकेली औरत!"[1] सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी स्त्रियाँ दर-दर की ठोकरें खाने को अभिशप्त है । 'आओ पेपे, घर चलें' की मरील अपनी दो बेटियों केसाथ रहती है । अपना पेट पालने केलिए वह खुद कमा रही है । उसका पति उसे छोड़कर उससे भी कम उम्रवाली लड़की के साथ भाग गया है । अपनी दर्दनाक कहानी को सुनाते हुए वह प्रभा से कहती है "यदि लकीर से हटी तो यह दर्द की पहली कड़ी है । दुनिया को झेलने केलिए लौह का कवच पहनना होगा।"[2] इसी सच्चाई का पर्दाफाश छिन्नमस्ता में प्रिया की दोस्त जूड़ी करती है कि बाहर से देखने पर विदेशी स्त्रियों का जीवन जितना चकाचौंध से भरा हुआ लगता है लेकिन वास्तव में उनका जीवन भी आँसू की बूँदों से भीगा हुआ है । प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों के ज़रिए इस सच्चाई को उघाडने का प्रयास किया है कि स्त्री दुनिया के हर कोने में पीडित और शोषित है । व्यवस्था हर कहीं स्त्री के प्रति निष्ठुर रहा है । दुनिया के हर कोने की स्त्री के दुःखडे को उद्घाटित कर प्रभा खेतान दुनिया की तमाम स्त्रियों को एक ही प्लाटफार्म पर खड़ा करती हैं ।

सदियों से देह स्त्री के शोषण का कारण रही है । समाज में स्त्री की पहचान उसकी देह के इर्द-गिर्द ही घूमती है । देह से अलग स्त्री की किसी पहचान को समाज नहीं

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 195
2. प्रभा खेतान ओओ पेपे, घर चलें पृ. 25

स्वीकारता । समाज केलिए स्त्री मात्र एक वस्तु है, उसे अब भी मनुष्य का दर्जा नहीं दिया गया है । 'आओ पेपे, घर चलें' में कैथी प्रभा से कहती है - "प्रभा, औरत अभी मनुष्य श्रेणी में नहीं गिनी जाती और तुम अमीर गरीब का सवाल उठा रही हो? राष्ट्र का भेद समझा रही हो ? माइ स्वीट हार्ट! हम सब अर्ध-मानव हैं । पहले व्यक्ति तो बनो, उसके बाद बात करना। चलो, कपड़े बदलो, तुम्हारा-मेरा कद एक-सा है ।"[1] अपने अपने चेहरे में रमा के ज़रिए लेखिका इसी सच्चाई को उद्घाटित करती है कि समाज के नज़रिए में औरत सिर्फ एक वस्तु है ।

समाज में स्त्री की देह को मद्देनज़र रखते हुए बनाए गये तमाम सामाजिक व सांस्कृतिक नियम एवं परंपराएँ उसे पुरुष के पीछे चलने को विविश करते हैं । सामाजिक रीति -रिवाज़ भी यही चाहते हैं कि स्त्री अपने रूप के माध्यम से ही अपने को दिखाए । समाज में उसे प्रदर्शन की वस्तु समझा जाता है जिसके ज़रिए पुरुष अपने वैभव को ही पसारता है। 'छिन्नमस्ता' में प्रिया का पति नरेन्द्र यही चाहता है कि प्रिया पार्टी में सज धजकर आए । प्रिया सोचती है कि पार्टी में सिर्फ घर को ही नहीं सजाना पड़ता बल्कि खुद को भी सजाना पड़ता है, "पार्टी में न केवल घर और मेज ही सजाना पड़ता, बल्कि खुद को भी । "प्रिया, वह फिरोज़ी फ्रेंच शिफॉन पहनना जो मैं अबकी पेरिस से लाया था; और सुनो, साथ में वह फिरोजेवाला सेट भी । लोग देखें तो हमारी श्रीमती जी का रौब!"[2]

समाज में स्त्री का रूपवती होना ही बेहद ज़रूरी है । वह स्त्री के अन्य गुणों को अनदेखा कर देता है । इसी का खुलासा स्त्री पक्ष उपन्यास में हुआ है । स्त्री पक्ष में वृंदा सोचती है - "तब क्या औरत के संदर्भ में सारे निर्णय केवल उसकी देह से संबंधित है, देह पवित्र है या देह उच्छिष्ठ..... देह से बाहर औरत की कोई हस्ती नहीं।"[3] बदसूरत स्त्री तो

---

1 प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 109
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 140
3. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 22

घर केलिए बहुत बड़ी बोझ समझी जाती है क्योंकि विवाह के मार्केट में सुन्दर एवं गोरी स्त्री की माँग की जाती है । छिन्नमस्ता में प्रिया एक साँवली लड़की है । माँ की नज़रों में एक बदसूरत लड़की । उन्हें हमेशा प्रिया की शादी की चिंता सताती रहती है । प्रिया को देखने एक बार लड़केवाले आये थे । लेकिन वह रिजक्ट हो चुकी थी । लड़केवालों की तरफ से रिजक्ट होते ही प्रिया अपनी माँ की नज़रों में गिर चुकी थी । अब माँ को उसकी उभरती छातियों से चिढ़ होती थी । प्रिया को विवश होकर माँ की दी हुई टाइट जैकट पहननी पड़ी जिसमें उसका दम घुटता था ।

'पीली आँधी' में शादी के मार्केट में खड़ी संगीता के माता-पिता चिंतित थे कि इस बार मामला पट जाना चाहिए । पहली बार संगीता रिजक्ट हो चुकी थी । इसलिए संगीता के माता-पिता उसे स्मार्ट बनाने के इरादे से उसे सोमा के हवाले कर देते हैं । इस बार संगीता की शादी पक्की हो जाती है । क्योंकि संगीता लड़केवालों को भा गयी है ।

समाज द्वारा पुरुष को यही पट्टी पढाई जाती है कि स्त्री भोग्या है और पुरुष भोगता। पुरुष स्त्री को आज़माने से नहीं चूकता । कहीं भी हो उसके देह को दबोचने केलिए वह आतुर है । 'छिन्नमस्ता' में प्रिया को प्रेम के जाल में फँसाकर प्रो. मुखर्जी द्वारा उसके देह का इस्तेमाल किया जाता है और इस्तेमाल कर उसे फेंक देता है - "मूर्ख लड़की ! मैंने कब कहा था कि मैं तुमसे शादी करूँगा ? हम दोनों ने मौज की । बस, बात खतम । और सुनो, फिर कभी यहाँ मत आना । मैं अब शादीशुदा इन्सान हूँ ।"[1] उनकी इस हरकत से प्रिया के दिल को चोट पहुँचती है । इसी तरह प्रिया का पति हर छः महीने एक से एक हसीन सेक्रेटरी बदलता रहता है और अपनी भूख मिटाता है । एक बार तो एक सेक्रेटरी नरेन्द्र की भूख को प्रेम समझ बैठी थी और नरेन्द्र ने भी प्रेम के जाल में फँसाकर उसके देह का इस्तेमाल ही

---

1 प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ 122

किया था । इस तरह स्त्री को कदम कदम पर यह एहसास दिलाया जाता है कि वह मात्र देह है । पुरुष उसकी देह को दबोचने की ताक में लगा रहता है ।

समाज में विवाह एक ऐसी संस्था है जो स्त्री शोषण पर टिका हुआ है । विवाह संस्था के ज़रिए पुरुष आसानी से स्त्री पर अपना आधिपत्य जमा लेता है । 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में वृंदा शादी नहीं करना चाहती क्योंकि उसके अनुसार- "शादी का अर्थ ही था पुरुष की बनाई दुनिया स्वीकारना उस दुनिया की शर्तों के अनुसार जीना....।"[1] विवाह संस्था स्त्री-पुरुष के प्रेम पर नहीं बल्कि पुरुष के वर्चस्व पर टिका हुआ है । विवाह के ज़रिए ही स्त्री सामाजिक सम्मान की अधिकारिणी मानी जाती है । इस संस्था के बाहर के संबंध को समाज अस्वीकार कर देता है और ऐसी स्त्रियों को सबक सिखलाता है, उन्हें सामाजिक लांछन का शिकार होना पड़ता है । 'अपने अपने चेहरे' में रमा एक शादीशुदा मर्द मिस्टर गोयनका के साथ संबंध जोड़ती है जो कि तीन बच्चों के पिता है । यही वजह है कि व्यावसायिक जगत में कामयाब होने पर भी रमा समाज द्वारा ठुकराई जाती है । रमा को दूसरी स्त्री होने के नाते कदम-कदम पर अपमानित होना पड़ता है । विवाह संस्था को चुनौती देनेवाली रमा को सार्वजनिक जगहों में शर्मिन्दा होना पड़ता है और मिसेज गोयनका द्वारा रमा को कदम-कदम पर उसकी औकात समझा दी जाती है । मिसेज गोयनका की बेटी रीतू की ज़िन्दगी में भी ऐसी ही घटना घटती है । कुणाल की ज़िन्दगी में नीना का आगमन होता है । इस संबंध के सिलसिले में मिसेज गोयनका रमा से कहती है "लो, वह भी कोई ज़िन्दगी हुई? अरे कुणाल उसको नहीं मानता है तब भी मैं तो कहती हूँ एक चुटकी सिन्दूर में बहुत ताकत है । घरवाले तो रीतू का करेंगे ही ।"[2] उन्हें पूरा भरोसा है कि ऐसे रिश्ते को समाज कभी नहीं स्वीकारेगा। मिसेज गोयनका रीतू को हंगामा मचाने की बजाय चुपचाप सहने की सलाह देती है ।

---

1. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष - पृ. 21
2. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 87

'छिन्नमस्ता' की तिलोत्तमा भी ऐसी ही एक स्त्री थी जिसने प्रिया के ससुर अग्रवाल के जीवन में आने की जुर्रत की थी । तिलोत्तमा के पिता कलकत्ता हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध बैरिस्टर थे । उनके यहाँ मुवक्किल थे मिस्टर अग्रवाल । उनकी उम्र तब चालीस साल की थी और तिलोत्तमा इक्कीस साल की । अग्रवाल ने अपनी पत्नी के रहते तिलोत्तमा से दूसरी शादी की थी । खबर सुनते ही तिलोत्तमा के पिता ने उन्हें घर से निकाल दिया था । इस रिश्ते में एक बेटी भी हुई नीना, जो खुद को नाजायज संतान मानती है - "भाभी मुझे पता है कि मैं एक नाजायज संतान हूँ । मम्मी कितना भी मांग में सिन्दूर लगाएँ, उस लाल रंग में थोड़ी कालिख घुली हुई है ? इसीलिए तो मम्मी का सिन्दूर चमकता नहीं ।"[1] तिलोत्तमा को तमाम कानूनी एवं सामाजिक सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा । अग्रवाल की मौत पर भी तिलोत्तमा को उनके दर्शन तक नहीं करने दिये । समाज की नज़रों में यह बीस साल का संबंध कोई मायने नहीं रखता था ।

विवाह द्वारा स्त्री से पूर्ण समर्पण की मांग की जाती है और पुरुष को अपनी मनमानी करने की छूट मिलती है । दूसरी स्त्री की परंपरा की शुरुआत पुरुष ने ही की है । इस सिलसिले में अपने अपने चेहरे की रमा का सोचना है, "दूसरी औरत की परंपरा... वह भी तो हज़ारों साल की है ....जैसे ही पुरुष ने विवाह किया होगा वही पहली रात के बाद हर रात उसे एक ही लगी होगी । गृहस्थी का जुआ खींचने में उसके कंधों में छाले पड़ गए होंगे

और किसी अकेली शाम बैठे-बैठे उसने सोचा होगा, क्या सब कुछ ऐसे ही चलेगा ? एकरस..... बार-बार, उन्हीं-उन्हीं घटनाओं की पुनरावृत्ति ।"[2] पुरुषों द्वारा निर्मित है समाज के हाशिये पर रहनेवाला यह तबका । घर में कुलवधु और घर की स्वच्छता केलिए नगरवधू का निर्माण किया है ।

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 144-145
2. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 74

पुरुष दूसरी स्त्री का शोषण ही करता आया है । अपने अपने चेहरे की रमा ने मिस्टर गोयनका के परिवार केलिए अपना सब कुछ दाव पर लगा दिया । इसके बावजूद भी वह उनके परिवार का हिस्सा नहीं बन पाई । रमा से प्यार करने वाले मिस्टर गोयनका समाज में रमा को देखकर भी अनजान बने रहते । मिस्टर गोयनका की बेटी रीतू सोचती है - "पार्टी में रमा आंटी प्रायः नहीं हुआ करती । यदि कभी रहती तो उनका परिचय पापा के गले में अटक जाता । एकबार पापा ने रमा आंटी का परिचय सिस्टर-इन-लॉ कह कर दे दिया था।"[1] मिस्टर गोयनका भी जानते थे कि उन्होंने रमा के साथ बेवफाई की है । उसकी ज़िन्दगी को तबाह किया है ।

'आओ पेपे, घर चलें' में कैथी अपनी आण्टी एडिना का जिक्र छेडती है । आण्टी बोस्टन के किसी स्कूल की प्रिंसिपल है । वह भी एक विवाहित व्यक्ति से प्रेम करती है और उसकी इंगेजमेंट रिंग पहने हुए है । मगर वह पहली पत्नी के साथ रहता है । तलाक की बात यूं ही बीच- बीच में उठती रहती है ।

'छिन्नमस्ता' में मिस्टर अग्रवाल ने अपनी पत्नी के रहते तिलोत्तमा से शादी की । वह हर महीने तिलोत्तमा और बेटी नीना को पैसे देते है । लेकिन वे भी अपने इस रिश्ते को सरेआम स्वीकार नहीं कर पाए । तिलोत्तमा और नीना को समाज की अवमानना झेलनी पड़ती है । नीना अपने पापा से नफरत करती है - "भाभी ! पापा का यों महीने का महीने रुपए देना ? मुझे नफरत होती है उनसे । सच कहती हूँ भाभी, ऐसे बुजदिल इंसान से मुझे सख्त नफरत है।"[2] उसने अपने दोस्तों से कह रखा है कि जब वह छोटी थी तब उसके पिता की मौत हो गई ।

'एड्स' में श्वार्ज प्रभा का दोस्त है । उसकी ज़िन्दगी में एक के बाद एक दूसरी औरतों की कतार लगी रहती है । श्वार्ज की पत्नी कुक्कू अपने पति के रग-रग से वाकिफ है । वह

---

1 प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 174
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ 145

प्रभा से कहती है - "प्रभा ! मुझे इरीना से जलन नहीं । वह बच्ची है । श्वार्ज की ज़िन्दगी में औरतों का सिलसिला रहा है और रहेगा । मेरे पहले भी औरत थी और बाद में भी रही है । सिलसिले की एक कड़ी मैं हूँ तो आखिरी हिस्से में इरीना झूल रही है ।"[1] पुरुष इस तरह दूसरी औरत की भावनाओं के साथ-साथ अपनी पत्नी की भावनाओं से भी खिलवाड करता रहा है ।

घरेलू हिंसा वैवाहिक जीवन का एक सहज हिस्सा होता है । प्रताड़ना को स्त्री अपना भाग्य मानती है । घरेलू हिंसा संसार की सबसे अमानवीय, नृशंस और व्यापक हिंसा है । हिंसा का पहला पाठ पुरुष घर से ही सीखता है । स्त्री भी इसे जायज़ मानती है । लेकिन स्त्री के बदलते नज़रिए ने पुरुष अहं को चोट पहुँचानी शुरू कर दी है । आज की स्त्री पुरुष की मार-पीट सहकर जीना नहीं चाहती, वह पति से तलाक लेने केलिए तैयार हो जाती है। लेकिन ऐसी भी स्त्रियाँ मिलेंगी जो पति की मार-पीट सहकर भी उन्हें छोडने के पक्ष में नहीं है । 'अपने अपने चेहरे' में रीतू मिस्टर गोयनका की इकलौती बेटी है । रीतू की शादी कुणाल से होती है । वे दिल्ली में रहते हैं । कुणाल की ज़िन्दगी में दूसरी औरत नीना का प्रवेश होता है । यह बात रीतू भी जानती है । रीतू चुप बैठने के बजाय इसका विरोध करती है वह अपनी मां की तरह इस सौत को झेलने केलिए तैयार नहीं होती और बात अब हाथा-पाई तक बढ़ जाती है । कुणाल उस पर हाथ उठाता है । रीतू से बर्दाश्त नहीं होता और वह अपने घर लौट आती है । अपनी बेटी के इस करतूत पर मिसेज गोयनका शर्मिन्दा है । उनके अनुसार पति के हाथ उठाने पर पत्नी को चुपचाप सह लेना चाहिए । ऐसी छोटी-छोटी बातों पर स्त्री को अपना घर नहीं छोड़ना चाहिए । यही सलाह वह अपनी बेटी को देती है । वह अपने पति मिस्टर गोयनका से कहती है - "हाँ और क्या, ठीक कह रही हूँ । पति जरा-सा हाथ उठा दे तो औरत घर छोड़ दे?"[2] मिसेज गोयनका जैसी स्त्रियाँ इसे पति का अधिकार मानती

---

1 प्रभा खेतान एड्स पृ. 77
2. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 99

है। यह मानसिक अनुकूलन का नतीजा है कि स्त्रियाँ पति द्वारा पीटे जाने को गलत नहीं मानती।

स्त्री पक्ष उपन्यास में वृंदा को अपने पिता के मेज़ से एक पत्रिका मिलती है जिसमें पुरुषों के हाथों में चाबुक का नज़ारा होता है । पीली आंधी में सोमा गौतम की पत्नी है । गौतम नंपुसक है, वह उसे बच्चा देने के काबिल नहीं एक बच्चे की चाहत में वह सुजीत से अपना नाता जोडती है । और गौतम सोमा पर हाथ उठाता है । जब बात हाथा-पाई तक बढ़ जाती है तब सोमा घर छोड़कर चली जाती है । ताई माँ, निमली बाई के लाख मनाने पर भी नहीं रुकती । बात-बात पर पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर हाथ उठाना भारत में एक मामूली सी घटना मानी जाती है ।

घरेलू हिंसा की शिकार स्त्री को केवल भारत में ही नहीं होना पड़ता बल्कि विदेशों में भी उसकी यही हालत है । प्रभा खेतान का उपन्यास अग्निसंभवा इस सच्चाई का खुलासा करता है । उपन्यास के केन्द्र में एक किसान की बेटी आइवी है जिसे उसका पति पीटता है। आइवी प्रभा से कहती है "ये साले चीनी पति होते ही हरामी हैं, एक वह मेरा पति था... दिन रात लाल किताब लिये विश्व क्रांति की बातें करता रहता । कॉमरेड, पार्टी का वरिष्ठ सदस्य । कम्युनिस्टी किचन में पेट भर ही जाता था । और आये दिन शराब के नशे में मुझे पीटता था।"[1] व्यवसाय के सिलसिले में हागकांग गई प्रभा जिस होटल में ठहरी हुई है उसके बगल वाले कमरे में पति द्वारा पत्नी को आधी रात में पीटने की घटना घटित होती है । इस वजह से प्रभा रात भर सो नहीं पाती- "बगल के कमरे से किसी औरत की ज़ोर से रोने की आवाज़ आयी । मैं घबड़ाकर उठ बैठी । सारे ख्याल तितर-बितर हो गये । फिर वही रोने-पीटने की आवाज, लॉबी में भागते हुए कदमों की आहट, मैं घबड़ाकर उठ बैठी । क्या करूँ किसी का व्यक्तिगत मामला है बीच में बोलना असभ्यता होगी।"[2]

---

1. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 55
2. वही पृ. 54

समाज में बलात्कार स्त्री शोषण का सबसे घिनौना रूप है । बलात्कार की शिकार स्त्री को ही सामाजिक अस्वीकृति एवं सामाजिक लांछना झेलनी पड़ती है । इसी वजह से ऐसे मामलों को हमेशा केलिए दफना दिया जाता है । 'छिन्नमस्ता' में प्रिया दस साल की उम्र में अपने बडे भाई के हवस की शिकार होती है । दाई माँ द्वारा उसे चुप रहने की हिदायत दी जाती है । आगे भी यह सिलसिला ज़ारी रहता है । जब प्रिया पाँच साल की थी तब एक नौकर द्वारा ऐसी ही एक घटना घटित होती है, लेकिन दाई माँ उसे बचा लेती है । प्रिया सोचती है -"पर क्या समाज स्त्री की रक्षा करता है ? क्या पुरुष की कामुक हवस का शिकार होने से मासूम लड़कियाँ बच पाती है? कब और कहाँ नहीं मुझ पर आक्रमण हुआ? वह कैसा बचपन था ? क्या मेरा बचपन.... न केवल भाई ने बल्कि एक दिन एक नौकर ने भी अपनी गोद में बिठाया था । बहुत छोटी थी, पाँच साल की । तब तो बाबूजी भी जिंदा थे और दाई माँ ने उसे देख लिया था । बाघिन सी झपटती हुई दाई माँ और उनकी गालियों की बौछार....।"[1]

'स्त्री पक्ष' उपन्यास में भी लेखिका ने बलात्कार की घटनाओं का जिक्र छेड़ा है । उपन्यास में वृंदा को आए दिन अखबारों के ज़रिए स्त्री के साथ होनेवाले बलात्कार की घटनाओं का पता चलता है । पुरुष सत्तर साल की स्त्रियों और पगली स्त्रियों तक को नहीं बख्शाता । उन्हें भी उसके हवस का शिकार होना पड़ता है, "लेकिन एक दिन वृंदा ने अखबार में एक सत्तर वर्षीय वृद्धा स्त्री के साथ बलात्कार की घटना पढ़ी । और एक दिन अखबारों में पुलिस द्वारा फुटपाथ पर पड़ी हुई उस पगली लड़की के साथ बलात्कार की चर्चा छपी थी।"[2] इन घटनाओं के ज़रिए यह जताने का प्रयास किया गया है कि समाज में स्त्री कहीं भी सुरक्षित नहीं । समाज द्वारा स्त्री की सुरक्षा का आश्वासन वास्तव में पितृसत्तात्मक समाज का मिथक है ।

---

1 प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 119

2. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 21

स्त्री की शुचिता, पवित्रता, सतीत्व, कौमार्य का आतंक बलात्कार को और अधिक मज़बूत करता है । समाज में शुचिता की यह ग्रंथी स्त्री को मनुष्य की श्रेणी से वंचित कर वस्तु में बदल देती है । वह पुरुष की संपत्ति में ही गिनी जाती है । किसी भी पुरुष से बदला लेने का आसान तरीका पुरुष की इस संपत्ति या वस्तु को बलात्कार के ज़रिए रौंद डालना है । ऐसा ही एक असफल प्रयास 'आओ पेपे, घल चलें' उपन्यास में किया जाता है । जब प्रभा कैथी के साथ हार्लेम देखने जाती है तब वहाँ के नीग्रो जो कि बरसों से रंगभेद के शिकार रहे हैं, अपनी ज़िल्लत भरी ज़िन्दगी केलिए ज़िम्मेदार गोरी चमड़ी के लोगों से बदला लेने केलिए कैथी पर टूट पड़ते हैं - "एक ने कैथी को कंधे पर लटका लिया और दो कदम आगे बढ़ा । मैं जोरों से रो पड़ी, "नो-नो, यू काण्ट, प्लीज.....।' लेकिन वह वहशी भीड़, हिंसा का उन्माद । "[1] लेकिन एक अन्य नीग्रो द्वारा कैथी बचा ली जाती है । इस सदमे को वह बर्दाश्त नहीं कर पाती और उसे डिलिरियम हो जाता है ।

सामाजिक शोषण के विभिन्न पलुओं को उद्‌घाटित कर प्रभा खेतान इस सच्चाई का पर्दाफाश करती हैं कि स्त्री हर कहीं रौंदी गई, कुचली गई है । स्त्री को व्यक्तित्व विकास के अवसरों से वंचित कर समाज उसे अपाहिज बनाये रखने में ही अपनी इतिश्री मानता रहा है । समाज ने सबसे अधिक प्रहार स्त्री की मानवीय पहचान को तहस-नहस करने में किया है । स्त्री को नेस्तनाबूद करने के नए-नए तरीके ईज़ाद किये जा रहे हैं । स्त्री के प्रति समाज के रवैये को पर्त-दर-पर्त उघाडकर समाज के खोखलेपन की ओर लेखिका इशारा करती हैं।

धार्मिक शोषण

मानवीय मूल्यों की स्थापना धर्म का मुख्य ध्येय है । धर्म का उद्देश्य समाज को

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे घर चलें पृ. 139-140

नियंत्रित करना है । धर्म राजतंत्र द्वारा पोषित ब्राह्मणवादी व्यवस्था है जो वर्ग-हित की वकालत करता है । इसमें मनुष्य के साथ समानता के आधार पर व्यवहार नहीं किया जाता बल्कि ऐसा प्रावधान करता है जिसके परिणामस्वरूप दलित और स्त्री मनुष्य होने से वंचित हो जाते हैं। धर्म का समूचा चिंतन और परिशीलन पुरुष को केन्द्र में रखकर हुआ है । तसलीमा नसरीन के शब्दों में - "इस धरती पर पुरुष ने अपनी स्वार्थ सिद्धि केलिए कुछ कथन तैयार किये हैं । उनमें से कुछ को 'धर्म' और कुछ को 'नियम' का रूप दे दिया गया है ।"[1] मनुस्मृति ऐसा अकेला ग्रन्थ है जिसने भारतीय मेधा को न केवल सबसे अधिक आकर्षित किया बल्कि स्त्री केलिए दण्ड विधान के रूप में ऐसे-ऐसे प्रावधान किये गये कि स्त्री का जीवन नारकीय हो गया ।

धर्मशास्त्रों द्वारा सारी वर्जनाएँ स्त्रियों पर ही थोप दी गईं और पुरुषों को स्वच्छंद छोड़ दिया गया । वे स्त्रियों के साथ निर्द्वन्द्व होकर मनमानी करते रहे । स्त्रियाँ भोग्या बनने और वर्जनाओं के उल्लंघन के नाम पर लांछित होने को अभिशप्त होती रही । इस पर ईश्वर की सहमति का ठप्पा भी लगवा लिया गया । धर्म की आड में दक्षिण भारत में देवदासी प्रथा को बढावा मिला । पुरुष धर्म, ईश्वर, देवता का एकमात्र घोषित प्रतिनिधि हुआ जो इन्हीं के माध्यम से स्त्री को प्रताड़ित करता है और इनका विधि-विधान से पूजा करने केलिए स्त्रियों का मानसिक अनुकूलन भी करता है । धर्म का इस्तेमाल शोषण के हथियार के रूप में होता है ।

समाज में व्रत का निर्माण पुरुषों ने ही किया है । व्रतों का उद्देश्य स्त्री को पति, पुत्र और परिवार में निमग्न रखना है ताकि स्त्री कभी अनुभव न कर पाये कि वह भी मनुष्य है। पुरुष की सत्ता को बनाए रखने की कामना स्त्री को ही करनी पडती है । 'स्त्री पक्ष' उपन्यास

---

1. तसलीमा नसरीन औरत के हक में पृ. 46

में वृंदा ने अपनी माँ और चाची को अपने पति की लंबी आयु केलिए सती की पूजा करते देखा था "वृंदा की माँ सती की पूजा करती, वृंदा की चाची सती से अपने सुहाग की भीख मांगती और वृंदा पूछना चाहती कि सती होना किसे कहते हैं ?"[1] दोनों पति के प्रति समर्पित थी । 'पीली आंधी' में पढ़ी लिखी प्रगतिशील विचारों वाली सोमा सोचती है कि उसके ससुराल में तो व्रत का चक्कर लगा रहता है । एक के बाद एक व्रत, उपवास करने पडते हैं "हाँ! यहाँ ससुराल में रोज एक न एक देवता की पूजा, व्रत और उपवास । माघ के महीने में करवाचौथ का व्रत था । पहले दिन रात को ताईजी ने बुलाकर कहा कल सुबह से ही कुछ नहीं खाना है । पानी भी नहीं पीना है । शाम को सूरज ढलने के बाद चौथ माता की कहानी सुनकर पानी पीने को मिलेगा और रात को चांद उगने के बाद अर्घ्य देकर भोजन करना होगा। यह व्रत अमर सुहाग रहे, इसीलिए किया जाता है।"[2] रस्मों-रिवाज को पूरी तरह से स्त्री ही ढोती है । पीली आंधी में सोमा अपनी ताई के बारे में सोचती है, "ताईजी तो हमेशा पितृपक्ष के पन्द्रह दिनों में सारे पूर्वजों को याद करतीं, खासकर माँ बाबूजी और ताऊजी को। श्राद्ध के दिन तेरह ब्राह्मणों का भोज प्रत्येक को धोती, गमछा । ब्राह्मणों को भाई साहब लोग खुद भोजन परोसते । यानी गो-ग्रास से लेकर तिलक-दक्षिणा तक सब बेटे-बहुओं को भूखे पेट काम में लगे रहना पडता । तेरे ताऊजी को खीर-जलेनी बहुत पसंद थी, वही बनेगा । तेरी सास को पंचमेले की सब्जी और पातड़ी का दही बड़ा पसंद था, बड़ोरी बीणनी, महाराजजी से बोलना कि रसोई स्वाद उतारेंगे । कहीं गलती नहीं हो जाए ।"[3]

स्त्रियों के साथ बरते जाने वाले भेदभाव, सामाजिक धारणा एवं कुरीति के पीछे शास्त्र एवं पुराणों के प्रसंग जुडे हुए होते हैं जो संबंधित कुरीति को सामाजिक मान्यता प्रदान करने के साथ-साथ प्रतिष्ठा भी दिलाते हैं । मनु संहिता के अनुसार रजस्वला होने से पूर्व बच्ची

---

1. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 21
2. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 186
3. वही पृ. 242

का विवाह हो जाना चाहिए और यह धारणा समाज में बलवती है । छिन्नमस्ता में प्रिया को साढे दस की उम्र में ही मासिक धर्म हो जाता है । तब प्रिया की माँ द्वारा प्रिया को ही इसके लिए ज़िम्मेदार ठहराया जाता है और माँ की डाँट भी खानी पड़ती है । प्रिया के पूछने पर दाई माँ बताती है कि, "ई तो कहो कि शहर है, हमार गाँव में तो बियाह के पहिले कवनों लड़की का ई महीना शुरु हो जाय तो माँ-बाप का सर पर पाप का बोझ बढ़त है।"[1] यह सुनकर प्रिया का बाल मन चीत्कार कर उठता है ।

स्वास्थ्य और स्वच्छता की दृष्टि से जोडी गई पवित्रता की धारणा रजोधर्म और प्रसूतिकाल में छुआछूत से जुड़कर रह गई । इस अवधि में स्त्री का किसी मंगल कार्य या धर्मानुष्ठान में भाग लेना मना है । छिन्नमस्ता में प्रिया को साढे दस की उम्र में ही पीरियड्स हो जाता है । दूसरे दिन उसके पिता की वार्षिकी है, और उसे पीछेवाले बरामदे में बंद रहना पड़ता है ।

धर्मान्धता, रूढ़िवाद और अन्धविश्वास कूप मंडूप मान्यताओं को जन्म देते हैं । उनका लक्ष्य महिलाओं को मूर्ख बनाकर उनका शोषण करना है । ऐसे अन्धविश्वासों की भरमार भी देखी जा सकती है कि स्त्री के रजोधर्म के दौरान यह माना जाता है कि उनमें बुराई पैदा करनेवाली शक्तियाँ हैं । इस वजह से उन्हें अछूत मानकर परे खड़ा कर दिया जाता है। स्त्री पक्ष उपन्यास में जब वृंदा को मासिक धर्म शुरू हो जाता है तब उसकी माँ उसे अचार-पापड को न छूने की हिदायत देती है - "लेकिन इस चिकनी मांसल देह से हर महीने यह खून क्यों टपकता है ? किसलिए ? यही प्रकृति का नियम है । माँ ने कहा था । माँ की सख्त हिदायत थी कि इन दिनों जब शरीर चूने लगे तब अचार-पापड़ नहीं छूना चाहिए क्योंकि

---

1 प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ 50

औरत के शरीर से एक ऐसी गैस निकलती है जिसके कारण अचार-पापड़ में फफूंद लग जाता है।"[1] ऐसा ही एक प्रसंग पीली आंधी उपन्यास में देखने को मिलता है । रूँगटा परिवार की औरतें अचार-पापड़ बनाते वक्त जिन्हें पीरियड्स होता है उन्हें इस कार्य से दूर रखा जाता है । सोमा ने ताई मां द्वारा बहुओं को ऐसी हिदायतें देते हुए सुना है । ऐसे में घर की कोई भी औरत अचार-पापड़ बनाने के कार्य में शामिल नहीं होती -"पापड की साजी मंगवाई जाती। जीहरा चुनकर धोकर सुखाया जाता । फिर उसको उबालकर उसका पानी छानते । जोत डालते समय, पापड़ उसनते समय यह ख्याल रखा जाता कि किसी को "पीरियड" है तो वह बिल्कुल दूर रहे । पापड़ उसनते समय यदि उस औरत की छाया भी पड़ गई तो बाद में पापड़ लाल हो जाएंगे । उनमें बूफन लग जाएगी ।"[2]

अशिक्षित स्त्रियाँ ही नहीं बल्कि शिक्षित स्त्रियाँ भी अन्धविश्वासों के चंगुल में फँसी हुई हैं । जादू-टोने में विश्वास रखती है । स्त्री पक्ष उपन्यास में वृंदा पढी लिखी है । उसके पति के जीवन में सुनीता (दूसरी औरत) का प्रवेश होता है । वृंदा इस सच्चाई से वाकिफ है और अपने पति को अपने बस में रखने केलिए वह देविका के साथ एक तांत्रिक बाबाजी के पास जाती है । वहाँ वह देखती है कि उसके अलावा बहुत सी अन्य स्त्रियाँ आई हुई हैं। अपनी किसी न किसी समस्या के निदान केलिए । 'अपने अपने चेहरे' में रीतू पढ़ी-लिखी है वृंदा की तरह । रीतू और कुणाल के बीच दूसरी औरत नीना के कारण अनबन चल रहा है । रीतू अपने घर लौट आती है । उसके माता-पिता उसकी दूसरी शादी करवाना चाहते हैं । तब वह अपनी माँ से कहती है कि उसका वक्त खराब चल रहा है, "रीतू कह रही थी, मम्मी मुझे कुछ समय चाहिए । अभी मेरे साढे साती की दशा है इसलिए मेरा समय ठीक नहीं चल रहा है । कुछ दिन बाद सब कुछ ठीक हो जाएगा ।"[3]

---

1 प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ 22

2. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 206

3. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 183

शहरों से अधिक गाँव में रहनेवाली स्त्रियाँ भूत-प्रेत जादू-टोना में विश्वास रखते हैं । 'पीली आंधी' में माधो की जिस लड़की से शादी होती है उसे मिरगी का दौरा पड़ता है । लड़कीवाले इस सच्चाई को छिपाए रखते हैं । माधो का जब फेरा होता है तो दुल्हन मिरगी के दौरे से नीचे गिर पड़ती है । तब लड़कीवालों की ओर से ऐसा ढोंग रचा जाता है कि एक स्त्री झूमने लगती है और कहती है उसपर माधो की माँ का भूत सवार हुआ है और माधो की चाची से उसकी माँग को पूरा करने केलिए कहती है । थोड़ी ही देर में माधो की दुल्हन उठ बैठ जाती है । दुल्हन को डाक्टर को दिखाने की बजाय बाबाजी द्वारा झाड़-फूंक करने में माधो की चाची विश्वास करती है - "चाची आगे कहे जा रही थी "ओझाजी कह रहे थे कि, यहाँ से कोई दस मील दूर कोई बाबाजी रहते हैं उनके झाड़-फूंक से मिरगी का दौरा कम हो जाता है । ऐ बेटा सांवर तू अपने भाईजी से कहकर देख ।"[1]

छिन्नमस्ता में प्रिया की माँ भी इन अंधविश्वासों के चक्कर में फँसी हुई थी । प्रिया के बड़े भाई की शादी उनके पसंद की लड़की से न होने पर वे शादी के बाद हमेशा बीमार रहते है । इसकी ज़िम्मेदार प्रिया की मां ताई को ठहराती है । उनका कहना था कि ताई ने ज़रूर फेरे के वक्त जादू टोना किया है ।

गाँव में शादी जैसे किसी शुभ कार्य के लिए निकलते वक्त मुहूर्त पर अधिक ध्यान दिया जाता है । खासकर स्त्रियाँ इन बातों पर अधिक ध्यान देती हैं । पीली आंधी में पन्नालाल सुराणा की माँ ऐसी ही एक स्त्री है । जब उसका बेटा नौकरी की तलाश में घर से निकलता है तब पहले दिन सुनार दिखाई पड़ जाता है तब माँ उसे जाने नहीं देती । अगली बार जाने से पहले उसकी पत्नी के हाथों से खाना परोसते वक्त छलककर घी गिर जाता है । तब भी माँ पन्नालाल को जाने से रोक देती है - "जिस दिन जाना था, उस दिन माँ के सामने दोपहर

---

1. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ 90

को खाना परोसते हुए पत्नी के हाथ छलक कर घी लुढ़क गया "पणिया बेटा यह तो अपशकुन है आज तो तुम नहीं जा सकते!"[1] जबकि रात को पत्नी इस सच्चाई का खुलासा करती है कि घी उसने जानबूझकर लुढकाया था ।

स्त्री पर कड़े से कड़े प्रतिबन्ध लगाकर उसे दासता के साँकलों में बाँधने का कार्य धर्म द्वारा किया गया है । इसकी अभिव्यक्ति प्रभा खेतान के उपन्यासों में हुई है । स्त्री की मानवीय पहचान को रौंदने में धर्म ने भी अहम भूमिका निभाई है, प्रभा खेतान के उपन्यास इस सच्चाई का खुलासा करते हैं ।

आर्थिक शोषण

समाज में स्त्री का आर्थिक रूप से भी शोषण होता रहा है । पितृसत्ता की स्थापना के साथ ही प्रथम श्रम विभाजन स्त्री-पुरुष के श्रम का हुआ । स्त्री को सामाजिक कार्यश्रेत्र से पूर्णतः खदेडकर घर की चारदीवारी में कैद कर दिया गया और घर ही उसका एकमात्र कार्यक्षेत्र माना जाने लगा । इसके साथ ही स्त्री के श्रम को कमतर करके आंका जाने लगा। घरेलू श्रम को उत्पादन श्रम में शामिल नहीं किया जाता । इसलिए इसका कोई मूल्य भी नहीं होता । भौतिक आधार पर स्त्री की निम्नस्थिति का यह एक महत्वपूर्ण कारक है ।

स्त्री पक्ष उपन्यास में वृंदा का पति डाक्टर है । वह सुबह बिना किसी चिंता के घर से अस्पताल केलिए रवाना हो जाता है । उसके जाने के बाद वृंदा को घर के कामकाजों में खटना पड़ता है । वह अपनी गृहस्थी में पूरी तरह से रम चुकी थी । कभी कभार वह थकान से चूरचूर हो जाती, "और हज़ार पंखों वाली कल्पना को झटक गृहस्थी के बेइंतहा काम करने पड़ते । और उन कार्यों का कोई मूल्य नहीं था । केवल सुमित के काम का महत्व था।

---

1 प्रभा खेतान पीली आंधी पृ 108

उसके श्रम का मूल्य था... माँ और पत्नी होकर वृंदा कैसे अपनी मेहनत की कीमत मांगती।"[1] इसी सच्चाई का खुलासा वह अपने पति सुमित से भी करती है - "लेकिन मेरे काम का तुम्हारे जीवन में महत्व क्या था ? तुमने तो अपने कर्मों को ही महत्वपूर्ण माना, जरा विचार करके देखा होता, मेरे जैसी सस्ती नौकरानी तुम्हें कहाँ से मिलती ? "[2] पुरुष हमेशा अपने श्रम का मूल्य आंकता आया है । स्त्री श्रम का कोई मूल्य ही नहीं होता ।

आर्थिक विपन्नता के परिणामस्वरूप स्त्री समाज एवं परिवार में सम्मान से वंचित रहती है । स्त्री को अपनी छोटी-छोटी ज़रूरतों केलिए दूसरों के सामने हाथ पसारना पड़ता, उनका मोहताज होना पड़ता है । पैसे के साथ-साथ पैसे देनेवालों की जली कटी भी सुननी पड़ती है जिससे स्त्री के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचता है । 'अपने अपने चेहरे' में मिसेज गोयनका कमाती नहीं थी । वह पूरी तरह से अपने पति राजेन्द्र गोयनका पर निर्भर थी । पति से पैसे की माँग करती तो कुछ न कुछ सुनना पड़ता तब मिसेज गोयनका का जवाब होता -"क्या करूँ ? मैं ही तो हूँ जो दिवाला पिटवाऊँगी ? कमा नहीं सकती तभी न इतने बोल सुनती हूँ ? कमाती होती तो मुझे क्या आपके सामने हाथ पसारना पड़ता ?"[3]

'छिन्नमस्ता' उपन्यास में संपन्न परिवार में जन्मी एवं ब्याही गई प्रिया की स्थिति भी ऐसी ही थी । वह अपनी मर्जी से किताब तक नहीं खरीद सकती थी । वह किताबों पर पैसा फूँके यह बात उसके पति नरेन्द्र को नहीं पचती । नरेन्द्र से रुपये मांगने पर प्रिया के आत्मसम्मान को चोट पहुँचती । स्त्री पक्ष उपन्यास में वृंदा कमाती नहीं है और पति के कमाए पैसे पर भी उसका कोई हक नहीं था । उसकी पडोसन उषा महाजन को जब पैसे की ज़रूरत पड़ती है तब सुमित पैसे देने से मना कर देता है - "कुछ न कर पाने की यंत्रणा, एक यही सोच कि क्या मेरी इतनी भर औकात नहीं कि मैं दस-बीस हज़ार रुपए भी अपनी

---

1. प्रभा खेतान - स्त्री पक्ष पृ 23
2. वही पृ. 21
3. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 20-21

इच्छा से किसी को दे सकूँ । सुमित के रुपए में मैं हाथ नहीं लगा सकती.... आखिर मैं इतनी असमर्थ क्यों हूँ ? मैंने तो अलग से कभी अपना पैसा बचाकर रखा नहीं । माँ के घर से भी जब जो रुपया मिला वह सुमित को दिया ।"[1] कमाती स्त्री के पैसों पर पुरुष अपना हक जमा लेता है । स्त्री पक्ष में उषा महाजन लाइब्रेरियन है खुद कमाती है लेकिन उसका पति उसका पैसा हड़प लेता है । इस वजह से उसे और उसके बच्चों को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती है ।

स्त्री के श्रम को कमतर करके आंकने के साथ-साथ उसके श्रम केलिए उसे कम पगार दिये जाते हैं जिसकी वजह से कमाने पर भी उसे गरीबी का शिकार होना पड़ता है । 'स्त्री पक्ष' में नौकरानी को कम पगार देने की वजह से उसके काम छोडकर चले जाने का जिक्र किया गया है ।

'छिन्नमस्ता' में दाई माँ बच्चों की आया है । लेकिन ज़रूरत पड़ने पर वह रसोई का काम भी करती है । उसके घर से अगर कोई उसे मिलने आता तब दाई माँ उन्हें खाने या पीने केलिए कुछ देती तो उन्हें प्रिया की माँ से कुछ न कुछ सुनना पड़ता । प्रिया की माँ प्रिया से कहती है -"तू सबसे पहले अपनी दाई माँ को देश भेज । अपने खाए-पीए तो कोई मनाही नहीं, पर बरबादी ? आए दिन तो इसके मेहमान आते रहते हैं । सबकी लीडर हो रही है। अभी पतीला भरके नीबू का शर्बत नीचे ले जा रही थी । चीनी के पैसे नहीं लगते क्या ? पर टोकते ही बर्तन पटककर जो-जो नाच नाचो है कि क्या बताऊँ, 'हमार मनई आएगा तो हम पानी भी नहीं पिलाऊब का ?"[2] दाई माँ के काम छोड़कर जाते वक्त भी उसे कोई पैसे नहीं देता । प्रिया अपने गले की चैन उतारकर देती है लेकिन दाई माँ नहीं लेती।

---

1. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 23
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 65

'पीली आंधी' में पापड़ बनानेवाली स्त्रियों को कम पगार दिया जाता है । उन्हें काम छोड़कर जाता देख रूँगटा परिवार के मुनीमजी को मनाना पड़ता है ।

'आओ पेपे, घर चलें' में मरील प्रभा को क्लारा ब्राउन के ब्लाउज पर फ्रेंच नॉट के छोटे-छोटे फूल काढ़ने केलिए बीस डालर देती है जबकि आइलिन प्रभा को पेपे के गले के कॉलर पर कढाई केलिए चार सौ डालर देती है । यही कॉलर मरील को दिखाने पर उसका कहना था कि "ओ, ग्रेट ! फैंटास्टिक इसके तुमको क्लारा ब्राउन सौ डालर दे देगी ।"[1] इस तरह मरील प्रभा के श्रम का ही शोषण करती है ।

आर्थिक संबल के बिना स्त्री किस कदर रेंगती हुई ज़िन्दगी बिताने को विवश हो जाती है, सदियों से समाज स्त्री के आर्थिक अवदान को नकारता रहा है इसी का चित्रण प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में किया है । प्रभा खेतान स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता को तरजीह देती है।

न्याय व्यवस्था का शोषण

जनता को इंसाफ दिलाना कानून का फर्ज है । जनता अपने अधिकारों केलिए कानून का दरवाज़ा खटखटाती है । संविधान प्रदत्त स्त्री-पुरुष समानता के बावजूद स्त्री को इन्साफ नहीं मिलता । न्याय के पैरोकार स्त्री के साथ खिलवाड ही करते आये हैं । कानून में छिपे घोटाले का पर्दाफाश करते हुए अरविन्द जैन लिखते हैं - "मथुरा से लेकर भंवरी बाई और सुधा गोयल से लेकर रूपकँवर सती काण्ड तक की न्याय यात्रा में हज़ारों-हज़ार ऐसे मुकदमे, आँकड़े, तर्क-कुतर्क, जाल-जंजाल और सुलगते सवाल समाज के सामने आज भी मुँह बाए खड़े हैं । अन्याय, शोषण और हिंसा की शिकार स्त्रियों केलिए घर-परिवार की दहलीज से

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 49

अदालत के दरवाज़े के बीच बहुत लम्बी- चौड़ी गहरी खाई है, जिसे पार कर पाना बेहद दुःसाध्य काम है ।"[1] व्यवस्था एवं कानून का गठबंधन स्त्री को अपाहिज बनाये रखने में ही अपना इतिश्री मानता रहा है । पुलिस भी समाज में इन्साफ के बदले अन्याय ही करते आये हैं । इसी सच्चाई को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में उभारने का प्रयास किया है।

पीली आंधी में एक गरीब स्त्री की इज्जत लूट ली जाती है । उसका ससुर थाने में जाकर थानेदार के सामने इंसाफ की मांग करता है लेकिन पुलिस द्वारा उसकी बात अनसुनी कर दी जाती है - "पास के गाँव से खबर आई-कोई धाडैती मंदिर से लौटती हुई वाणिये की लुगाई को उठाकर ले गया । हाँ ऐ बीणनी मैं सांची बात कह रही हूँ.... वह धाडैती नहीं था, ठाकुर का बेटा था... गाँव देखता का देखता रह गया । बूढा ससुर, अंग्रेज़ हाकिम के सामने बहुत गिड़गिड़ाया, बहुत रोया... "मालिक मेरा बेटा परदेश में है... मैं बेटे को क्या मुंह दिखाऊंगा? लेकिन कौन सुने? गरीब की पुकार इन लोगों के पास कभी पहुँचती है क्या? न्याय है कहाँ?"[2] ऐसी ही एक घटना का जिक्र 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में किया गया है जहाँ पुलिस चुप्पी साधे रहते हैं । वृंदा सोचती है - "उस दिन अखबार में बलात्कार की वह घटना छपी थी किसी कॉलेज की छात्रा के साथ हास्टल के लड़कों ने बलात्कार किया था और इन लड़कों में शहर के नामी-गिरामी व्यक्तियों के बेटे शामिल थे । लड़की रोती रही थी और अपने बाप से कहती रही थी कि ऐसा एक बार नहीं कई बार घटा था, मगर अब तक भय से वह बोल नहीं पाई थी, और आज मज़बूर होकर उसको कहना पड़ा था कि उससे यह यंत्रणा और अत्याचार अब और नहीं सहा जाता । बदहवास बाप ने पुलिस स्टेशन में एफआईआर दर्ज करवाना चाहा था, मगर पुलिस ने मना कर दिया था । कारण पुलिस के

---

1. अरविंद जैन - उत्तराधिकार बनाम पुत्राधिकार पृ. 69
2. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 16

ऊपर मंत्रीजी का दबाव था ।"[1] उस लड़की को न्याय नहीं मिला क्योंकि मुजरिम ऊँची पकड़ रखने वाले थे । पुलिस ने भी इन्हीं का साथ दिया इस प्रकार कानून के रखवाले ही अन्याय का साथ दे रहे हैं ।

पुरुष के हित में खड़ा कानून वास्तव में उसकी सत्ता को मज़बूत करता है । स्त्री को अपने ही बच्चे के अधिकार से वंचित करता आया है । कानून की नज़र में पिता ही बच्चे का प्राकृतिक संरक्षक है । पिता के रहते कानून यह अधिकार माँ को नहीं देता । इसी का उद्‌घाटन 'अपने अपने चेहरे' और 'छिन्नमस्ता' उपन्यासों में हुआ है । अपने अपने चेहरे की रीतू अपने पति का घर छोड़ अपने घर लौट आती है । वह चाहती है कि उसका बेटा उसके साथ रहे । तब उसके पिता के दोस्त वकील अंकल रीतू को समझाते हुए कहते हैं-"कानून तुम्हें बच्चे की कस्टडी नहीं देगा।"[2] उसी प्रकार छिन्नमस्ता में पति के कहने का विरोध करती हुई जब प्रिया व्यवसाय केलिए लंदन जाने लगती है तब नरेन्द्र उसे धमकी देता है । घर वापस लौटकर न आने के लिए कहता है, "हाँ, यह घर मेरा है, और सुनो, संजू भी मेरा है। कानून की नज़र में बेटे की कस्टडी बाप को मिलती है।"[3] नरेन्द्र भी इसी सच्चाई को उद्‌घाटित करता है कि जन्म देने पर भी समाज में बेटे पर पहला हक पिता का ही होता है।

तमाम कानून पुरुष की सहूलियत केलिए ही बनाए गए हैं । 'अपने अपने चेहरे' में घर लौट आई रीतू अपना बच्चा पाना चाहती है । इस केलिए वह कानून का दरवाज़ा खटखटाना चाहती है । तब रमा रीतू को समझाते हुए कहती है "और सजा देनेवाला पुरुष? तुम्हारे हक में लड़नेवाला पुरुष? उस 'दूसरी औरत' के हक में भी कोई पुरुष ही लड़ेगा । तुम इन पुरुषों से पार पाओगी ? इसी पुरुष ने तलाक का भी कानून बनाया । वह जानता है कि एक पत्नीत्व पर आधारित विवाह की संस्था में टूटन आ ही सकती है; बल्कि

---

1. प्रभा खेतान - स्त्री पक्ष पृ. 22
2. प्रभा खेतान - अपने अपने चेहरे पृ. 177
3. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 13

वह संस्था तो आज हर जगह टूट रही है।"[1] स्त्री द्वारा न्याय केलिए गुहार लगाना व्यर्थ है। स्त्री-पुरुष समानता की बातें मात्र ढकोसला है । इसी सच्चाई को उघाडते हुए 'अपने अपने चेहरे' की रमा सोचती है- "न्याय है ही कहाँ ? स्त्री-पुरुष में समानता है कहाँ? एक सत्ता की कुर्सी पर बैठा हुआ अपने पूरे सामर्थ्य के साथ, दूसरा आँचल पसारे न्याय की भीख मांगती हुई, उसके चरणों में झुकी हुई।"[2]

इंसाफ के रखवाले ही भक्षक बनकर स्त्री के विपक्ष में खडे हैं । व्यवस्था को पुख्ता करने में कानून की भूमिका को दर्शाने का कार्य प्रभा खेतान अपने उपन्यासों के ज़रिए करती हैं ।

निष्कर्ष

हर कहीं पितृसत्ता स्त्री के प्रति निष्ठुर रहा है । पुरुष की चाहत से लबरेज़ समाज स्त्री को हाशिये पर रहने को विवश करता रहा है । स्त्री केलिए कहीं भी कोई पुख्ता ज़मीन नहीं है । परिवार, विवाह मात्र ढकोसले हैं जो स्त्री की गुलामी और पुरुष के प्रभुत्व को बरकरार रखते हैं । हिंसा, बलात्कार के आतंक से भयभीत स्त्री कहीं भी महफूस नहीं है। पितृसत्ता कानून, धर्म, परंपरा का सहारा लेकर स्त्री की अस्मिता को कुचलता रहा है । पुरुष को सत्ता, शक्ति के केन्द्र में प्रतिष्ठित कर स्त्री को दर-दर की ठोकरें खाने को विवश करता रहा है । बड़ी शिद्दत के साथ इन सच्चाईयों को उघाड़ते हुए समाज के मुखौटे को चिंदियों में बिखरने का कार्य करते हुए स्त्री जीवन के कसैले यथार्थ को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में चित्रित किया है ।

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ 125
2. वही पृ. 93

तीसरा अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री का प्रतिरोधी स्वर

स्त्री सशक्तिकरण का पहला आयाम है - आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान । स्त्रियों को जागरूक तथा साहसी बनाने में दो तत्व सबसे अधिक सार्थक भूमिका निभा सकते हैं - शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन । ये दो तत्व न केवल स्त्रियों में स्वाभिमान और आत्मविश्वास पैदा करते हैं बल्कि उन्हें हर दृष्टि से सशक्त और अधिकार संपन्न बनाने में भी सहायक होते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री शिक्षा के प्रसार ने भारतीय स्त्री के नज़रिये में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किया । सुभाष सेतिया के शब्दों में - "शिक्षा हमारे भौतिक और मानसिक उत्थान में भी सहायक होती है । महिलाओं केलिए शिक्षा का और भी अधिक महत्व है, क्यों कि अशिक्षित रहने के कारण वे अपने प्रति होने वाले भेद-भाव का प्रतिरोध नहीं कर सकतीं।"[1] आज अपने अधिकारों के प्रति सजग एवं सचेत शिक्षित स्त्री अपने अस्तित्व एवं अस्मिता पर नये सिरे से विचार करने लगी है । आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान से लैस आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री आज स्त्री की आँसू भरी नियति को स्वीकारने के बजाय अपनी ज़िन्दगी को अपने नज़रिए से जीने की पक्षधर है । वह जर्जरित रिश्तों को ढोने एवं घुट-घुटकर जीने के पक्ष में नहीं है । प्रभा खेतान आर्थिक स्वतन्त्रता को स्त्री जीवन की पहली शर्त मानती है । इसके ज़रिए स्त्री निर्णय लेना सीखती है और निर्णय उसके संघर्ष को मज़बूत करता है । प्रभा खेतान के उपन्यासों में स्त्री का प्रतिरोधी स्वर मुखर हो उठा है । उनके स्त्री पात्र नित नये चुनाव करते हुए समाज में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करने में कामयाब होती हैं ।

शिक्षा और स्त्री

स्त्री की ज़िन्दगी को सुधारने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है । पहले त्याग, प्रेम, ईमानदारी, समर्पण के जो शब्द उसके ज़ेहन में ठूँसकर भर दिये थे, आज शिक्षित होने के

---

1. सुभाष सेतिया स्त्री अस्मिता के प्रश्न पृ. 89

नाते वह भली भांति समझ गई है कि ये मात्र भ्रम है जिसके ज़रिए वह सदियों से ठगी गई, छली गई । आज वह इन भ्रमों के सहारे जीना नहीं चाहती । इसी का खुलासा 'छिन्नमस्ता' उपन्यास में हुआ है । पहले-पहल नरेन्द्र के कुछ कहने पर चुप रहने वाली प्रिया अब अपने पति का विद्रोह करने लगती है । वह इस सच्चाई से परिचित हो चुकी है त्याग, प्रेम, ईमानदारी जैसे शब्द मात्र ढकोसले है । पूरी तरह से अपने पति के प्रति समर्पित प्रिया को पति का प्यार नसीब न हो पाया । उसका पति नरेन्द्र बेईमान निकला । अपनी पत्नी को अपने काबू में न पाकर नरेन्द्र प्रिया पर चिल्लाता है । उसे त्याग, प्रेम, ईमानदारी, समर्पण का वास्ता देता है तब प्रिया कहती है -"कुछ नहीं । सच कहूँ नरेन्द्र, ये शब्द भ्रम हैं । औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चली आती आहुति की परंपरा को कायम रखे।"[1] प्रिया इस घेरे का अतिक्रमण कर अपनी एक अलग पहचान बनाती है । इसी प्रकार स्त्री पक्ष की वृंदा इन भ्रमों के सिलसिले में सोचती है कि इन भ्रमों को ज़िन्दा रखने केलिए वह आजीवन पिसती रही। वह पूर्ण रूप से अपने पति के प्रति समर्पित रही । समस्त त्याग, समर्पण के बावजूद उसके हाथ कुछ नहीं लगता । न पति उसका हो सका और न ही घर । जिस घर को बनाये रखने केलिए उसने अपने जीवन में सुख-सुविधाओं की आहुति दी वही घर टूटकर बिखर जाता है । उसका पति अपनी सेक्रेटरी सुनीता के साथ एक अलग घर बसा लेता है । इसका एहसास होते ही वह इन भ्रमों को छोड़ आगे की ज़िन्दगी अपने हिसाब से गुज़ारती है । अपने जीवन में एक अन्य पुरुष आर्जव का वरण करती है । अपनी एक बुटिक खोलती है ।

आज की शिक्षित स्त्री ऐसे रिश्तों को ढोने के पक्ष में नहीं है जहाँ स्नेह की गर्माहट नहीं बची है । ऐसे रिश्तों को एक ही झटके में तोड़कर वह अपनी राह खुद तय करती है।

---

1 प्रभा खेतान छिन्नमस्ता- पृ. 12

'अपने अपने चेहरे' में जहाँ रीतू की माँ मिसेज गोयनका अशिक्षित होने की वजह से अपने पति की ज़िन्दगी में आई दूसरी स्त्री को झेल लेती है वहीं शिक्षित रीतू ऐसे रिश्तों को सहने के पक्ष में नहीं है । उसके पति कुणाल की ज़िन्दगी में दूसरी स्त्री नीना का प्रवेश होता है। रीतू इसका विरोध भी करती है । जब कुणाल रीतू पर हाथ उठा देता है तब वह अपने घर लौट आती है । वह अपने पैरों पर खडे होने का हौसला रखती है और उसने अपने माता-पिता से ज़ाहिर कर दिया था -"आप लोग यदि सहारा न देना चाहें तो साफ-साफ लिख दीजिएगा । मैं नौकरी कर लूँगी, रूखी-सूखी खा लूँगी, पर कुणाल के साथ यों घुट-घुट कर ज़िन्दगी नहीं बिता सकती । मम्मी, मैं आपकी जैसी ज़िन्दगी नहीं चाहती।"[1] स्त्री पक्ष उपन्यास की वृंदा की भी यही विचार है । वृंदा अपने पति सुमित की ज़िन्दगी में आई उसकी सेक्रेटरी को सहने के पक्ष में नहीं है "लेकिन सब कुछ समझते हुए भी वृंदा, सुमित की शर्तो पर उसके साथ नहीं रह सकी, उसके इशारे पर नहीं नाच सकी । सुमित ने ही तलाक की बात उठाई थी, और वृंदा ने हाँ कहा था-यही तो कहा था - ठीक है जब साथ नहीं रहना चाहते तो छोड़ दो मुझे, चले जाओ यहाँ से...."[2]। पति को छोड वृंदा अपना घर बसाने में कामयाब होती है ।

वृंदा ने तो अपने हक की लडाई भी लड़ी थी । उसने सुमित से अपने इतने बरसों के श्रम का मूल्य भी मांगा था । उसका कहना था कि उसकी मदद के बिना सुमित इतने पैसे कैसे कमाता "वृंदा ने फिर कहा मुझे पैसे मिलने चाहिए, मैंने काम किया है, घर बनाने में मेहनत की है, सुमित ने रुपए मेरी सहायता से कमाए थे । इन रुपए पर उसका अधिकार भी होना चाहिए । भविष्य में घर चलाने और बच्चों की पढाई लिखाई पर जो खर्च होगा वह अलग से देना होगा । नहीं तो सुमित ले जाए अपने बच्चों को।"[3]

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 84
2. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 22
3. वही -पृ. 20

स्त्री पक्ष की वृंदा, अपने अपने चेहरे की रीतू की तरह पीली आंधी की सोमा के भी हौसले बुलन्द हैं । सोमा माँ बनना चाहती है । लेकिन उसका पति गौतम उसे बच्चे देने के काबिल नहीं। इसलिए वह भावनात्मक स्तर पर सुजीत से जुड़ती है । गौतम से बिना तलाक लिए सुजीत के बच्चे की माँ बनती है । गौतम जब इस सच्चाई से वाकिफ होता है तो उसपर हाथ उठाता है और तब सोमा का जवाब होता है - "गौतम, मैं जीना चाहती हूँ । मैं जीना चाहती हूँ । यहां इस घर में लोग सांस लेते हैं लेकिन जीते नहीं । वे जीना जानते नहीं । तुम्हारे ये हीरे ? इनकी चमक से मेरी आँख दुखती है । और ज़िन्दगी की राह पर हीरे बिछाकर तो नहीं चल सकते । पैरों के नीचे माटी होनी चाहिए । तुम और तुम्हारे जैसे और न जाने ऐसे कितने लोग, क्या समाज को, कुछ भी देकर जाते हैं ? तुम्हारे लिए मेरी ज़िन्दगी की कोई कीमत है?"[1] सोमा सुजीत का चुनाव करते हुए अपने जीवन को नए अर्थ देती है ।

'अपने अपने चेहरे' में प्रेमा और स्मिता मिस्टर गायनका की बहुएँ है । दोनों पढ़ी लिखी होने के कारण अपनी सास की तरह घुट-घुटकर जीना नहीं चाहती । वे दोनों ज़िन्दगी का मज़ा लूट रही हैं । दोनों सहने के बजाय, चुप्पी साधे रहने के बजाय सख्त शब्दों में अपना एतराज़ व्यक्त करती हैं । दोनों अपने ससुर की ज़िन्दगी में आई दूसरी स्त्री रमा को स्वीकारने के पक्ष में भी नहीं है ।

'छिन्नमस्ता' की प्रिया कॉलेज में कदम रखते ही ठान लेती है कि वह औरत की आँसू भरी नियति नहीं स्वीकारेगी । वह सोचती है "हाँ, कॉलेज के दिनों में ज्यों-ज्यों मैं बड़ी हो रही थी, मेरे लिए दुनिया खुलती जा रही थी । एक बात बड़ी गहन मन में बैठती जा रही थी । नहीं, मुझे अम्मा की तरह नहीं होना, कभी नहीं । भाभी की घुटन भरी ज़िन्दगी

---

1. प्रभा खेतान - पीली आंधी पृ. 255

की नियति मैं कदापि स्वीकार नहीं कर सकती । मैं अपने जीवन को आँसुओं में नहीं बहा सकती । क्या एक बूँद आँसू में ही स्त्री का सारा ब्रहमांड समा जाए ? क्यों ? किसलिए ? रोना और केवल रोना, आँसुओं का समंदर, आसुओं का दरिया और तैरते रहो तुम । अम्मा, जीजी, भाभीजी, ताई, चाचियाँ, यहाँ तक कि मेरी शिक्षिकाएँ भी, जिनकी ओर मैने बड़ी ललक से देखा, जिनको मैंने क्रान्तिचेता पाया था, वे भी तो उसी समंदर को अपने-अपने आँसुओं से भरती चली जा रही थीं ।"[1] माँ की भेदभाव भरी नीति से प्रिया का मन विद्रोह कर उठता है । अंगूर, अलफांसों, आम, संतरे का रस, संदेश घर के विशिष्ट जनों केलिए होता था । एक दिन दाई माँ छेने का संदेश उसकी थाली में परोस देती है । तब प्रिया की माँ दाई माँ को डाँटते हुए कहती है कि यह तो विजय केलिए था । उस दिन के बाद से दाल-रोटी और सब्जी के सिवाय प्रिया ने कुछ नहीं छुआ ।

परिवार में असुरक्षित प्रिया भाई के सामने टूटकर नहीं बिखरती बल्कि अपने बचाव में खुद खड़ी होती है । साढ़े नौ साल की उम्र में प्रिया को अपने बड़े भाई के हवस का शिकार होना पड़ता है । प्रिया के बी.ए. तक पहुँचने के बाद भी यह सिलसिला जारी रहता है । रात होते ही वह खुद को असुरक्षित महसूस करने लगती है । लेकिन उसने तय कर लिया था कि वह चुप नहीं रहेगी । नतीजा यह हुआ कि रात भर के आतंक से तो उसे छुटकारा मिल गया । लेकिन भाई ने अब उसे पैसे देने बंद कर दिये । उपन्यास में नीना भी चुप रहने या सहने केलिए तैयार नहीं है । वह अपने पिता से सख्त नफरत करती है । उसकी नज़र में उसके पिता एक बुज़दिल इन्सान है जिन्होंने अपनी पत्नी के रहते नीना की माँ से शादी की और तिलोत्तमा को सरेआम स्वीकारने से कतराते रहे । नीना कहती है -"नहीं, ज़िन्दा रहने और अपनी लड़ाई स्वयं लड़ने केलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि हम अपमान और वंचना

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 114

को भी याद रखें । मुझे आप ये सब 'चुप-चुप रहो' वाली बातें न सिखलाएँ तो!"[1] वह आजीवन अपने पिता से नफरत करती रही ।

शिक्षा के साथ ही स्त्री की भ्रमित आँखें खुलती हैं । वह समाज में मौजूद रूढ़ियों एवं कुरीतियों को नकारने में सक्षम होती है । मासिक धर्म के दौरान स्त्री को अपवित्र मानने की नीति के खिलाफ छिन्नमस्ता में प्रिया और सरोज मिलकर बगावत करते हैं - "मसलन जब सरोज के भी पीरियड्स शुरू हुए तो हम दोनों ने ही मिलकर हल्ला मचाया कि छुआछूत नहीं मानेगें । ठीक है, आपके कमरे में नहीं आएँगे । चौके में नहीं जाएँगे । फ्रिज नहीं छुएँगे, पर बाकी बातें नहीं मानेंगे ।"[2]

पीली आंधी की सोमा पढ़ी-लिखी आधुनिक विचारों की है । वह रस्मों - रिवाज़ों को ताक पर रख देती है । ताई द्वारा करवाचौथ के दिन कुछ भी खाने-पीने की मनाही के बावजूद भी वह किसी की परवाह किये बिना चाय पी लेती है -"अब तक सोमा चाय का गिलास खाली करके खड़ी हो चुकी थी । सोमा ने देखा, ताईजी के पीछे निमली बाई भी खड़ी थी। ताईजी का गोरा चेहरा गुस्से से लाल हो रहा था । "मेरी बला से" सोमा मन ही मन बड़बड़ाई और उठकर वहां से चल दी ।"[3] सोमा का ससुराल में यह पहला विद्रोह था ।

आज की शिक्षित स्त्री पवित्रता, कौमार्य के मिथक से मुक्त होती दिखाई दे रही है । इन भ्रमों को जिलाये रखने के बजाय उसे तहस-नहस करने का प्रयास कर रही है । स्त्री पक्ष में एक ऐसी लड़की का चित्रण है जो इन बातों को नहीं मानती और कॉलेज में हर लड़के के साथ शारीरिक संबंध बनाए रखती है । उसके बारे में वृंदा के विचार हैं - "कॉलेज में वह लड़की प्रायः दोस्तों के सामने कहा करती - 'यदि मन मिल जाए तो शरीर को क्यों संजोना?

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 145
2. वही पृ. 79
3. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 187

कुंवारापन कोई संपत्ति तो नहीं है कि उसे इतना संभाल कर तौल कर सात तालों में बंद रखा जाए । फुह! ये सारे सामंती ख्याल और बुर्जुआ रख-रखाव तो मुझे बिल्कुल बेकार व उबाऊ लगते हैं । आधुनिक बनना है तो पूरी तरह से आधुनिक बनो ।"[1]

विवाह संस्था में छिपे अन्तर्विरोधों, स्त्री विरोधी मानसिकता से भी स्त्री बखूबी वाकिफ हो गई है । अपने अपने चेहरे में रीतू को दूसरी शादी केलिए उकसाते पिता से रीतू साफ इनकार करते हुए कहती है -"पापा, शादी ! शादी ! ! आप लोगों को इसमें ऐसा क्या दिखता है मेरी समझ में नहीं आ रहा? शादी करने से क्या मिल गया मुझे?"[2] रीतू दूसरी शादी केलिए राज़ी नहीं होती । कुणाल से शादी करके आज रीतू पचता रही है । कुणाल आजकल अपना अधिकतर समय दूसरी स्त्री नीना के साथ गुज़ारता है । रीतू का बेटा टींकू भी उसके हाथ से छूट गया है । इस प्रकार शादी करके रीतू ने सिर्फ अकेलापन ही हासिल किया है।

'आओ पेपे, घल चलें' में मरील की बेटी नैन्सी शादी नहीं करना चाहती क्योंकि उसने अपनी माँ की रेंगती हुई ज़िन्दगी को करीब से देखा है । नैन्सी का पिता उसकी माँ को छोड़कर चला गया है । अब एक दूसरी स्त्री के साथ रहता है । शादी के संबंध में नैन्सी के विचार है - "शादी ! नहीं, कभी नहीं, मां की ज़िन्दगी दूसरों केलिए तलवे घिसने में बीत गई । नैन्सी की नज़र में न मिसेज डी का महत्व था, न क्लारा ब्राउन का, न उसके कपड़ों-गहनों का । औरत को आज़ादी मिलनी चाहिए ।"[3]

प्रभा खेतान ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया है और यह दर्शाने का प्रयास किया है कि अशिक्षित होने के नाते स्त्री को सहना पड़ता है, घुट-घुटकर जीने को वह विवश हो जाती है । अपने अपने चेहरे में मिस्टर गोयनका की ज़िन्दगी में दूसरी स्त्री रमा का आगमन होता

---

1. प्रभा खेतान -स्त्री पक्ष पृ. 20
2. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 111-112
3. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 68

है । इसकी वजह मिसेज गोयनका का गँवार अनपढ़ होना है । निमिषा राय के शब्दों में - 'अपने अपने चेहरे' एक समृद्ध मारवाड़ी परिवार की अन्तरंग कथा का दस्तावेज है । परिवार के मुखिया राजेन्द्र गोयनका की पत्नी फूहड़ और गँवार है । फलतः उनके जीवन में एक सुशिक्षित और सम्भ्रान्त आधुनिक महिला रमा का आगमन होता है ।"[1] अपनी पत्नी के गंवार अनपढ़ होने की वजह से ही मिस्टर गोयनका उसे तलाक नहीं देना चाहते । वे सोचते हैं - "कहाँ उठाकर फेंकू इस औरत को? अकेली यह रहेगी कैसे ? पढ़ी-लिखी भी नहीं कि खुद को सँभाल ले, रमा कमा सकती है, अपने पैरों पर खड़ी है, लेकिन घुटनों के बल घिसटता हुआ यह चालीस वर्षों का साथ?"[2] मिसेज गोयनका को भी अपने गंवार होने का एहसास है । इसलिए वह चाहती है कि उनकी बहू-बेटी पढ़े-लिखे और अपुने पैरों पर खडी हों । जहाँ अपने अपने चेहरे के मिस्टर गोयनका अपनी पत्नी के गंवार होने की वजह से उसे तलाक देने केलिए तैयार नहीं वहीं स्त्री पक्ष का सुमित अपनी पत्नी वृंदा को तलाक देने केलिए इसलिए तैयार हो जाता है कि वह पढ़ी-लिखी है और अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है । सुमित सोचता है -"सब ठीक हो जाएगा, वृंदा एक पढ़ी-लिखी औरत है । अपना जीवन बिता लेगी... यह फ्लैट तो वृंदा और बच्चों केलिए रख दूँगा, जैसे पहले गृहस्थी चलती थी वैसे ही अब चलेगी । "[3] सुमित वृंदा को छोड़ अपनी सेक्रेटरी सुनीता के साथ घर बसा लेता है ।

समाज में कायम लिंगभेद के प्रति स्त्री पक्ष की वृंदा सवाल उठाती है । कॉलेज में लड़के-लड़कियों का साथ साथ पढ़ना गलत नहीं है लेकिन लड़कों के साथ अकेली घूमती लड़की बदचलन समझी जाती है । लड़कों को तमाम छूटें और लड़कियों को हिदायतें देते देख वृंदा का मन दहल उठता है और उसे बीयर पीने से मना करने वाले अपने ही दोस्तों

---

1 निमिषा राय- प्रभा खेतान का औपन्यासिक कृतित्व पृ. 40
2. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 18
3. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 20

से वह पूछ बैठती है - "क्यों नहीं जाना चाहिए था ? क्या यह को - एजुकेशन कॉलेज नहीं, लड़कें-लड़की यहाँ साथ नहीं पढ़ते? तुम यदि पिकनिक में जा सकते हो, वहाँ बीयर पी सकते हो, हल्ला-गुल्ला कर सकते हो तो मैं भी कर सकती हूँ क्या फर्क है तुम्हारे और मेरे दिमाग में ? क्या फर्क है तुम्हारी मेरी परिस्थिति में?"[1]

शिक्षा स्त्री को एक ठोस धरातल प्रदान करती है । स्त्री को हर दृष्टि से सशक्त और अधिकार संपन्न बनाने में शिक्षा की अहम भूमिका होती है । शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे स्त्री की सुप्त चेतना जाग्रत होती है और स्त्री का संघर्ष मज़बूत होता है । इन सच्चाईयों को प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों के ज़रिए उद्‌घाटित किया है ।

आर्थिक स्वतंत्रता और स्त्री

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्री शिक्षा के बढते दर ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री की भागीदारी को संभव बनाया । परिवार की बिगड़ती स्थिति ने स्त्री केलिए बाहर काम करने के अवसर जुटाए । आर्थिक कारणों के अलावा प्रतिभा के सदुपयोग, अपने लिए उच्च दर्जा, आर्थिक स्वावलंब, व्यवसाय विशेष में रुचि आदि मनोवैज्ञानिक कारणों ने स्त्री स्वावलंबन की दिशा में महत्ती भूमिका अदा की । साठ-सत्तर के दशक के आसपास स्त्रियाँ ऐसे क्षेत्रों में कदम रखती दिखाई दीं जहाँ सिर्फ पुरुषों का एकाधिकार समझा जाता था । असाधारण व्यवसाय एवं निर्णायक भूमिकावाले पदों पर आई स्त्रियों ने एक नई स्त्री को जन्म दिया जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर, अपनी उपलब्धियों पर गर्व करनेवाली, आत्मविश्वास, अधिकार और समृद्धि से भरी 'पावर वूमेन' है जो पुरुष की बॉस भी हो सकती है ।

---

1 प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 21

आत्मनिर्भर एवं आत्मसम्मान से लबरेज़ ये स्त्री अपने अधिकारों की मांग एवं अत्याचारों के प्रति प्रतिरोध करती नज़र आती हैं ।

साहित्यिक फलक पर ऐसे ही स्त्री पात्र देखे जा सकते हैं । वहीं प्रभा खेतान के स्त्री पात्रों का अपना विशेष महत्व है । बाहरी क्षेत्र में कदम रखते ही निजी ज़िन्दगी में किये जानेवाले समझौते इन्हें अखरने लगता है । व्यवसाय प्रभा खेतान के स्त्री पात्रों की आइडेन्टिटी है ।

आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री जीवन की मूल भूत आवश्यकता है । इसी सच्चाई को अपने अपने चेहरे की रमा, आओ पेपे, घर चलें की प्रभा, कैथी, हेल्गा बेरी, एडिना, एवं छिन्नमस्ता की प्रिया, नीना उजागर करती हैं । 'अपने अपने चेहरे' की रमा एक प्रतिष्ठित व्यावसायिक महिला है । उसने शादी नहीं की और वह स्त्री का आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने को ही अधिक तरजीह देती है । इस सिलसिले में रमा के विचार हैं - औरत बिना स्वावलंबी हुए स्वतंत्र नहीं हो सकती।"[1] अपने घर लौट आई मिस्टर गोयनका की बेटी रीतू को यही समझाती है कि पति, बेटे के बारे में सोचकर उदास होने के बजाय अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश करो । 'आओ पेपे, घर चलें' की प्रभा मारवाड़ी समाज से संबंधित है । वह अपनी मर्जी की ज़िन्दगी जीना चाहती है । इसलिए आर्थिक रूप से स्वावलंबी होना उसके जीवन की प्रथम आवश्यकता है । इसी उद्देश्य से वह सन् 1966 में ब्यूटी थेरापी का कोर्स करने अमेरिका जाती है । अपनी अध्यापिका से मिलते वक्त प्रभा इसी का खुलासा करती है - "नहीं, मेरी लड़ाई इसी समाज से चलेगी । आप नहीं जानतीं, बहन जी, औरत की सारी स्वतंत्रता उसके पर्स में निहित है ।"[2] उपन्यास में हेल्गा बेरी का मकसद आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने के साथ-साथ पूरा हो जाता है । वह किम्बूत जाना चाहती थी । लेकिन जब

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 71
2. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 36

उसके पति डॉ बेरी ने उसे मना किया तब हेल्गा ने अपने पैरों पर खडे होने की ज़रूरत महसूस की । उसने अपना एक रेस्टोरैंट खोला । अब उसके पास इतने पैसे हैं कि वह अपने बच्चों और पति को छोड़कर किम्बूत जा रही है ताकि अपने बचे हुए दिन वहाँ गुज़ार सके। वह प्रभा से कहती है "हाँ जिस दिन डाक्टर बेरी ने एतराज किया, उस दिन मुझे समझ में आया कि दूसरे के पैसे से अपनी ज़िन्दगी का मकसद पूरा नहीं होता । मैंने रेस्टोरैंट खोला। आज मेरे पास बहुत पैसे हैं । हाँ, मेरे अपने कमाए हुए और मैं किम्बूत में जा रही हूँ ।"[1]

उपन्यास में कैथी कमाना चाहती है जब कि उसका पति उसे कमाने नहीं भेजता । वह अपनी आण्टी एडिना के विचारों को प्रभा के सामने रखती है कि उसकी आण्टी आर्थिक स्वतन्त्रता को पहली शर्त मानती है । आखिरकार कैथी का स्वत्वबोध जाग उठता है और वह इस नतीजे पर पहुँचती है कि वह अपने पति से इस सिलसिले में बात करके ही रहेगी कि वह उसके टुकडों पर जीना नहीं चाहती । वह नौकरी करना चाहती है । 'छिन्नमस्ता' की ननद नीना एक अवैध संतान है । अपने पिता से नफरत करती है । उसके अनुसार उसके पिता एक बुज़दिल इन्सान है जिन्होंने नीना की माँ तिलोत्तमा से शादी तो कर ली । लेकिन वे समाज के सामने इस रिश्ते को स्वीकार न कर पाये । नीना अपने पैरों पर खड़ी होना चाहती है । आर्थिक स्वतंत्रता ही उसके जीवन का पहला ध्येय है - "देखा भाभी, पापा चाहते हैं कि मेरी शादी हो जाए लेकिन मैं नहीं करूँगी । मैं पहले अपने पैरों पर खड़ी होऊँगी।"[2] प्रभा खेतान के स्त्री पात्र आर्थिक स्वतंत्रता को तरजीह देती हैं ।

प्रभा खेतान के स्त्री पात्रों केलिए व्यवसाय (काम) उनकी अपनी पहचान है । वे अपने स्व को घर-परिवार के सीमित घेरे से बाहर निकलकर बृहत्तर समाज से जोड़कर

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 86
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 144

देखने की हिमायती है । छिन्नमस्ता की प्रिया केलिए व्यवसाय उसकी पहचान है । इसी का खुलासा वह अपने पति नरेन्द्र से करती है "नरेन्द्र, मैं व्यवसाय रुपए केलिए नहीं कर रही। हाँ, चार साल पहले जब मैंने पहले-पहल काम शुरू किया था, मुझे रुपयों की भी ज़रूरत थी । पर आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेंटिटी है । यह आए दिन की विदेशों की उड़ान... यह मेरी ज़िन्दगी के कैनवास को बड़ा करती है । नित्य नए लोगों से मिलना-जुलना, जीवन के कार्य-जगत को समझना । मुझे ज़िन्दगी उद्देश्यहीन नहीं लगती ।"[1] व्यवसाय के ज़रिए प्रिया को सृजन और अभिव्यक्ति का सुख मिलता है । उसकी आत्मीयता का घेरा और अधिक विस्तृत होता है । व्यावसायिक जगत में कदम रखते ही प्रिया परंपरा का लबादा उतार फेंकने में कामयाब होती है । जैसे -जैसे वह अपने काम में स्थापित होती गई, पुरष की नज़र में खुद को स्थापित करने की उसकी चेष्टा एवं चाहत भी खत्म होती गई । नरेन्द्र की धमकी के बावजूद भी प्रिया व्यवसाय के सिलसिले में लंदन जाती है । लंदन से लौटने पर उसे अपना बसा-बसाया घर खोना पड़ता है । इससे दुःखी होने के बजाय वह नीना और तिलोत्तमा केलिए सहारा बनती है । इस तरह दूसरों केलिए सहारा बनकर वह अपनी आगे की ज़िन्दगी तय करती है ।

छिन्नमस्ता की प्रिया की तरह अपने अपने चेहरे की रमा केलिए भी काम उसकी पहचान है । रमा सोचती है- "लेकिन फिर भी मेरे जीवन में बचा है उत्साह, आस्था, काम से मिलनेवाला नया-नया आत्मविश्वास, संकल्प और नये-नये अनुभव । दुनिया में बढ़ते चले जाने की बाध्यता क्योंकि अब पीछे लौटना असंभव है ।"[2] रमा समाज के खोखलेपन पर प्रहार करती है और सामाजिक घेरे का अतिक्रमण कर अपनी एक अलग पहचान स्थापित करने में सफल होती है । वह भी छिन्नमस्ता की प्रिया की तरह परंपरा का लबादा

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 10-11
2. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 202

उतार फेंकने में कामयाब होती है । वह आर्थिक स्वतंत्रता के साथ-साथ मानसिक गुलामी से मुक्त होने को भी तरजीह देती है "पहले हिम्मत नहीं होती थी और रीतू, मुक्ति केवल आर्थिक नहीं होती । ज़रूरत तो है कि औरत अपनी मानसिक जकड़न से निकले । धीरे-धीरे मुझे यही समझ में आया किअकेला होना कोई अपराध नहीं । कोई ज़रूरी है कि हम केवल पारंपरिक संबंधों को ही अपना समझें।"[1] यही सब कुछ वह रीतू को समझाने का प्रयास करती है कि ज़िन्दगी में पति, बच्चा और घर ही सब कुछ नहीं होता । इसके परे भी स्त्री की ज़िन्दगी में बहुत कुछ हो सकता है । ज़िन्दगी के नए अर्थ खोजने का प्रयास करो।

स्त्री के आर्थिक रूप से स्वावलंबी होने के साथ ही उसका आत्मविश्वास बढ़ता है । कमाने के साथ ही स्त्री निर्णय लेना सीखती है और निर्णय उसके संघर्ष को मज़बूत करता है । वह पुरुष का मालिकाना भाव सह नहीं सकती और अपना प्रतिरोध व्यक्त करती है । प्रिया सोचती है - "मैं जितना ही अपने काम में सफल हो रही थी, उतना ही नरेन्द्र से किए जानेवाले रोज-रोज के टुच्चे समझौते मुझे खलते थे । मेरे व्यापार की एक दुनिया थी, जहाँ काम करके मेरा आत्मविश्वास बढ़ता था । मैं एक स्वतंत्र व्यक्ति की तरह व्यापार में दस संभावनाओं के बीच किसी एक का चुनाव करती थी।"[2] प्रिया को बाहरी क्षेत्र में प्रतिष्ठित होता देख उसके पति नरेन्द्र को बर्दाश्त नहीं होता । प्रिया के सर्वनाश केलिए वह प्रयत्न करता है । हाथ से फिसलती पत्नी प्रिया को देख उसके अहं को चोट पहुँचती है । पति के आगाह करने पर भी प्रिया लंदन चली जाती है । और प्रिया अपना एक अलग घर बसा लेती है ।

छिन्नमस्ता में प्रिया का पति नरेन्द्र हर छः महीने सेक्रेटरी बदलता रहता है । लेकिन एक बार एक सेक्रेटरी उसके प्रेम के जाल में फँसकर उसके बच्चे की माँ बन जाती है ।

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 149
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 215

नरेन्द्र चन्द पैसे देकर उसे रफा दफा कर देना चाहता है । तब उसका मन विद्रोह कर उठता है और वह कहती - "रुपया? यू बास्टर्ड, सन आफ विच! तुम सोचते हो कि तुम रुपए से हर औरत का मुँह बंद कर दोगे ? मैं तुम्हें बरबाद करके मानूँगी।"[1]

शिक्षित एवं आर्थिक रूप से स्वावलंबी स्त्री आज घुट-घुटकर जीना नहीं चाहती । वह विवाह को संस्कार मानकर उसे आजीवन ढोने के पक्ष में नहीं है । इसलिए विवाह संस्था की नींव आज चरमराती हुई दिखाई देती है । आज विवाह को दो स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच के पारस्परिक समझौते से उत्पन्न अनुबंध माना जाता है । पीली आंधी की सोमा अपने पति की ज्यादतियों को बर्दाश्त नहीं करती । वह इस रिश्ते को ठुकराकर सुजीत के साथ रिश्ता जोड़ लेती है । वह सुजीत से कहती है - "हाँ, और क्या यह ज़रूरी है कि कोई किसी को ताउम्र प्यार करता रहे ! विकास की यात्रा में जीवन के कालखंड में कभी स्त्री तो कभी पुरुष का स्वभाव, उसका मूल्यबोध, जीवन दृष्टि बदल भी तो सकता है । और जब कोई बदल जाता है, तब बची रहती है जड़ता । क्या इसी को वैवाहिक संबंध कहा जाए ? शायद कह सकते हो । मगर सुजीत यह प्रेम तो नहीं।"[2] सोमा घर की इज्ज़त मर्यादा की परवाह किये बिना सुजीत के साथ रहने लगती है । इस रिश्ते में उसे एक बेटा भी होता है । सोमा सुजीत के साथ खुश रहती है ।

अपने अपने चेहरे में लेखिका ने विवाह संस्था के टूटकर बिखरने का संकेत दिया है । उपन्यास में मिस्टर गोयनका ने अपनी इकलौती बेटी रीतू की शादी कुणाल के साथ की है । रीतू अपने पति के साथ दिल्ली में रहती है । उसका एक बेटा भी है । धीरे-धीरे कुणाल और रीतू की दोस्त नीना कुणाल के करीब आ जाती है । इससे कुणाल और रीतू के रिश्ते

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 167
2. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 245

में दरार आ जाता है । रीतू अपने पिता के घर वापस आ जाती है । उनका रिश्ता टूटने के कगार तक आ पहुँचता है । रीतू के माता-पिता चिंतित है । इस सिलसिले में, इस टूटते रिश्ते को फिर से बाँधने की कोशिश में रीतू के माता-पिता श्यामसुन्दर से मिलने जाते हैं ।तब उनका कहना था, "देखिए गोयनका जी, दस-पन्द्रह वर्षों में अपना समाज बहुत बदल गया है । यह तो कहिए अपने कलकत्ता में थोड़ी हया-शरम बची है । लेकिन दिल्ली, बंबई में तो सब कुछ खुलेआम चलता है । कौन किसके साथ रहता है ? किसका कहाँ अफयर है? कोई नहीं जानता । शादियाँ टूट नहीं रही क्या ? आए दिन तलाक हो रहे हैं । फिर वापस शादी भी हो रही है।"[1] इससे जाहिर हो जाता है कि आज तलाक और दूसरी शादियाँ एक आम घटना बन गई है ।

'अपने अपने चेहरे' में रमा ने शादी नहीं की । वह अकेले रहती है और खुद कमाती है । रमा ने मिस्टर गोयनका के साथ नाता जोड़ रखा है । रमा और गोयनका दोनों एक दूसरे के अकेलेपन के साथी है । अपना दुःखड़ा एक दूसरे के साथ बाँटते हैं । गोयनका के परिवारवाले भी उनके इस रिश्ते से वाकिफ है । लेकिन वक्त के साथ गोयनका और रमा के बीच दूरी आ जाती है । अपने कामकाज में डूबे रहने की वजह से एक दूसरे से मिलने तक की फुर्सत उन्हें नहीं है । रमा वक्त निकालकर मिस्टर गोयनका से मिलने आती है लेकिन पारिवारिक एवं व्यावसायिक झमेलों के कारण गोयनका रमा केलिए अपना थोड़ा सा भी वक्त निकाल नहीं पाते । रमा को उनसे इस बात की शिकायत है । रमा इस रिश्ते को आए दिन ढोने के पक्ष में नहीं है । वह मिसेज गोयनका से कहती है "जीजी, आप सहती होंगी, मैं नहीं सह सकती । और किसलिए सहूँ ? मुझे मेरी रोटी खुद कमानी पड़ती है । कौन क्या करता है मेरे लिए ? यह भी कोई संबंध है ? जब संबंध को कोई नाम नहीं दिया

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 110

जा सकता तो क्या ज़रूरत है ढोने की ?"[1] रमा का मानना है कि स्त्री का जीवन सिर्फ समाज की तयशुदा भुमिकाओं को निभाना नहीं है ।

छिन्नमस्ता की प्रियी का भी यही विचार है । संपन्न घराने में ब्याही गई प्रिया पहले पहल अपने पति नरेन्द्र के टुकड़ों पर पलती रही, चुपचाप उसके सामन्तवादी मानसिकता को झेलती रही । अपने पति की सहमति से प्रिया ने सिर्फ अपनी पहचान केलिए व्यावसायिक जगत में कदम रखा । लेकिन जैसे ही वह व्यावसायिक जगत में प्रतिष्ठित होती गई नरेन्द्र के साथ किये जानेवाले समझौते उसे बेईमान लगने लगते हैं । वह अपने दोस्त फिलिप से कहती है - "पर हाँ, एक दिन मैंने यह निश्चय ज़रूर किया कि अब और नहीं। पत्थरों के बीच रोने-चिल्लाने से कोई लाभ नहीं । मेरे आसापास लोगों की नहीं, भूरी चट्टानों की बस्ती है जो या तो जड़ है या फिर पहाड़ों सी गड़गड़ाती हुई नीचे लुढ़क रही है । उनका अपना ही शोर इतना अधिक है कि उन तक मेरी सिसकियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं। और मैंने सबको भूल जाना चाहा । अतीत को दफना दिया । गैर-ज़रूरी लड़ाईयों की चुनौतियों को अनदेखा किया । हाँ जीऊँगी, अच्छी तरह जीकर दिखा दूँगी । अपने होने का एहसास ही कितना सुखद लगता है ? भविष्य की आधार-भूमि भी मेरा वर्तमान ही होगा। "[2] आखिरकार प्रिया अपने बेटे और नरेन्द्र को छोड अपनी एक अलग दुनिया बसा लेती है । एक ऐसी दुनिया जहां न कोई मालिक है और न गुलाम । हर कोई बराबर का हकदार है ।

पीली आंधी की चित्रा के पति सुजीत की ज़िन्दगी में दूसरी स्त्री सोमा का प्रवेश होता है । सुजीत गर्भवती सोमा को अपने घर ले आता है । इस बात पर चित्रा अपने पति से लड़ने-झगड़ने की बजाय गर्भवती सोमा की देखभाल करती है । जब उसे बच्चा पैदा हो

---

1 प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 38
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 214

जाता है तब चित्रा अपनी बच्ची के साथ सोमा और सुजीत के रास्ते से हट जाना ही उचित समझती है । वह सोमा को समझाती है कि वह चित्रा केलिए खुद को कसूरवार न समझे - "जो तुम्हारे साथ घटा, वह तुम्हारे साथ या किसी और भी औरत के साथ घट सकता है । कम से कम अपने पैर पर खड़ी औरत भीख तो नहीं मांगती।"[1] चित्रा का मानना था कि जब सुजीत के दिल में उसके लिए कोई जगह ही नहीं बची है तो उसका सुजीत के साथ जोंक की तरह चिपके रहने से क्या फायदा? सुजीत और उसके घर को छोड़कर चित्रा ने अपना रास्ता खुद तय किया ।

आर्थिक स्वतंत्रता स्त्री की भ्रमित आँखें खोलती है । वह अपने प्रति होनेवाले अत्याचार का खुलकर विरोध करती है । अपने पैरों पर खड़ी स्त्री का समाज भी निरादर नहीं कर सकता, उसे दर-दर की ठोकरें नहीं खानी पड़ती । अपनी मूलभूत ज़रूरतों केलिए उसे दूसरों के सामने हाथ नहीं पसारना पड़ता । आर्थिक स्वतंत्रता के ज़रिए स्त्री में निर्णय की क्षमता बढ़ती है । इन तथ्यों से रू-ब-रू कराता है प्रभा खेतान के उपन्यास । अपने उपन्यासों के ज़रिए लेखिका ने स्त्री के आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने पर बल दिया है ।

अकेली स्त्री

शिक्षित और आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री की मानसिकता में भारी परिवर्तन आज देखा जा सकता है । भूमिकाओं में परिभाषित, रिश्तों में जीती आई स्त्री आज अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को बरकरार रखने में जुटी हुई है । इसके परिणामस्वरूप समाज के बने बनाये चौखटे का अतिक्रमण कर स्त्रियाँ अकेली ज़िन्दगी बज़र करती दिखायी देंगी । इसके ज़रिए यह साबित करने का प्रयास किया जा रहा है कि भूमिकाओं से परे भी स्त्री की पहचान है जिसे समाज आज तक नकारता आया है । समाज स्त्री की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकारने के

---

1 प्रभा खेतान पीली आँधी पृ. 260

बजाय उसे भूमिकाओं की तह में लपेटता आया है । अकेली स्त्री वास्तव में स्त्री का प्रतिरोध ही है उस व्यवस्था के प्रति जो स्त्री को पंगु बनाये रखने के तरीके ईज़ाद करता आया है । अकेली स्त्री संख्या में कम होते हुए भी यह स्त्री द्वारा उठाया गया कदम है, अपनी मानवीय पहचान को स्थापित करने की दिशा में स्त्री की पहल है ।

अपने अपने चेहरे उपन्यास में रमा एक अकेली स्त्री है । वह शादी नहीं करती । एक विवाहित पुरुष और तीन बच्चों के पिता मिस्टर गोयनका से प्यार करती है । इसके बावजूद समाज में रमा की एक अलग हैसियत है । वह एक कामयाब व्यावसायिक महिला है। रमा अपनी ज़िन्दगी के ज़रिए यह साबित करती है कि पुरुष से परे भी स्त्री का अस्तित्व है। उसकी ज़िन्दगी मात्र पुरुष की खोज बनकर नहीं रह जानी चाहिए । रमा सोचती है "लेकिन क्या औरत की ज़िन्दगी सिर्फ पुरुष की तलाश बनकर रह जाए ? अपने-आप में उसकी कोई सार्थकता नहीं ? अकेली औरत क्या समाज का कोई उपयोगी हिस्सा नहीं बन सकती ? लेकिन औरत आज अकेली होती जा रही है।"[1] रमा का संपूर्ण जीवन दूसरों केलिए समर्पित था । लाचार, बेबस स्त्री को सहारा देते हुए रमा यही जताने का प्रयास करती है कि पति, बच्चे, परिवार के बिना भी उसका जीवन उद्देश्यहीन नहीं है ।

समाज अब तक स्त्री को भूमिकाओं में परिभाषित करता आया है । इस घेरे को तोड़कर रमा यही जाहिर करना चाहती है कि अकेली स्त्री भी समाज की एक सार्थक इकाई है । रमा मिस्टर गोयनका से कहती है - "सुनो राजेन्द्र ! अपने आप में मैं एक इकाई हूँ । पूर्ण हूँ । यानी मुझे अपने जीवन में अब पुरुष की कोई ऐसी भूमिका नज़र नहीं आती । जहाँ तक संवेदना और लगाव का सवाल है, उसे और भी कई रूपों में पाया जा सकता है । खैर, मेरी छोड़ो।"[2] यही बात वह मिस्टर गोयनका की बेटी रीतू को समझाती है । रीतू और

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 104
2. वही पृ. 182

कुणाल के रिश्ते में दूसरी स्त्री नीना के कारण दरार पड़ गया है । रीतू अपने पिता के घर लौट आई है । लेकिन उसका अपना घर भी अब तक उसके लिए पराया हो चुका था । गुमसुम, उदास रीतू को रमा सहारा देती है और उसे समझाते हुए कहती है - "रीतू, जीवन सार्थक बन सके इसका प्रयास करो। विवाह, पति, बच्चे से परे भी औरत है, उसका अस्तित्व है । उसका सामाजिक अवदान हो सकता है इस पर सोचो । पति सर्वस्व नहीं, अपने स्व को पहचानो।"[1] रमा बनी बनायी व्यवस्था को चुनौती देते हुए अपने अस्तित्व एवं अस्मिता को बरकरार रखने के प्रयास में जुटी हुई है । अपने जीवन में नए प्रतिमान रचने के साथ-साथ समाज के खोखलेपन की ओर इशारा करती है । रमा अकेले रहकर समाज की धज्जियाँ उड़ाती है ।

अपने अपने चेहरे की रमा की तरह आओ पेपे, घर चलें की प्रभा, एड्स की प्रभा, अग्निसंभवा की प्रभा अकेली ज़िन्दगी गुज़ारती हुई इसी सच्चाई को उद्घाटित करती हैं कि भूमिकाओं से परे भी स्त्री का अस्तित्व है जिसे समाज नकारता आया है । उसे उसकी वास्तविक पहचान से महरूम रखता आया है । आओ पेपे, घर चलें की प्रभा खुद को भूमिकाओं के तह में लपटने की बजाय स्त्री जाति के हित में कुछ कर गुज़रना चाहती है । प्रभा घर की पाँचवीं बेटी है । मारवाड़ी समाज में जन्मी प्रभा अपने समाज की मानसिकता से परिचित है । अपने पैरों पर खड़े होने केलिए वह ब्यूटी थेरापी का कोर्स करने अमेरिका जाती है । अकेली प्रभा वहाँ स्त्री जीवन के कैसेले यथार्थ से परिचित होती है ।

एड्स की प्रभा की ज़िन्दगी में भी पुरुष की कोई भूमिका नहीं बची है । वह अकेली ज़िन्दगी गुज़ारती है । समाज में अपनी एक अलग पहचान स्थापित करती है । उसे अपनी उपलब्धियों पर नाज़ है । वह सोचती है - "सबको पता है कि तुम अकेली हो । घर नहीं,

---

1 प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 94

गृहस्थी नहीं, बच्चे नहीं....। मेरी विवाहित दोस्तों के शब्द-'प्रभा तुम भाग्यशाली हो, प्रभु की कृपा है । कितने लोगों को इतनी खूबसूरत ज़िन्दगी नसीब होती है? हाँ, ठीक कहा जा रहा है । सच में ऐसी ज़िन्दगी नसीब नहीं होती । इतना पैसा, इतनी पढाई-लिखाई, इतनी शोहरत नहीं मिलती।"[1] अग्निसंभवा की प्रभा भी व्यवसाय के सिलसिले में देश-विदेश में घूमती नज़र आती है । उपन्यास के ज़रिए उसके अकेले होने का संकेत भी मिलता है । लेकिन उसे इस बात का तनिक भी अफसोस नहीं ।

'छिन्नमस्ता' में प्रिया को अन्त में अकेले ज़िन्दगी गुज़ारते हुए हम देख सकते हैं । अपने अकेलेपन के संबंध में प्रिया का कहना है "मेरे साथ मेरा अकेलापन है, पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ समझा रहा है ।"[2] स्त्री जीवन का यह अकेलापन स्त्री की नियति नहीं है बल्कि आज भी पुरुष की मानसिकता में परिवर्तन का आना बाकी है । स्त्री जीवन में आज नित नई भूमिकाएँ जुड़ रही है । विवाहित प्रिया ने अपने अकेले जीवन का वरण खुद किया था । समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाओं से परे जाकर वह अपने जीवन को सार्थक बनाने में जुटी हुई है ।

'आओ पेपे, घर चलें' की हेल्गा बेरी और कैथी, अग्निसंभवा की आइवी सिर्फ पत्नी और माँ की भूमिका में ही सिमटकर नहीं रहना चाहती । हेल्गा ने अपना एक रेस्टोरेंट खोला है । उसने बहुत पैसे कमा लिए हैं । अब वह किम्बूत जाना चाहती है । यही उसके जीवन का उद्देश्य है । उपन्यास में कैथी कमाना चाहती है । लेकिन उसका पति ब्रैडी उसे नौकरी पर भेजना नहीं चाहता है । दोनों केलिए वह खुद कमा रहा है । कैथी ब्रैडी के कमाए पैसे खर्च कर रही है ताकि उससे तंग आकर वह उसे कमाने की इज़ाजत दे दे । वह प्रभा से कहती है "प्रभा, मुझे ब्रैडी से बात करनी होगी । नहीं, मेरा प्रेम पर विश्वास नहीं उसने

---

1. प्रभा खेतान एड्स पृ. 67
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 25

पहली पत्नी को छोड़ा । कल मुझे भी छोड़ देगा । मैं नहीं चाहती कि मैं मम्मी की तरह होऊं, जो डैड के आतंक में थर-थर कांपती रही थी । न मैं एलिजा की तरह दिवालिया होना चाहती हूँ । मुझे मेरा 'मैं' चाहिए, एक मज़बूत व्यक्तित्व, जो सम्मान से सिर उठाकर खड़ा हो सके।"[1] कैथी अपनी माँ और एलिजा की तरह आँसू के घूँट पीकर जीना नहीं चाहती । वह ब्रैडी के टुकड़ों पर पलना नहीं चाहती ।

स्त्री पक्ष में वृंदा अकेले जीवन का वरण करती है । उसके पति की ज़िन्दगी में सुनीता का प्रवेश होता है । वृंदा इस रिश्ते को स्वीकारने के पक्ष में नहीं है । दोनों के बीच तलाक हो जाता है । वह एक बुटिक खोल लेती है और यही उसके जीने का मकसद बन जाता है। उसकी ज़िन्दगी में आए आर्जव को वह स्वीकारती तो है लेकिन उसके साथ मुम्बई जाने के बजाय कलकत्ते में अपने बुटिक के सहारे जीना पसंद करती है - "क्यों मन बार-बार कह रहा था... जीने केलिए केवल आर्जव का प्यार काफी नहीं कुछ और भी चाहिए.... और एक बार यदि मुंबई चली जाऊंगी तो यहाँ नहीं लौटूंगी । वापस ऐसी बुटिक नहीं बना सकती। कितने वर्ष तो यों ही बीत गए, बिना किसी उद्देश्य के बिना किसी काम के यों नहीं जिया जाता, आर्जव मेरा उद्देश्य नहीं बन सकता।"[2] वह आगे की अपनी ज़िन्दगी को उद्देश्यपूर्ण बनाना चाहती है । अकेले जीवन का वरण करती अकेली स्त्री इस तथ्य को उजागर करती है कि भूमिकाओं से परे भी स्त्री का अस्तित्व है । वह समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाओं को नकारती है । अपने जीवन के ज़रिए यह जाहिर करती है कि समाज में स्त्री का भी अपना घर हो सकता है । वह भी समाज की एक सार्थक इकाई होती है । इन्हीं तथ्यों को उघाड़ने का कार्य प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में किया है । उन्होंने यह जताने का प्रयास किया है कि स्त्री जीवन का मकसद सिर्फ पुरुष की खोज नहीं है । स्त्री को अपनी मानवीय पहचान

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 148
2. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 23

को हासिल करना है । वस्तु के बजाय मानवीय गरिमा के साथ समाज में जीकर दिखा देना है कि स्त्री मात्र पुरुष के खूँटे के सहारे नहीं बँधी रह सकती ।

दूसरी स्त्री

स्त्री के प्रति समाज के बदलते नज़रिए ने समाज के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री की उपस्थिति को संभव बनाया । आत्मविश्वास और आत्मसम्मान से लैस स्त्रियाँ चुनाव एवं निर्णय के अवसरों का फायदा उठाती आज नज़र आती है । वे अपने नज़रिए से अपनी ज़िन्दगी को जीने की पक्षधर है । शिक्षा और आर्थिक स्वतन्त्रता ने उनके हौसले को बुलन्द किया है । जीवन के प्रति उनके रुख और रवैये में बदलाव आया है । समाज के बंदिशों को तोड़कर उसने अपना प्रतिरोध व्यक्त किया है । दूसरी स्त्री वास्तव में स्त्री का ही चुनाव है । दूसरी स्त्री विवाह संस्था केलिए चुनौती बन जाती है । स्त्री आज अपनी ज़िन्दगी का फैसला खुद ले रही है कि उसे अपनी ज़िन्दगी एक कुँवारे या एक विवाहित पुरुष के साथ गुज़ारना है । इसी का चित्रण प्रभा खेतान के उपन्यासों में हुआ है ।

अपने अपने चेहरे में रमा पढ़ी-लिखी, आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री है । वह एक शादीशुदा तीन बच्चों के पिता से प्यार करती है । रमा अपने जीवन में नैतिकता के नए प्रतिमान रचती है । मिस्टर गोयनका के साथ नाता जोड़ना रमा का अपना निर्णय था । विवाह संस्था के बाहर ऐसे रिश्ते को अपनाते हुए वह विवाह संस्था की धज्जियाँ उड़ाती है

"लोगों, तुम मुझे बदनाम करते हो । करो । हर तथ्य तुम्हारे सामने खोलती हुई भी मैं कहीं भीतर से खामोश हूँ । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त संबंध के चौखटे को देखा जा सकता है, लेकिन उन्हें जीया नहीं जा सकता । विवाह एक संस्था है । प्रेम का संस्थापन कैसे करोगे? मैं किसी के

खिलाफ नहीं लेकिन क्या मेरे व्यक्तिगत अनुभवों का कोई मूल्य नहीं ? अनुभव अनुभव होते हैं । उनके पीछे कोई राजनीतिक सिद्धांत नहीं हुआ करते।"[1] रमा अपने इस रिश्ते को दोस्ती का नाम देती है जिसे समाज हमेशा नकारता आया है । एक ऐसा रिश्ता जिसे समाज मुनासिब नहीं समझता । दोस्ती से रमा का तात्पर्य एक दूसरे के प्रति पूरी ईमानदारी है । ये रिश्ता समाज केलिए नापाक होते हुए भी रमा और मिस्टर गोयनका केलिए पाक था । उनके जीने का सहारा था । रमा ने कभी भी मिस्टर गोयनका के परिवार को उजाड़ने की कोशिश नहीं की । वह उनके और उनके परिवार के प्रति समर्पित रही । रमा के आने से मिस्टर गोयनका में जीने की तमन्ना जाग उठी थी । रमा मिस्टर गोयनका की बैसाखी थी ।

प्रभा खेतान की दूसरी स्त्री रखैल या वेश्या नहीं है । क्योंकि उसका घर न तो कोठा है और न ही वह जिस्म बेचती है, न ही वह रखैल है। रखैल वह औरत है जिसका भरण-पोषण पुरुष करता है । प्रभा खेतान की दूसरी स्त्री अपने पैरों पर खड़ी, चुनाव एवं निर्णय लेने में सक्षम स्त्री है । इसी का खुलासा लेखिका ने रमा के ज़रिए किया है । रमा मिस्टर गोयनका से कहती है - "जिस संबंध को तुम नाम नहीं दे सकते, जिसके पास तुम्हें दुनिया से छुपकर जाना पड़े, तब उस संबंध को भूल जाना ही अच्छा । " हाँ, उस दिन रमा ने बस इतना ही कहा था, "राजेन्द्र मैं जहाँ भी रहूँगी, वह मेरा घर होगा । कोई कोठा नहीं कि तुम्हे सिर झुकाकर निकलना पड़े।"[2]

स्त्री के चेतन होने के साथ ही विवाह संस्था की नीव चरमराने लगी है । स्त्री ऐसे रिश्तों को गलत नहीं मानती । अपने अपने चेहरे उपन्यास में मिस्टर गोयनका की बेटी रीतू के पति कुणाल की ज़िन्दगी में नीना का प्रवेश होता है । नीना बेझिझक कुणाल के साथ उठती-बैठती है । वह खुद शादीशुदा है और उसका पति उसे कुछ नहीं कहता । नीना में

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 194-195
2. वही पृ. 162

किसी भी प्रकार का अपराध बोध नहीं है । उसके संबंध में रीतू के विचार है - "वह कहाँ अपने घरवालों की परवाह करती है । मम्मी वह बहुत बोल्ड है । पार्टी-वार्टी में सब जगह तो इनके साथ जाने लगी है ।"[1] नीना की वजह से रीतू और कुणाल के रिश्ते में दरार पड़ जाता है । रीतू अपने घर लौट जाती है । 'आओ पेपे, घर चलें' में क्लारा ब्राउन और डॉ डी के बीच का रिश्ता भी ऐसा ही है । क्लारा ब्राउन तलाकशुदा है, करोड़ों के जायदाद की मालकिन है। इस रिश्ते के बारे में प्रभा को आइलिन से पता चलता है - "बेवकूफ लड़की! दो और दो चार जोड़ना नहीं जानती? क्लारा और डाक्टर डी का " कहते कहते उसने दाहिनी आंख मारी।"[2] आइलिन क्लारा ब्राउन से नफरत करती है जिसने मिसेज डी के जीवन में ज़हर घोला है ।

'स्त्री पक्ष' उपन्यास में वृंदा के पति सुमित की ज़िन्दगी में उसकी सेक्रेटरी सुनीता का प्रवेश होता है । यह सुनीता का अपना चुनाव था । वह ज़िन्दगी भर सुमित के साथ रहना चाहती है जबकि सुमित सिर्फ दो दिन शनिवार, रविवार अपनी पत्नी के साथ गुज़ारता है । सुमित वृंदा को छोड़ सुनीता के साथ अपनी ज़िन्दगी की शुरुआत करता है । सुमित के जाने के बाद वृंदा अपना दुःखड़ा रोने के बजाय अपने अकेले जीवन में आए आर्जव का वरण करती है । आजीवन अपने पति की यादों के सहारे जीना नहीं चाहती ।

'पीली आंधी' में सामाजिक मर्यादाओं का उल्लंघन करते हुए सोमा विवाहित पुरुष सुजीत को अपनाती है । सोमा का पति गौतम नपुंसक है और सोमा माँ बनना चाहती है । वह बिना तलाक लिए सुजीत के बच्चे की माँ बनती है । वह गौतम से कहती है -"समाज को, तुम्हारे इस समाज को, हमारे बारे में सोचने की फुर्सत भी है ? यह तो निजी जीवन का व्यक्तिगत मामला है । गौतम, तुम किस समाज की बात कर रहे हो ? वह जिनसे तुम पार्टियों में मिलते हो? वह जो कला मंदिर में बैठकर तालियाँ बजाता है? वह जो न्यू मार्केट में

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 97
2. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 34

शापिंग करता है? वह समाज नहीं गौतम। वह तो बस पैसे वालों का समूह है, एक जत्था। हवा में उड़ता हुआ पेड़ । अपने आस-पास के माहौल से कटा हुआ, ज़मीन खोजता हुआ..... लेकिन इस समूह को ज़मीन नहीं मिल सकती । बात यह है गौतम, कि तुम लोगों ने कभी ज़मीन की तलाश ही नहीं की खैर, मुझे मेरी अदना ज़िन्दगी से प्यार है । बस! और कुछ?"[1] सोमा के आते ही सुजीत की पत्नी चित्रा उनके रास्ते से हट जाती है । सोमा ने भी स्वेच्छा से इस रिश्ते का चुनाव किया था और वह सोचती है - "आखिर गलत क्या है ? ऐसा कौन-सा अपराध मैं कर रही हूँ ? क्या अभी इस वक्त भी दुनिया के सैकड़ों स्त्री-पुरुष, एक-दूसरे को प्यार नहीं कर रहे होंगे ? क्या उनका शरीर साथ नहीं ? और क्या सभी पति-पत्नी हैं ? किसी पराए पुरुष को यदि मैं अपनाना चाहती हूँ तो अनोखा क्या है ? क्या कभी विवाहित स्त्री ने अन्य विवाहित पुरुष से प्यार नहीं किया है ? फिर यह भय और ग्लानि क्यों?"[2] सोमा सुजीत के साथ एक नई ज़िन्दगी की शुरुआत करती है जहाँ न कोई शिकवे हैं और शिकायत ।

आज की शिक्षित, आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री विवाह संस्था में छिपे अन्तर्विरोधों से वाकिफ हो गई है । स्त्री की दासता, पुरुष के प्रभुत्व पर टिके विवाह संस्था को चुनौती देती हुई स्त्री स्वेच्छा से दूसरी स्त्री का किरदार अपनाती नज़र आती है । इस प्रकार समाज के बंदिशों को तोड़कर अपना प्रतिरोध ज़ाहिर करती है । समाज के खोखलेपन की ओर इशारा करते हुए, उसके मुखौटे को चिंदियों में बिखेरते हुए इस सच्चाई को उघाडने का प्रयास करती है कि लीक से हटकर चलने वाली स्त्री केलिए समाज कितना बेरहम होता है, नैतिकता के मानदण्ड दोहरे हैं । ऐसी स्त्रियों पर कोडे बरसाने वाला समाज लीक से हटकर चलनेवाले पुरुष को समाज के केन्द्र में प्रतिष्ठित करता है । इसका चित्रण प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में किया है ।

---

1. प्रभा खेतान पीली आँधी पृ. 255
2. वही पृ. 246

निष्कर्ष

स्त्री में बढ़ती शिक्षा दर ने स्त्री केलिए रोज़गार के अवसर जुटाए । इसी का नतीजा था कि उसने अपने अधिकारों की मुहिम चलाई । संविधान में पुरुष के समान समान अधिकार भी स्त्री को हासिल हुआ । स्त्री के भीतर यह एहसास पनपने लगा कि वह मात्र पुरुष की संपत्ति नहीं है बल्कि एक स्वतन्त्र व्यक्ति है और समाज से अपने बारे में खुली बहस चाहती है । अब वह मात्र भूमिकाओं के ज़रिए परिभाषित होना नहीं चाहती बल्कि समाज की एक सार्थक इकाई बनना चाहती है और समाज से भी यही उम्मीद रखती है । आज स्त्री ने समाज के बने बनाये चौखटे को तोड़कर अपना प्रतिरोध व्यक्त किया है । दूसरी स्त्री और अकेली स्त्री वास्तव में स्त्री के प्रतिरोध का ही हिस्सा है । इसी का खुलासा प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में प्रस्तुत किया है ।

चौथा अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों में भूमण्डलीकृत स्त्री

नब्बे का दशक भूमण्डलीकरण का रहा है । विश्व के प्रत्येक विकसित, अविकसित एवं विकासशील देश भूमण्डलीकरण, आर्थिक उदारीकरण और निजीकरण की अवधारणाओं से प्रभावित हुए हैं । विश्वग्राम और खुले बाजार की अवधारणा से ओत-प्रोत वैश्वीकरण और उदारीकरण की प्रवृत्ति ने दुनिया में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में उथल-पुथल मचा दी है । इस अवधारणा ने विकासशील देशों के आर्थिक, सामाजिक परिवेश को बदलने के साथ-साथ उन परंपरागत और सांस्कृतिक मूल्यों को भी झकझोरना आरंभ कर दिया है जिन्हें भारत जैसे विकासशील देश अपनी थाती एवं जीवन मूल्य समझते थे । आज आर्थिक बदलाव का प्रभाव निम्नलिखित रूपों में दिखाई दे रहा है

1 सरकार की भूमिका में कमी ।

2. निजी क्षेत्र की भूमिका में वृद्धि ।

3. विदेशी निवेश को प्रोत्साहन के फलस्वरूप छोटे उद्योगों को खतरा ।

4. भारतीय संगीत, कला फिल्मों जैसे सांस्कृतिक क्षेत्रों पर विदेशी प्रभाव में वृद्धि।

5. उपभोक्तावाद और बाज़ारवाद का प्रसार । इसके परिणामस्वरूप देश में गरीबी बेतहाशा बढ़ी है । इसका खामियाज़ा सबसे अधिक स्त्री को ही भुगतना पड़ रहा है ।

भूमण्डलीकरण में हम विश्व अर्थ व्यवस्था का एक अंग बन रहे हैं । जहाँ बाज़ार की शक्तियाँ, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन इसका नियमन और संचालन करते हैं । इनके कर्ज से दबे देश इनके शर्तों को मानने केलिए विवश हो जाते हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ भारत का आर्थिक शोषण कर रही हैं । बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन

और विनिवेश नीति के कारण भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी बढ़ी है । रोज़गार के अवसर कम हुए हैं । अमीर-गरीब के बीच की खाई बढ़ी है । देश के उद्योंगों पर संकट बढ़ा है । लघु उद्योगों को तबाह कर देशी और विदेशी उद्योग उनका स्थान ले रहे हैं । बाज़ार आधारित यह व्यवस्था राज्य आधारित व्यवस्था से ज्यादा मानव विरोधी, प्रकृति विरोधी है। यह स्त्री केलिए सबसे अधिक घातक सिद्ध हुआ है । आज स्त्री बाज़ार के केन्द्र में खड़ी नज़र आती है । स्त्री अस्मिता को चकनाचूर करने के तरीके आज ईज़ाद किये जा रहे हैं । स्त्री देह का आज हर कहीं धड़ल्ले से इस्तेमाल किया जा रहा है । सूरज पालीवाल के शब्दों में "उदारीकरण और भूमण्डलीकरण का आधार बाजारवाद है और बाज़ारवाद का आधार उपयोगिकता है । यानी जो जितना उपयोगी है, वह उतना ही जल्दी बिकेगा । स्त्री हमेशा से ही उपयोगी रही है, इसीलिए वह ज़्यादा बिक रही है ।"[1] इस प्रकार पूँजीवाद की पुनर्स्थापना के साथ स्त्री को स्वतंत्रता, समानता, मानवीय गरिमा से वंचित होना पड़ा । आज स्त्री मुक्ति का जो दावा किया जा रहा है वह वास्तव में एक षड्यंत्र है, छलावा मात्र है । समाज की मुख्यधारा से स्त्री को हाशिये पर धकेलने के कार्य आज किये जा रहे हैं । समाज के निचले पायदान पर स्त्री को खड़े रहने को विविश किया जा रहा है, "पूँजीवादी पुनर्स्थापना की यह तार्किक परिणति है कि औरत फिर से दोयम दर्जे की नागरिक, सबसे निचले दर्जे की उजरती मज़दूर और एक उभोक्ता सामग्री या पण्य वस्तु में तब्दील कर दी जाये ।"[2]

समकालीन उपन्यासों के ज़रिए इसके प्रतिरोध एवं स्त्री अधिकारों केलिए आवाज़ बुलन्द की जा रही है । स्त्रियों को इस साजिश से सजग एवं सचेत करने का कार्य किया जा रहा है । इस दलदल में धँसती जा रही स्त्री को आगाह करने के साथ-साथ इस ओर भी इशारा किया जा रहा है कि स्त्रियों द्वारा हासिल की गई मुक्ति आज खतरे में है । इस दिशा

---

1. सूरज पालीवाल हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध पृ. 11
2. कात्यायनी दुर्ग द्वार पर दस्तक पृ. 112

में प्रभा खेतान ने अहम भूमिका निभाई है । प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों के ज़रिए यह दर्शाने का प्रयास किया है कि भूमण्डलीकरण स्त्री के पक्ष में नहीं बल्कि विपक्ष में खड़ा है। स्त्री की मानवीय पहचान आज खतरे में हैं ।

सेक्स उद्योग और स्त्री

आज बाज़ार में वेश्यावृत्ति एक उद्योग के रूप में स्थापित हो चुकी है । नवबाज़ारवाद ने सेक्स-उद्योग को नई शक्ति दी है, "भूमण्डलीकरण और आर्थिक उदारीकरण की ताकतों ने दुनिया भर में ज़्यादा से ज़्यादा गरीब लड़कियों को वेश्यावृत्ति की ओर धकेला है । अनियंत्रित पूँजीवाद एशिया के बड़े हिस्से में उभर रहा है और यह कमजोर और वंचित लोगों के साथ कोई रियायत नहीं बरत रहा । इस तरह वह एशिया में निचले तबकों के प्रति पारंपरिक घृणा के साथ पूरा तालमेल बिठा रहा है । पूँजीवाद का सबसे क्रूर और हिंसक पहलू, जिसमें सेक्स उद्योग भी शामिल है, कमजोरों के बूते फल-फूल रहा है । इसका एक उदाहरण वियतनाम में मिलता है, जहाँ देह व्यापार और वेश्यावृत्ति में बढोत्तरी हुई है ।"[1] आज विदेशी मुद्रा कमाने के आसान तरीके के रूप में देह व्यापार को प्रश्रय दिया जा रहा है । इसके बलबूते पर राष्ट्र अपना विकास कर रहा है । पर्यटन एवं मनोरंजन उद्योग की आड़ में सेक्स उद्योग को बढ़ावा दिया जा रहा है । सेक्स-उद्योग भूमण्डलीय अर्थ व्यवस्था को बनाए रखने में भी मदद करता है ।

एशिया में प्रथम विश्व युद्ध के बाद देह व्यापार की नींव पडी । इसमें बढ़ोत्तरी की पहली और सबसे महत्वपूर्ण वजह है - इस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति । पारंपरिक एशिया में वेश्यावृत्ति व्यापक स्तर पर फैली हुई नहीं थी । यह क्षेत्र गाँव प्रधान, सामंती और गरीब था।

---

1. लूइज़ ब्राउन, कल्पना वर्मा (अनु) यौन दासियाँ: एशिया का सेक्स बाज़ार पृ. 47-48

लेकिन महिलाओं को चल संपत्ति मानकर उसका यौन शोषण किया जाता था । ज़मीन्दार, स्थानीय खेतिहर मज़दूरिनों से अपनी यौन हवस पूरी करते थे । औपनिवेशिक काल और द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस स्थिति में खास परिवर्तन आया । शहरीकरण और औद्योगीकरण के दौरान बड़ी तादाद में लोग गाँव से शहरों में आ गए । इन समृद्ध पुरुषों में से उन लोगों की संख्या अधिक थी जो सेक्स खरीदने केलिए पैसे खर्च करने लगे ।

सेक्स उद्योग में बढ़ावा होने की दूसरी वजह सैनिकों केलिए वेश्यालयों का विस्तार था । सैनिकों और उनके अफसरों को तैनाती के दौरान वेश्याएँ उपलब्ध कराई जाती थीं । लेकिन एशिया में सैनिकों से जुड़ी वेश्यावृत्ति को बढ़ावा कोरियाई और वियतनामी युद्धों में अमेरिकी सेनाओं के आने से मिला "एशिया में सैनिक आधार स्थापित करने के बाद परिस्थिति में ज्यादा बदलाव आया । विशेषकर वियतनाम युद्ध के बाद पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया में भौगोलिक राजनीतिक अस्थिरता में बहुतेरे सैनिक केन्द्र स्थापित किये गए । हज़ारों की संख्या में अमेरिकी सैनिकों को नियुक्त किया गया और ज़रूरत पड़ी कि इन सैनिकों का नैतिक बल ऊँचा रखा जाए । इन्हें खुशफहमी में रखा जाए ताकि वे उकताकर अपने देश लौटने की जिद न करने लगें । अमेरिकी सरकार स्थानीय सरकारों से एक समझौता करती है । जिसका उद्देश्य था कि इन सैनिकों को स्थानीय स्तर पर आर.आर. यानी रेस्ट और रिक्रियेशन की सुविधा मुहैया करना । इस आर और आर कार्यक्रम केलिए यौन कर्मियों की ज़रूरत पड़ी ।"[1] जब अमेरिकी सेना वियतनाम से हटी तो पर्यटन उद्योग और स्थानीय सरकार के साथ अनधिकृत साझीदारी से सेक्स उद्योग ने नए ग्राहकों को जुटाया। अब सैनिकों का स्थान पर्यटकों ने ले लिया । पश्चिम के विकसित देशों और जापान से ग्राहकों को जुटाया जाने लगा । इसी का विस्तृत लेखा-जोखा प्रस्तुत करता है प्रभा

---

1 प्रभा खेतान बाज़ार के बीचः बाजार के खिलाफ पृ. 127

खेतान का उपन्यास 'अग्निसंभवा'।

'अग्निसंभवा' में प्रभा एक व्यावसायिक महिला है । व्यवसाय के सिलसिले में प्रभा को विदेश जाना पड़ता है । आइवी से प्रभा की मुलाकात हांगकांग में बरसों पहले हुई थी। जब प्रभा यहाँ पहली बार आई थी तब वह हांगकांग के चप्पे-चप्पे से वाकिफ नहीं थी। तब आइवी टाक्सी ड्राइवर थी और अब वह मिस्टर डिक्रे की कंपनी में काम करती है । प्रभा को आइवी से ही वान्चाई एरिया की खासियत के बारे में पता चला कि यह हांगकांग का सबसे पुराना रेडलाइट डिस्ट्रिक्ट है - "(वान्चाई द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यह सैलानियों का अड्डा था, शराब और औरत । थके हुए सैनिक को दो ही चीजें राहत दे सकती हैं बाद में भी यह रेडलाइट एरिया ही रहा । वियतनाम युद्ध के समय अमरीकी सैनिक रिलैक्स करने मसाज लेने यहीं आते थे ।)"[1] प्रभा को आइवी अपनी दोस्त मदाम बोंग चुन शुई से भी मिलाती है जो युद्ध के दौरान अपना जिस्म बेचा करती थी । आइवी अपनी दोस्त की मदद करती थी । मदाम बोंग चुन शुई के पास ग्राहकों (सैनिकों) को लेकर आने का काम आइवी का था । इसके बदले में उसकी दोस्त उसे भर पेट खाना और एक आराम देह बिस्तर देती थी ।

आइवी आगे बताती है कि युद्ध के समाप्त होने पर भी यह सिलसिला नहीं थमा । उसने औरतों को यही धंधा करते हुए देखा । युद्ध के अभिशाप के रूप में यह धंधा सत्तर के दशक तक जारी रहा और परिणामस्वरूप अनेक नाजायज बच्चे भी पैदा हुए "युद्ध खत्म हो जाते हैं पर उसकी कालिख धुलने में वर्षों लग जाते हैं । यहाँ की बार गर्ल्स को पूसी कैट भी कहा जाता था । कई अमेरिकन तो हर साल अपनी पुरानी प्रेमिकाओं से मिलने आते थे, उनके बच्चे भी हुए । यह क्रम सत्तर के दशक तक चलता रहा।"[2] गरीबी और

---

1. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 62-63
2. वही पृ. 63

अभावों को झेलते हुए भी आइवी ने इस धंधे को नहीं अपनाया । आइवी इन जिस्म बेचने वाली लड़कियों से नफरत करती है जो मेहनत करने की बजाय आसानी से पैसा कमाना चाहती है । वह प्रभा से कहती है - "शरीर बेचना भी धंधा कहलाता है । पूँजीवादी समाज की सबसे घिनौनी देन । बादशाहों की रखैलों से लेकर गर्लो बार पर बैठी हुई औरत तक मुझे सबसे नफरत है," फिर अपना पेट बजाते हुए बोली, "इस पेट में कितना चावल समायेगा बोलो ? इस शरीर को ढकने केलिए कितने गज कपड़े चाहिए ? बकवास । आज के युग में कोई मज़बूरी का हवाला दे, बिलकुल बकवास । ये औरतें यह क्यों नहीं कहतीं कि मुझसे मेहनत नहीं होती..."[1] इस दौर में भी आइवी टाक्सी चलाकर अपना और अपने परिवार का पेट पालती रही ।

प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास 'अग्निसंभवा' के ज़रिए स्त्री जीवन के इस कसैले यथार्थ को उद्‌घाटित करने का कार्य किया है । पूँजीवाद की इस घिनौनी देन ने स्त्री की पहचान को तहस-नहस कर उसे पण्य वस्तु में बदलने का कार्य किया है । स्त्री की मानवीय पहचान पर प्रश्नचिह्न लगाया है । सेक्स उद्योग के दलदल में धंसती स्त्री तमाम सामाजिक एवं कानूनी अधिकारों से वंचित होकर दर-दर की ठोकरें खाने को अभिशप्त है ।

ब्रांड और स्त्री

ब्रांड आज भूमंडलीय बाज़ार की लोकप्रिय अवधारणा बन गई है । उपभोक्ता वस्तुओं के एक ही उत्पाद के विभिन्न ब्रांड आज बाज़ार में उपलब्ध हैं । ब्रांड उपभोक्ता को उत्पाद की गुणवत्ता की गारंटी देता है । उत्पादों के ब्रांड आज व्यापार और बाज़ार के नियामक बने हुए हैं । ब्रांड की अवधारणा को विकसित करने में विपणन और विज्ञापन एजेंसियाँ महत्वपूर्ण

---

1. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 64

भूमिका निभाती हैं । वास्तव में ब्रांड बाज़ार में प्रतिष्ठित और स्थापित होने का एक माध्यम है - "आज जब भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया में राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर एक दूसरे देश मुक्त बाज़ार व्यवस्था में कड़ी व्यापारिक प्रतिस्पर्धा की स्थिति में आ गए हैं तब मार्केटिंग मिक्स या विपणन रणनीति के तहत अपने उत्पाद को बाज़ारों में प्रभावी तरीके से उतारने केलिए जो कारगर तरीके अपनाए जाते हैं उनमें ब्रांड की अवधारणा एक महत्वपूर्ण जरिया है बाज़ार में प्रतिष्ठा के साथ उतरने और स्थापित होने का ।"[1]

ब्रांड एक प्रकार का व्यापारिक चिह्न है जो शब्दों या डिजाइनों का समुच्चय होता है। यह विज्ञापित उत्पाद की छवि को, उसकी गुणवत्ता, उसकी उत्कृष्टता को किसी प्रतीक या विचार द्वारा उपभोक्ता के अन्तर्मन में गहरे स्थापित कर उसकी विशिष्ट पहचान बनाता है। प्रभा खेतान के शब्दों में "ब्रांड का अर्थ केवल एक छपा हुआ रंगीन बिल्ला नहीं, जिसे उत्पादित वस्तु पर चिपका दिया जाए । ब्रांड का मनोवैज्ञानिक और सांस्कृतिक आयाम है। ब्रांड केवल उत्पादित वस्तु का ही प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि अपनी साख भी रखता है । यह अपने बारे में उपभोक्ताओं से संवाद स्थापित करता है।"[2] आज उपभोक्ता ब्रांड यानी संकेतक के आधार पर अपना चुनाव करता है । ब्रांड के आधार पर वस्तुओं की भिन्नता को स्थापित करना इसका मुख्य ध्येय है ।

भूमण्डलीय समाज में चीज़ों का उपभोग प्रतीकात्मक हो गया है । उपभोक्ता अपनी ज़रूरत के अनुसार चीज़ न खरीदकर अपनी हैसियत, मानसिक ज़रूरत, लोभ आदि के अनुसार चीज़ों को खरीदता है । स्त्रियाँ ही ब्रांड की गिरफ्त में सबसे अधिक फंसी है । बाज़ार में ब्रांड के साथ स्त्री देह की उपलब्धता को भी जोड़ा जा रहा है । ब्रांड से स्त्री की पहचान का पता चलता है । इसी मानसिकता से लैस स्त्री पात्रों को गढ़ने का प्रयास प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों में किया है ।

---

1. कुमुद शर्मा विज्ञापन की दुनिया पृ. 115
2. प्रभा खेतान भूमण्डलीकरणः ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र पृ. 58

'अग्निसंभवा' में आइवी एक मामूली किसान की बेटी थी । आइवी से प्रभा की मुलाकात हांगकांग में हुई । पहले पहल आइवी हांगकांग में टाक्सी चलाती थी । लेकिन अब वह मिस्टर डिक्रे के मैनेजर मिस्टर शिव की सेक्रेटरी है । इसके साथ ही उसके रहने के ढंग में भी बदलाव आया है । वह अपने कमाए पैसे ब्रांडड चीज़ों पर खर्च करती है । प्रभा आइवी के बारे में सोचती है - "मैंने एक बार उसको ध्यान से देखा । अभी दो महीने पहले ही तो मैं यहाँ आयी थी..... दो महीने में उसकी उम्र दस बीस वर्ष बढ़ी हुई लगी.... चेहरे पर तनाव, गले में सलवटें, झुकी पीठ । आइवी जब कभी मुझे एयरपोर्ट पर लेने आती तो खरीदे गये कपड़ों और जूतों का लेबल दिखाना नहीं भूलती । उसे कपड़ों से बेहद लगाव था मगर आज... घिसी हुई जीन का मैला-सा सफेद स्वेटर, पैरों में मैली स्पोर्ट शू....."[1]

'आओ पेपे, घर चलें' में प्रभा 1966 में स्टूडेंट एक्सचेंज प्रोग्राम के दौरान अमेरिका घूमने गयी । वहाँ वह ब्यूटी थेरापी का कोर्स करना चाहती है । वहीं प्रभा की मुलाकात डाक्टर ड्यूपाण्ट और उनकी पत्नी मिसेज ड्यूपाण्ट से हुई । उन्होंने प्रभा की मदद की । ब्यूटी थेरापी कोर्स केलिए बेवरेली हिल हेल्थ क्लब में व्यवस्था कर दी और प्रभा को अपने वार्डरोब मैनेजर मरील के अधीन पाँच डालर प्रति घंटे पर काम केलिए रख लिया । मरील मिसेज डी के अलावा ग्रेटा गारबो, हालिवुड के दो-तीन फिल्म स्टार्स तथा क्लारा ब्राऊन का वार्डरोब भी मैनेज करती थी । मरील के काम से प्रभा को आश्चर्य होता है और वह सोचती है "चारों स्कर्ट-ब्लाउज़ को इस्त्री करके जब हैंगर में टांग कर मरील लौटी, तो खुद मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ था । यूं लगा, जैसे अभी-अभी रोडेयो ड्राइव की दुकान से सब खरीद कर लाए गए हों । स्कर्ट के कमरबन्द पर भीतर शैनल का लेबल चमक रहा था ।"[2]

---

1 प्रभा खेतान -अग्निसंभवा पृ. 56
2. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 41

मरील के अनुसार यह लेबल स्टेटस सिम्बल है । यह लेबल मिसेज डी को समाज में प्रतिष्ठित करता है । लेकिन असली रईस तो क्लारा ब्राउन है । दुनिया भर की कीमती चीज़ों को खरीदकर क्लारा बाउन ने अपने पास इकट्ठा कर रखा है । लेकिन मिसेज डी अपने वैभव को पसारना जानती है । मरील उन्हें कम पैसों में बढ़िया से बढ़िया चीज़ बनाकर देती है ।

न्यूयार्क में प्रभा मिसेज डी की बहन कैथी के साथ रहती है । कैथी का पति ब्रैडले मूर डाक्टर है । कैथी कमाती नहीं है लेकिन वह अपने पति के पैसों को धड़ल्ले से खर्च करती है । वह प्रभा को न्यूयार्क घुमाने ले जाती है । दोनों सिण्ड्रेला बार में घुसती हैं । दो गिलास कैरट हवाना मांग लेती हैं । इसके लिए पन्द्रह डालर देने पड़ते हैं याने कि 50 रुपये का गिलास । कैथी द्वारा फिसूल के पैसे बुकते देख प्रभा उससे पूछ बैठती है कि यह कैरट हवाना तो घर में भी बनाया जा सकता है तब कैथी का जवाब होता है -"यह न्यूयार्क है और इस हेल्थ बार में आकर पैसा बुकने वाला आदमी अमीर कहलाता है । यहाँ आम आदमी नहीं आता।"[1] इस बार में आने से कैथी को अपने रईस होने का गुमान होता है । वह भी मिसेज डी की तरह अपने वैभव को पसारना चाहती है ।

'छिन्नमस्ता' में मिस्टर अग्रवाल एक संपन्न व्यक्ति है । उनकी पत्नी मिसेज अग्रवाल भी एक से एक चीज़ों को बटोरने में लगी हुई है । उनकी इसी मानसिकता को उपन्यास में उनकी बहू प्रिया द्वारा उकेरने का प्रयास किया गया है - "मम्मी का भी यों दिन-रात शॉपिंग में व्यस्त रहना । दिन में तीन-तीन बार साड़ियाँ बदलना, मैचिंग की चूड़ियाँ, मैचिंग की चप्पल । उनके ड्रेसिंग रूम में लाइन से लगी हुई आलमारियाँ थीं और उनमें कम से कम एक हज़ार साड़ियाँ, ब्लाउज, पेटीकोट, चूड़ियों के ढेर, चप्पलो की कतारें, मेकअप का सामान..... हालांकि लगातीं वे केवल हल्की लिपिस्टिक और बिंदी ही थीं ।"[2] प्रिया की

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 120
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 135

सास समाज में खुद को इन चीज़ों के ज़रिए ही स्थापित करना चाहती है । इसके विपरीत प्रिया को इस संग्रही वृत्ति से चिढ़ होती थी । उसका चीज़ों के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण था । कीमती कपड़े एवं कीमती गहने न पहनने पर प्रिया की सास उसे टोका करती थी ।

ब्रांड का अर्थ है स्टेटस सिम्बल । इसकी चपेट में फँसती स्त्री का चित्रण प्रभा खेतान करती है । साथ ही साथ स्त्रियों में बढ़ती संग्रही वृत्ति की ओर इशारा करना भी लेखिका का ध्येय है ।

मीडिया और स्त्री

मीडिया जागृति के स्वरों को बुलन्द करती है, उन्हें आगे पहुँचाती है । लोगों के बीच जागरण के मुद्दों को लेकर संवाद की स्थिति बनाता है । दुनिया की आधी आबादी स्त्री को अपने बारे में बोलने, लिखने के अवसर मीडिया ने प्रदान किए । उसके अनछुए-अनकहे पहलुओं को जगजाहिर करने में मदद की । संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के दौरान मीडिया संवेदनशील हुआ । स्त्रियों की समस्याओं को, उनकी अनकही घटनाओं को सरेआम लाने का कार्य मीडिया द्वारा किया गया । स्त्री की समस्याओं, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि पर पत्र-पत्रिकाओं में लेख छपने लगे । अखबारों -पत्रिकाओं में स्त्री संबंधी समस्याओं पर पर्सनल कालम भी शुरू हुआ । यह स्त्री की अपनी आवाज़ बनने लगी ।

मीडिया में स्त्री का उपयोग दो रूपों में हुआ है - कर्मी के रूप में और सामग्री के रूप में । लेकिन वास्तविकता यह है कि स्त्री का उपयोग मीडिया द्वारा मुख्यतः सामग्री के रूप में ही किया जाता है । आज स्त्री की भोग्या छवि के साथ-साथ मीडिया स्त्री की भोक्ता छवि भी बना रहा है जिसके ज़रिए वह सीधे बाज़ार में घुसपैठ करती नज़र आती है । इस प्रकार

मीडिया ने स्त्री को बाज़ार के हित में ही परोसने का कार्य किया है, "मीडिया ने उपभोक्तावादी संस्कृति की आवश्यकता एवं दबाव के कारण घर की चहारदीवारी में कैद स्त्री को मुक्ति दिलाई और उसे घरेलू गुलामी से आज़ादी दी । एक नई छवि दी । किन्तु वास्तविकता यह थी कि घरेलू दासता से निकलकर नारी को उसने पूरी तरह आज़ाद नहीं होने दिया, बल्कि उपभोक्तावादी बाज़ार की गुलामी करने को बाध्य किया।"[1]

मीडिया द्वारा स्त्री की भोग्या छवि के साथ-साथ स्त्री की परंपरागत (सौम्य, स्नेहमयी, ममतामयी) छवि को भी पुख्ता करने के कार्य किये जा रहे हैं । इन्हीं सच्चाईयों को पर्त-दर-पर्त उघाड़ने का कार्य प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास 'स्त्री पक्ष' के ज़रिए किया है ।

उपन्यास की प्रमुख पात्र है वृंदा । अखबारों, पत्रिकाओं और दूरदर्शन में हर कहीं उसे पुरुष ही दिखाई देते । यानी सत्ता और शक्ति के केन्द्र में पुरुष था और स्त्री हर कहीं अनुपस्थित थी, "अखबार में कितने कितने पुरुषों की तस्वीरें छपतीं... कितने नेता, इस देश के कर्णाधार अवतार पुरुष, परमहंस देव, विवेकानंद... भगवान भी तो पुरुष है राम, कृष्ण, शंकर।"[2] वृंदा अखबारों में स्त्रियों की तस्वीरें खोजती । फिल्मी पेज के अलावा स्त्रियों की खबरें उसे और कहीं भी देखने को नहीं मिली । स्त्रियाँ विज्ञापन, सौन्दर्य प्रतियोगिता, फैशन शो में भाग लेती सुन्दर मॉडलों के रूप में उपस्थित थी, "वैसे ज़्यादातर औरतों की तस्वीरें विज्ञापन में छपती या फिर सौन्दर्य प्रतियोगिता में औरतें हिस्सा लेतीं । दूरदर्शन में फैशन शो दिखाया जाता, उसमें कितनी सुन्दर मॉडलें रहती थीं।"[3] यह सब देखकर वृंदा में कुछ अलग बनने की तमन्ना जाग उठती है । इस तरह मीडिया में भी प्रमुख स्थान पुरुषों ने ही हथिया रखा है और इसके ज़रिये समाज में यही स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है कि स्त्री मात्र देह है । इसके परे स्त्री की कोई स्वतंत्र पहचान नहीं है ।

---

1 सुभाषिणी पालीवाल भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता पृ. 100
2. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 23
3. वही पृ. 24

मीडिया द्वारा स्त्री के व्यक्तित्व विकास पर भी ध्यान नहीं दिया जाता है । स्त्री को मात्र एक आदर्श गृहस्थिन बनाए रखने, अपनी खूबसूरती को निखारने के नुस्खे ही अखबारों-पत्रिकाओं द्वारा प्रदान किये जाते हैं । उपन्यास में वृंदा इस सिलसिले में सोचती है - "सप्ताह में केवल एक दिन दैनिक अखबार का कोई एक भीतरी कॉलम औरतों केलिए होता । नए व्यंजन, चेहरे पर कैसे निखार लाया जाए ? व्यक्तिगत समस्या, मोटापा कैसे दूर करें । वृंदा सोचती कि भोजन पकाने, रूप संवारने के अलावा औरत की ज़िन्दगी में अन्य और कोइ काम नहीं । किन्तु वह देखती कि उसकी माँ ध्यान से अखबार का यही कॉलम पढ़ती । और अधिकतर पत्रिकाओं में, दूरदर्शन सब जगह पुरुष की उपस्थिति ।"[1]

उपभोक्तावादी संस्कृति का वाहक मीडिया स्त्री की भोग्या छवि के साथ-साथ उसकी परंपरागत भूमिका को पुख्ता करने में भी सहायक हुआ है । इसे उघाड़ने का कार्य प्रभा खेतान ने किया है । लेखिका इस सच्चाई से भी हमे रू-ब-रू कराती है कि स्त्री को घर के कैद से मुक्त कर बाज़ार के केन्द्र में उसे ला खड़ा करने में मीडिया की महत्ती भूमिका रही है ।

विज्ञापन और स्त्री

विज्ञापन और स्त्री आज दोनों एक-दूसरे के पर्याय बन गए हैं । आज की मुक्त बाज़ार व्यवस्था में स्त्री देह, उसका सौन्दर्य विज्ञापनदाताओं के हक में बहुत कारगर भूमिका निभा रहा है । उपभोक्तावादी संस्कृति को प्रोत्साहित करके बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पाद को बाज़ार में स्थापित करनेवाले जो विज्ञापन हैं, उनमें बहुत कम ऐसे विज्ञापन हैं जहाँ स्त्रियों का चित्रण न हो । स्त्रियों से संबंधित उत्पादों के विज्ञापन में स्त्री के आकर्षक रूप को दिखाना

---

1. प्रभा खेतान - स्त्री पक्ष पृ. 23

विज्ञापन की स्वाभाविक माँग हो सकती है । लेकिन ऐसे उत्पादों के (शेविंग ब्लेड, टायर, जूते आदि) विज्ञापन में भी स्त्री देह का खुला प्रदर्शन देखा जा सकता है जिनका स्त्री से विशेष कोई तालुकात ही नहीं है । इस तरह स्त्री सौन्दर्य को बाज़ार की वस्तु बनाकर उपभोग की ही एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है । जर्मेन ग्रीयर लिखती है - "हर सर्वेक्षण यही बताता है कि आकर्षक स्त्री का बिंब विज्ञापन का सबसे प्रभावी लटका है । वह नई कार के मडगार्ड पर बैठी हो, या गहनों से दमकती उसमें कदम रख रही हो, वह किसी पुरुष के पाँवों के पास लेटी उसके नए जुर्राबों को सहलाए, वह पेट्रोल पंप को चुनौती की मुद्रा में थामे हो या किसी नए शैंपू की दिव्यता से अभिभूत स्लोमोशन में किसी वनप्रांतर में थिरके, वह जो भी करे, उसकी छवि बिकती है।"[1] विज्ञापनों में स्त्रियों का ओवर एक्सपोज़र हो रहा है। स्त्री का भोग्या के रूप में चित्रण विज्ञापन जगत का अघोषित नियम सा बन गया है । विज्ञापनों में स्त्री को चारे की तरह इस्तेमाल किया जाता है ।

विज्ञापन के ज़रिए स्त्री-सौन्दर्य की समकालीन परिभाषा निर्मित की जा रही है । इसी के बलबूते पर आज कॉस्मेटिक उद्योग, कॉस्मेटिक सर्जरी उद्योग, डायटिंग उद्योग का फैलाव हो रहा है । इस सौन्दर्य मिथक के दलदल में फँसती स्त्री का चित्रण प्रभा खेतान ने 'आओ पेपे, घर चलें' उपन्यास में किया है । 'आओ पेपे, घर चलें' में प्रभा 1966 में स्टूडेंट एक्सचेंज प्रोग्राम के दौरान अमेरिका घूमने जाती है । वहाँ वह ब्यूटी थेरापी का कोर्स करना चाहती है। बेवरली हिल हेल्थ क्लब का नज़ारा देखने लायक था - "भीतर एक अलग ही नजारा था। एक लम्बा-सा हाल । करीब बीस-पच्चीस कसरत करने की अलग-अलग मशीनों पर कुछ स्त्रियाँ स्थिर साइकिल पर पैर चलाए जा रही थी । कुछ 'वाइब्रेशन बेल्ट' पर, कुछ नाव वाली मशीन पर यंत्रचालित नाव चला रही थी । कुछ 'रोलर मशीन' पर झुकी हुई । पूरे हाल में गुलाबी आभा । दीवार का

---

1. जर्मेन ग्रीयर, मधु बी. जोशी (अनु) बधिया स्त्री पृ. 59

रंग भी गुलाबी । अलग-अलग कद, अलग-अलग शरीर के ढांचे । सबको अपने शरीर से शिकायत । वजन घटाना है । कमर चौडी हो गई है । किसे के कूल्हे मोटे हो गये हैं । किसी की बांहें मोटी हैं । देखनेवालों को चाहे न लगे, पर उन महिलाओं को अपने-आप से शिकायत थी।"[1] यह नज़ारा प्रभा केलिए बिल्कुल नया था ।

प्रभा ने अमेरिका में करीब से देखा कि वहाँ की साठ-सत्तर तक की बूढ़ी स्त्रियों में अपनी खूबसूरती को बरकरार रखने की चाहत किस कदर हावी है । न्यूयार्क में कैथी प्रभा को हेयर सैलून ले जाती है "उसने वह कागज मेरी ओर बढ़ा दिया । उसमें पचासों तरह के हेयर कट्स के नाम थे, जिनमें नाम यानी बाल को काटने के स्टाइल हर सप्ताह खाने की मीनू की तरह बदल दिए जाते थे । ईस्ट विलेज में स्थित यह हेयर सैलून नित नये स्टाइल केलिए बड़ा मशहूर था ।"[2] इस हेयर सैलून का हेयर कटर जिमी प्रभा से कहता है कि वह बूढ़ी औरतों के बाल काटना ज़्यादा पसंद करता है । उनके चेहरे पर उसे एक अजीब सी खुशी दिखाई देती है । उम्र में वे कम लगने लगती है ।

कैथी प्रभा को रीजेन्सी हेल्थ सेंटर भी ले जाती है । वहाँ का नज़ारा भी देखने लायक था । दीवारों पर तरह-तरह के विज्ञापन चिपकाये हुए थे जिनके ज़रिए यह दिलासा दिया जा रहा था कि आपकी खूबसूरती हमारे हाथों में सुरक्षित है, "हम महीने भर में आपकी उम्र दस साल घटा देते हैं । आप लीली की तरह खिल उठेंगी, गुलाब की तरह महक उठेंगी ।"[3] इस रीजेन्सी की खासियत है मादाम बोस्की द्वारा तैयार किया हुआ मड पैक। इस मड पैक को रीजेन्सी ने बड़ी कीमत देकर मादाम बोस्की से हासिल की है । इसकी कीमत है 35 डालर। न्यूयार्क की सबसे बड़ी सेलेब्रिटी मादाम जानसन इस रीजेन्सी हैल्थ सेंटर की ग्राहक है । उन्हें रीजेन्सी पर पूरा भरोसा है । उनका विश्वास है कि रीजेन्सी के कारण ही वे तरोताज़ा

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 27
2. वही पृ. 113
3. वही पृ. 123

रहती हैं कि लोग उनके चेहरे की ओर आकर्षित होते हैं ।

विज्ञापन द्वारा गढ़े जा रहे सौन्दर्य मिथक के चंगुल में फँसती स्त्री आज देहग्रस्त होती जा रही है । कुकुरमुत्ता की तरह पनपते ब्यूटी पार्लरों में अपने पैसे झोंक रही है जो उनकी त्वचा को हमेशा तरोताज़ा बनाये रखने का दावा करते हैं । इसे उघाड़ते हुए प्रभा खेतान ने दर्शाने का प्रयास किया है कि विदेशी स्त्रियों में आकर्षक बने रहने की चाहत हावी है । ब्यूटी पार्लरों की सेवाएँ कुछ विशेष वर्ग की स्त्रियों को ही हासिल हो सकती है । इनका सर्वसाधारण से कोई वास्ता ही नहीं होता ।

श्रम शोषण और स्त्री

भूमण्डलीय समाज में स्त्री के लचीले श्रम की मांग बढ़ी है । स्त्री के असंगठित होने की वजह से उसके श्रम को लचीला माना जा रहा है । राष्ट्र-राज्य की भूमिकाओं को सीमित कर सबसिडी में कटौती की जा रही है । जिसकी वजह से बढ़ती मँहगाई का सामना करने केलिए स्त्री को अल्पावधि रोज़गारों को अपनाना पड़ रहा है । असंगठित क्षेत्रों में काम करनेवाली स्त्रियों की संख्या बढ़ी है । घरेलू उद्योग के नाम पर स्त्री का शोषण बढ़ा है । घरेलू उद्योग का क्षेत्र अपने आप में अदृश्य और असंगठित क्षेत्र है । संगठन के अभाव में स्त्रियाँ कम कीमत में, खराब परिस्थिति में काम करने को बाध्य है । बच्चों की देखरेख, मातृत्व की छुट्टियों जैसी कानूनी सुविधाओं से भी वह वंचित रह जाती है । आज स्त्री के सामने सबसे बड़ा संकट स्त्री श्रम की पहचान की है । स्त्री के दिन-रात खटने के बावजूद उसे कम पगार दिया जाता है । इसी का चित्रण प्रभा खेतान ने 'अग्निसंभवा' में किया है ।

'अग्निसंभवा' उपन्यास में चीनी महिला आइवी प्रभा को बताती है कि किस प्रकार

उनके श्रम का शोषण हांगकांग के व्यापारियों द्वारा किया गया । चीन में माओ के बाद देंग ने देश के दरवाज़े विदेशियों केलिए खोल दिए । देश के विकास के नाम पर विदशियों ने आम जनता को लूटा, देश का शोषण ही किया है । "इसके बाद देंग जिया पोंग ने सत्ता सम्हाली.. पहला टूरिस्ट डेलीगेशन पश्चिम से आया था । देंग ने कहा तुम हमें काम सिखाओ हम अपना सत्ता श्रम देते हैं । रातों रात चीन के दरवाज़े खुल गये, शेनजेन का इलाका जो कि न्यू टेरिटरी के नाम से जाना जाता है, देंग ने हांगकांग के व्यापारियों को सौंप दिया । दो वर्ष के अन्दर शेनजेन की काया पलट हो गयी । बड़े-बड़े मकान बन गये, कारखाने खुले।"[1]

आइवी अपने शराबी पति को छोड़कर शंघाई से शेनजेन अपने बड़े भाई के साथ भाग आई । उसने कोर्ट में तलाक की अर्जी दी । वह एक छः तल्ले की फैक्ट्री में कमीज की सिलाई का काम करती थी ।दिन-रात खटना पड़ता । इसके बावजूद न भर पेट खाना मिलता और न ही मजूरी । वे पाँच सौ औरतें थीं । सुबह आठ बजे से बारह बजे फिर एक बजे से रात आठ बजे तक कपड़े सिलना पड़ता । पूरे चीन में दो ही दिन छुट्टी होते-पहली मई और चीन का स्वतंत्रता दिवस । कठिन परिश्रम के बाद भी उन्हें मुश्किल से महीने में चालीस-पचास हांगकांग डॉलर दिये जाते ।

आइवी का भाई चमड़े की एक फैक्ट्री में काम करता था । उसकी भी यही हालत थी "मेरा बड़ा भाई अलग दुःखी हो रहा था । उन लोगों को ओवर टाइम काम करना पड़ता और दाम घटा दिये गये हैं, यह कहकर मज़दूरी के पैसे काट दिये जाते ।"[2] इस तरह देश के विकास के नाम पर आइवी और उसके भाई के श्रम का शोषण ही किया गया । अपनी दयनीय स्थिति से तंग आकर आइवी शेनजेन से हांगकांग चली आती है ।

---

1 प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 58-59
2. वही पृ. 59

भूमण्डलीय समाज में स्त्री श्रम को पहचान दिलाने की मंशा के साथ-साथ स्त्री जीवन के इस पहलू को उद्घाटित करने का कार्य प्रभा खेतान ने किया है ।

निष्कर्ष

भूमण्डलीय समाज में स्त्री को अपनी मानवीय गरिमा से अपदस्थ कर पण्य वस्तु में तब्दील करने की साजिशें जारी हैं । बाज़ार के केन्द्र में खड़ी स्त्री उत्पाद को बेचती हुई खुद उत्पाद में तब्दील होती जा रही है, जिसके ज़रिए बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपना प्रचार-प्रसार करते नज़र आते हैं । उपभोक्तावादी संस्कृति के वाहक मीडिया एवं विज्ञापन ने स्त्री को एक नई छवि (भोग्या की) प्रदान की है । मीडिया एवं विज्ञापन में स्त्री अपने अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन करती दिखाई देती है जिसके ज़रिए स्त्री मुक्ति का दावा किया जा रहा है । भूमण्डलीय समाज में ब्रांड स्त्री की पहचान को स्थापित करने का प्रतीक बन गया है । आज अपने पैरों पर खड़ी स्त्री धड़ल्ले से ब्रांड पर पैसे खर्च कर रही है, ब्यूटी पार्लरों पर पैसे झोंक रही हैं। वहीं सबसे निचले पायदान पर स्त्री श्रम को खड़े होने को बाध्य किया जा रहा है । इन सच्चाईयों से आगाह करते हुए प्रभा खेतान इसके विरुद्ध अपना आवाज़ बुलन्द करती है । उनके अनुसार अब चुनाव स्त्रियों को करना है कि उन्हें एक निष्क्रिय उपभोक्ता बनना है या एक सक्रिय सृजनशील व्यक्ति ।

पाँचवाँ अध्याय

प्रभा खेतान के उपन्यासों का संरचना पक्ष

संरचनात्मक विशेषताएँ

रचना को सुव्यवस्थित ढंग से संवारने का साधन है शिल्प या संरचना पक्ष । शिल्प के माध्यम से ही बिखरे तत्व समन्वित हो शक्ति प्राप्त करते हैं और सुन्दर कलाकृति का रूप धारण करते हैं । उपन्यासकार शिल्प के ज़रिए अपने विषय का विकास करता है, उसे मूर्त रूप देता है, अर्थबोध कराता है । भावपक्ष तथा संरचना पक्ष के संयोग से ही रचना पूर्ण होती है । स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में कथ्य के साथ-साथ शिल्प के स्तर पर भी क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुआ है । नेमीचन्द्र जैन के शब्दों में "शिल्प के स्तर पर निस्सन्देह बहुत से लेखकों ने अपने अपने ढंग से नये-नये प्रयोग किये हैं और अपनी भाववस्तु को अधिक से अधिक प्रभावी और चमत्कारपूर्ण ढंग से संप्रेषित करने केलिए कथा की बहुत-सी शैलीगत युक्तियाँ अपनायी हैं । इस दृष्टि से इधर के उपन्यासों में पर्याप्त विविधता है।"[1] विषय को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने केलिए प्रभा खेतान ने उपन्यासों में नये-नये प्रयोग किये हैं ।

कथ्यपरक नवीनताएँ

प्रभा खेतान ने स्त्री जीवन की त्रासदी, उसके संघर्ष को अपनी रचना का विषय बनाया है ।

'आओ पेपे, घर चलें' की प्रमुख कथा प्रभा की है जिसे 1966 में स्टूडेंट एक्सचेंज प्रोग्राम के दौरान अमेरिका जाने का अवसर मिलता है । वहाँ वह ब्यूटी थेरापी का कोर्स करती है । कथा का परिवेश लॉस एंजेल्स, सेण्ट लुइस और न्यूयार्क है । आइलिन, मरील, क्लारा ब्राउन, मिसेज डी, कैथी, हेल्गा बेरी, नैन्सी और लारा की प्रासंगिक कथा भी इसके साथ-साथ चलती है । विदेशी स्त्री की पीड़ा, उनके अकेलेपन को उभारना लेखिका का मकसद है,

---

1 नेमीचन्द्र जैन अधूरे साक्षात्कार पृ. 179

"दरअसल, 'आओ पेपे, घर चलें' का वस्तु विन्यास और कथ्य बड़ा मार्मिक है । शिल्प संयोजन अभिनव है । यह कथा सिर्फ अमरीकी औरत की नहीं, अपितु वैश्विक स्त्री की कथा है ।"[1] समय का अन्तराल एक साल में सिमटा हुआ है ।

'तालाबंदी' में मालिक-मज़दूर संघर्ष, मिल मालिक श्यामबाबू के अन्तर्द्वन्द्वों को प्रस्तुत किया गया है । उपन्यासकार ने एक व्यक्ति के आत्मसंघर्ष को, बंगाल में मार्क्सवाद से व्याप्त तनाव एवं आतंक की स्थिति को औपन्यासिक संरचना के ज़रिए अभिव्यक्ति दी है ।

'छिन्नमस्ता' में एक स्त्री की संघर्ष गाथा का चित्रण है । अतीत की घटनाओं के सहारे कथा आगे बढता है । उपन्यास का अन्तराल तेरह दिवस का है । एक संपन्न घराने में जन्मी प्रिया अपने जीवन में अकेली है । व्यवसाय उसकी पहचान है । व्यावसायिक जगत में कदम रखते ही वह सामाजिक घेरे के अतिक्रमण में सफल हो जाती है । नीना, तिलोत्तमा, जूडी, फिलिप, प्रिया की माँ, दाई माँ, सरोज की प्रासंगिक कथा भी इसके साथ-साथ चलती है ।

'एड्स' में वैश्विक स्तर पर छाए एड्स के आतंक को प्रस्तुत किया है । उपन्यास का अन्तराल लगभग चार दिन का है । उपन्यास के केन्द्र में प्रभा है । एन्ड्रू स्पेन्सर, कुक्कू, श्वार्ज, हैम्प, पेट्रोशिया की प्रासंगिक कथा भी साथ-साथ चलती है । उपन्यास में खाडी युद्ध का चित्र भी उकेरा गया है ।

'अग्निसंभवा' के केन्द्र में एक चीनी किसान की बेटी आइवी है । आइवी के ज़रिए वैश्विक स्तर पर स्त्री के संघर्ष को चित्रित किया है । चीन की क्रांति, शिव, प्रभा की कथा भी इसके साथ-साथ चलती है । उपन्यास का अन्तराल पाँच दिन का है ।

'अपने अपने चेहरे' की प्रमुख कथा रमा की है । दूसरी स्त्री होने के नाते उसके

---

1. निमिषा राय प्रभा खेतान का औपन्यासिक कृतित्व पृ. 39

अन्तर्द्वन्द्व को उभारा गया है । मिस्टर गोयनका, मिसेज गोयनका, रीतू, कुणाल, प्रेमा, स्मिता, उमेश, रमेश की प्रासंगिक कथा भी साथ-साथ चलती है ।

'स्त्री पक्ष' में वृंदा के बचपन से शादी के बाद तक का घटनाक्रम है । उसे जिन-जिन परिस्थितियों एवं घटनाओं का सामना करना पड़ता है, उसका व्यक्तित्व किस प्रकार रूपायित हुआ है इन सबका चित्रण हुआ है । उपन्यास का अन्तराल लगभग पच्चीस वर्ष का है । उपन्यास का प्रारंभ वृंदा के बचपन से होता है । वृंदा की पीड़ा, उसके अकेलेपन को उपन्यास में उकेरा है । उसकी बुटिक उसकी पहचान है उसके जीवन का उद्देश्य है ।

'पीली आंधी' में एक मारवाड़ी परिवार के तीन पीढ़ियों का चित्र उकेरा है । साथ ही साथ सोमा के संघर्ष को भी अभिव्यक्ति दी है ।

प्रभा खेतान ने स्त्री जीवन के नए-नए यथार्थों को उपन्यास के कथ्य के रूप में स्वीकार किया है जो उनकी समस्त जीवन दृष्टि का परिचायक भी है । उन्होंने स्त्री को और उसकी समस्याओं को आँकने का कार्य किया है ।

पात्र परिकल्पना

प्रभा खेतान के पात्र प्रतिभा एवं अस्मिता से लैस है । 'आओ पेपे, घर चलें' की प्रमुख पात्र प्रभा है । प्रभा के अलावा आईलिन, मरील, नैन्सी, लारा, मिसेज डी, क्लारा ब्राउन, कैथी, हेल्गा बेरी, डाक्टर डी, डॉक्टर ब्रैडले मूर, डॉक्टर बेरी अन्य पात्र है । सारे पात्र अकेलेपन के शिकार हैं और उससे मुक्ति पाने केलिए छटपटा रहे हैं ।

'तालाबंदी' उपन्यास का प्रमुख पात्र श्यामबाबू है । अन्य पात्र अजित, संजय,

शेखर दा, सुमित्रा, पीनू, विक्रम, रेवा दी, रफीक, पप्पू अहमद, मास्टर हरिनारायण चट्टोपाध्याय आदि है । मालिक-मज़दूर संघर्ष के दौरान अपनी फैक्टरी को बचाने में जुटे श्यामबाबू के संघर्ष को चित्रित किया गया है । उनके इस संघर्ष में अन्य पात्र भी उनका साथ देते नज़र आते हैं।

'छिन्नमस्ता' की प्रमुख पात्र प्रिया है । प्रिया एक व्यावसायिक महिला है जिसकी आत्मीयता का घेरा दूसरों की अपेक्षा व्यापक एवं विस्तृत है । अन्य पात्र है प्रिया की माँ, दाई माँ, विजय, अजय, सरला, सरोज, मिसेज अग्रवाल, मिस्टर अग्रवाल, नरेन्द्र, जूड़ी, फिलिप, नीना, तिलोत्तमा, संजू । ये तमाम पात्र अपनी ज़िन्दगी में जूझते नज़र आते हैं ।

'एड्स' का प्रमुख पात्र है एन्ड्रू स्पेन्सर । एड्स से भयभीत एन्ड्रू स्पेन्सर कहीं भी टिक नहीं पाता । अन्य पात्र है प्रभा, कुक्कू, श्वार्ज, हैम्प, पेट्रोशिया, इरीना । प्रभा अकेली है, जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज है जिसने स्त्री की तयशुदा भूमिका को नकारा है । अन्य पात्र अपनी ज़िन्दगी से संतुष्ट नहीं है ।

'अग्निसंभवा' की प्रमुख पात्र है आइवी । अन्य पात्र है शिव, प्रभा, डिक्रे, जोसेफ, वॉग, जैकी डिक्रे । वॉग नरेटर के रूप में आता है । वह चीन की क्रांति का दर्शक है और उन घटनाओं को चिट्ठी के ज़रिए अपनी माँ आइवी के पास भेजता है ।

'अपने अपने चेहरे' के केन्द्र में दूसरी स्त्री रमा है । जीवन में संघर्षरत रमा ने समाज में अपनी एक अलग पहचान बना ली है । अन्य पात्र मिस्टर गोयनका, मिसेज गोयनका, रीतू, प्रेमा, स्मिता, उमेश, रमेश, नीना जीवन को जी नहीं रहे बल्कि झेल रहे हैं ।

'पीली आँधी' की प्रमुख पात्र सोमा है । सोमा सामाजिक चौखटे का उल्लंघन कर एक विवाहित पुरुष सुजीत सेन का चुनाव करती है । अपनी ज़िन्दगी को अपने नज़रिए से जीती

है । पद्मावती, निमली बाई, पन्नालाल सुराणा, माधो, सांवर, राधा, मोहन, गौतम, राजू, लता, सुजीत, चित्रा, किशन, रामेश्वर, मिस्टर अगरवाल, भीखन, सेठ बिसेसर लाल, शील बाबू, सेठ गुरमुख रायजी अन्य पात्र है ।

'स्त्री पक्ष' उपन्यास की प्रमुख पात्र है वृंदा । उद्देश्यहीन ज़िन्दगी जीनेवाली वृंदा केलिए बुटिक उसका उद्देश्य बन जाता है । पति सुमित के तलाक देने पर वह टूटकर नहीं बिखरती बल्कि अपने बच्चों केलिए सहारा बनती है । देविका, सुमित, आर्जव, सुनीता, ऋत्विक, रमेश महाजन, उषा महाजन, पिंकी आदि अन्य पात्र अकेलेपन के शिकार हैं ।

प्रभा खेतान के पात्र अपने आप में अपूर्व हैं । उनके उपन्यासों में स्त्री पात्र प्रमुख पात्रों के रूप में और पुरुष पात्र गौण पात्रों के रूप में आते हैं । अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रति सजग प्रभा खेतान के स्त्री पात्र जीवन के थपेड़ों से जूझते हुए अपने मुकाम को हासिल करती हैं । समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाओं को नकारती हैं । अपनी मानवीय गरिमा, अधिकारों केलिए संघर्षरत है । समाज को चुनौती देते हुए अपनी एक अलग पहचान बनाने में कामयाब होती हैं ।

आत्मकथात्मक शैली

आत्मकथात्मक शैली में उपन्यास का कोई न कोई पात्र लेखक का ही प्रतिनिधित्व करता है । प्रभा खेतान के अधिकांश उपन्यासों में आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । इसके ज़रिए लेखिका के ही जीवन का प्रत्यवलोकन हुआ है । प्रभा खेतान 1966 में स्टूडेंन्ट एक्चेंज प्रोग्राम के दौरान अमेरिका जाती है । इसी का चित्रण 'आओ पेपे, घर चले' में हुआ है । उपन्यास में प्रभा ब्यूटी थेरापी का कोर्स करने एवं आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने केलिए

अमेरिका जाती है । वहाँ की स्त्री की पीड़ा, उसके संघर्ष को करीब से देखने का मौका भी प्रभा को मिलता है । जैसे - "मैं स्टूडेंट एक्सचेंज प्रोग्राम में जा रही थी । यह 1966 का साल था। विदेशी मुद्रा पर बेहद सख्ती । टोकियो पहुँचते ही पहला समाचार डॉक्टर मोमोसे से मिला कि भारतीय मुद्रा का अवमूल्यन हो गया है ।"[1]

'छिन्नमस्ता' प्रभा खेतान की आत्मकथा का अधूरा अंश है । प्रिया की शादी से पहले तक की कहानी प्रभा खेतान की ही है । संपन्न घराने में जन्मी प्रभा खेतान माँ के प्यार से वंचित, परिवार का एक उपेक्षित हिस्सा बनकर रहने को अभिशप्त थी, "उन्होंने कभी मुझे प्यार नहीं किया, कभी गोद में लेकर चूमा नहीं । मैं चुपचाप घंटों उनके कमरे के दरवाज़े पर खड़ी रहती। शायद अम्मा मुझे भीतर बुला लें । शायद...हाँ, शायद अपनी रजाई में सुला लें । मगर नहीं, एक शाश्वत दूरी बनी रही हमेशा हम दोनों के बीच । अम्मा मेरी बातों को समझ नहीं सकती ।"[2]

'अग्निसंभवा' में चीनी महिला आइवी से प्रभा की मुलाकात, वैश्विक स्तर पर स्त्री के संघर्ष को चित्रित किया है । "आइवी ! पहले पहल उससे कब मिलना हुआ था ? आज से कोई दस साल पहले व्यापार के वे शुरू के दिन थे, बिल्कुल ताजा, हर अनुभव केलिए उत्सुक मन ।"[3]

'अपने अपने चेहरे' की रमा प्रभा खेतान ही है । रमा के ज़रिए प्रभा खेतान ने दूसरी स्त्री के अन्तर्द्वन्द्वों को उभारने का प्रयास किया है, "मेरे बारे में लोग इतनी बकवास करते हैं। इतनी अधिक कि कभी कभी आइने में अपना चेहरा देख मैं चौंक जाती हूँ । यह क्या मेरा चेहरा है? यह क्या मैं हूँ । अपने बचाव में मेरे पास अब और कोई शब्द नहीं बचे हैं । भीड़ में लोगों के बीच मेरे गाल सुलगने लगते हैं, आवाज़ लड़खड़ाने लगती है, घबराई हुई आँखें किसी कोने

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 7
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 35
3. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 51

की तलाश करने लगती हैं । मुझे पता नहीं, कौन मुझसे बात करेगा और कौन नहीं ? मेरे अपने परिचित आँखें बचाकर निकल जाते हैं, मैं एक दूसरी औरत हूँ । मेरी किस्म घटिया है ।"[1]

'एड्स' में कुक्कू, श्वार्ज, हैम्प, पेट्रोशिया से प्रभा के सरोकार और व्यावसायिक जगत् का चित्रण है, 'दस साल?' उसने बालों को अपनी लम्बी उंगलियों से पीछे करते हुए पूछा.... 'हम लोग तुमसे पहले पहल कब मिले थे?'

'अस्सी के दशक में । तुम, मैं और श्वार्ज फ्रैंकफर्ट में एक भारतीय रेस्टोरेण्ट में खाना खाने गये थे ।"[2]

पूर्वदीप्ति शैली या फ्लेश बैक शैली

फ्लैश का अर्थ होता है 'प्रकाश' और बैक का अर्थ है 'पीछे' । फ्लैश बैक का अर्थ है पिछले जीवन को प्रकाशित करना । पात्र की स्मृति में कुछ घटनाओं को दिखाकर उसकी याद को ताजा करने केलिए फ्लैश बैक पद्धति अपनायी जाती है । यह सबसे अधिक प्रचलित और प्रयुक्त शैली है । 'छिन्नमस्ता' में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग हुआ है । प्रिया अपने बचपन, यौवन एवं वैवाहिक जीवन की घटना को स्मृति के सहारे याद करती है "मैं स्मृतियों की पगडंडी पर सम्हाल-सम्हालकर कदम रख रही हूँ । कभी आँचल झाड़ियों से उलझता है, कभी पैरों में नुकीले पत्थर चुभते हैं कभी सामने कोहरे के बादल... सामने कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता... और कभी पैरों के नीचे ठंडी ओस की बूँदे, मुझे मेरे आँसुओं की याद दिलाती हुई ।"[3]

'पीली आंधी' में एक मारवाड़ी परिवार के तीन पीढ़ियों की कहानी कही गई है । दो पीढ़ियों की कहानी लेखिका ने अपनी माँ से सुनी थी - "कहानी को यहीं विराम देना पड़ा रहा

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 197
2. प्रभा खेतान एड्स पृ. 77
3. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 17

है । इसलिए कि इतनी भर कहानी मैंने अपनी अम्मा से सुना था । माँ की धर्मबहन थी राधाबाई । उस लिहाज से राधा बाई के दोनों बेटे, माधो दासजी रूंगटा तथा सांवरमलजी रूंगटा उनके भानजे हुए । होली दीवाली, बार-त्यौहार आना-जाना लगा रहता । बचपन में प्रायः मैं झरिया वाले रूंगटा परिवार की चर्चा सुनती ।"[1]

'तालाबंदी' में व्यावसायिक जगत में प्रतिष्ठित श्यामबाबू अपने बीते हुए कल को अपनी स्मृति के सहारे याद करते हैं "बाप थे बजोरिया के यहाँ मुनीम जी । खास घरू आदमी, पर भले-पन का जमाना है क्या ? बापू जी ने तो कभी एक पैसा रखा नहीं । तीन-तीन बहनों के बाद श्याम बाबू इकलौते लड़के थे । बाई लोगों की शादी में क्या हुआ जो सेठजी ने पचीस-पचीस हज़ार के टुकडे फेंक दिये । बापू जी तो दूसरों का धन सम्हालते-सम्हालते ही चले गये । बेटे के लिये वे क्या कर पाये !

उनको अभी भी हरीसन रोड का वह बड़ा सा चौकवाला मकान याद है । दो कमरों में सारा परिवार रहता था । बरामदे को चौका बनाया हुआ था । पाखाना, नहान घर, सब साझे के । बाड़ी में रात-दिन आपस में कच-कच, बच्चों की चिल्लपों ।"[2]

डायरी शैली

डायरी स्वयं से संवाद होता है । आधुनिक उपन्यासों में डायरी शैली का प्रयोग हुआ है । 'पीली आँधी' का अन्त ही पन्नालाल सुराणा की डायरी से होता है, जो इस सच्चाई का पर्दाफाश करता है कि पद्मावती और पन्नालाल सुराणा एक दूसरे से बेइन्तहा प्यार करते थे । लेकिन दोनों एक नहीं हो पाए और पन्नालाल सुराणा की मौत हो जाती है । उनके स्मृति चिह्न के रूप में पद्मावती (ताई) इस डायरी को आजीवन सुरक्षित रखती है - "लाल कपड़े की तीन-चार तह

---

1. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 131
2. प्रभा खेतान तालाबंदी पृ. 21

खुल चुकी थी, और अब उन दोनों के सामने भागवत् गीता के बदले एक लाल रंग की डायरी थी । उस पर काली स्याही से लिखा हुआ था - "व्यक्तिगत्"[1] आगे माधो की विधवा पद्मावती के संबंध में पन्नालाल सुराणा अपने विचारों को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "सुबह मैंने उसको देखा पूजा से उठ चुकी थी... आंगन में खड़ी-खड़ी नौकर से बात कर रही थी... माथे का सरका हुआ पल्ला उसकी खुली हुई धृष्ट आँखें मानो कहती हुई... बिना किसी कारण के मुझे तुम्हारी प्रशंसा नहीं चाहिए । प्यार, प्यार है । इसका प्रत्येक विश्लेषण व्यर्थ है । चाहे वह किसी भी स्तर का क्यों न हो । तुम प्यार करते हो, मैं भी तुमसे प्यार करती हूँ..... भावनात्मक रूप में... अपने अंतरमन से, भीतरी समझ के साथ । मानती हूँ प्यार अँधा होता है ।

मैं कुछ नहीं देख पा रहा था, मेरी आँखों के सामने बस केवल तुम हो पद्मावती, केवल तुम । पिछले दो वर्षों से दिन-रात, हर वक्त, मैंने बस केवल तुम्हारे बारे में सोचा है । उस क्षण के बारे में सोचा है । जब पहले-पहल देखा था ।"[2] माधो की मृत्यु के बाद की घटनाओं का जिक्र भी माधो की कोलियारी के मैनेजर पन्नालाल ने अपनी डायरी में किया है । साथ ही साथ पन्नालाल की मौत के साजिशों का खुलासा भी पाठकों के सामने डायरी के ज़रिए किया गया है ।

'अपने अपने चेहरे' में डायरी शैली का प्रयोग हुआ है । रमा की डायरी स्त्री के अनकहे-अनछुए पर्तों को पाठकों के सामने उघाड़कर रखता है - "किसी पन्ने पर लिखा हुआ था लेकिन स्वभाव में रचा-बसा यह प्रगाढ़ प्रेम ! किसी का साथ खोजते हुए हाथ । किसी से बात करने की चाह, संबंधों में स्वयं को तलाशने की ज़रूरत । पर्त-दर-पर्त खुलती हुई समझ, आस्था और विश्वास की ताकत और आपसी संवाद पर आधारित तात्कालिक सुख । क्या इसे अनैतिक कहा जाएगा ? ऐसा तो मैंने कुछ नहीं किया । स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम घटता

---

1 प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 271

2. वही पृ. 277

आया है और घटता रहेगा । लहरों में डूबी हुई नुकीली चट्टानों से पूछो, अपनी तमाम नैतिक कठोरता के बावजूद क्या वे प्रेम की आर्द्रता मिटा पाएँगी ?"[1] रमा की डायरी में रमा के जीवन के कसैले यथार्थ के साथ-साथ समाज के खोखलेपन को भी दर्ज किया गया है "यह कैसा समाज है और कितने सतही लोग । प्रत्येक दूसरे केलिए उपेक्षा । भीड़ में नीचे कंधों से ऊपरी कंधों पर उछलते हुए सुविधावादी लोग। सिद्धांतों की आड़ में मानवीय संवेदना को चबाते हुए जो पिच्च से संबंधों को थूक देते हैं । नहीं, मुझे इस माहौल से घृणा नहीं होती, बस एक ठंडी उपेक्षा आ गई है मन में । क्या इसलिए कि मैं इनसे आहत हूँ, त्रस्त हूँ ? इनके ऊँचे कद से आतंकित हूँ ? नहीं, इनके पास आदर्श नहीं केवल शब्दों के गुबार हैं । विद्रोह के झाग हैं । अपने से भिन्न जो कुछ है उसे मिटाकर रख देंगे, इसका दंभ है ।"[2]

पत्रात्मक शैली

आधुनिक उपन्यासों में पत्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । 'अग्निसंभवा' में आइवी का बेटा वॉग के लिखे पत्रों के ज़रिए चीनी क्रांति का चित्रण उपन्यास में हुआ है । वॉग किसान का बेटा है । उसे अपने देश चीन से लगाव है । वह हांगकांग में रहना पसंद नहीं करता । उसके पत्र के ज़रिए यह सूचना मिलती है कि वह एक क्रांतिकारी दल का सदस्य है । चीनी क्रांति के दौरान उसकी मौत हो जाती है । इसका ब्यौरा वॉग के पत्रों के माध्यम से ही पाठकों के हाथ लगता है । जैसे "लिफाफों से कुछ सूखे जूही के फूल निकल आये । चिट्ठियाँ सब काली स्याही से चीनी भाषा में लिखी थीं... तारीख के बाद तारीख, एक बेटा हर रात सोने से पहले डायरी के पन्नों की तरह अपनी माँ के नाम चिट्ठियाँ भेजता रहा था।"[3] वॉग के पत्र में आगे लिखा था "माँ, हम एक वैचारिक संक्रांति से गुज़र रहे हैं । मैं एक छोटे से दल का सदस्य हूँ । मुझे तुम्हें पहले लिखना चाहिए था, नहीं लिखा । तू बिना बात के परेशान होती ।

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 194
2. वही पृ. 198
3. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 56

पर अब हमें बोलना होगा । हमें चाहिए वैचारिक स्वतंत्रता । पार्टी के शिकंजे से प्रेस की मुक्ति । हम चाहते हैं वास्तव का जनतंत्र । जनता का राज । ताकि नौकरशाही का जुल्म और भ्रष्टाचार खत्म हो । यह मैंने हांगकांग रहकर समझा कि किस तरह हांगकांग के व्यापारी और चीन की नौकरशाही हमारा राष्ट्रीय शोषण कर रहे हैं । गोरी जाति को दोष मत दो, शोषण की आज्ञा हम उन्हें देते हैं । प्रीमियर देंग ने एक दिन ऐलान किया कि चीन को आर्थिक स्वतंत्रता की ज़रूरत है ? पर क्या केवल आर्थिक उन्नति ही काफी है ? सूचनाओं के संसार में हम वैचारिक रूप से पंगु रह जायें ? हमारे सामने केवल लाल किताब हो ? हमारे कान पार्टी की बकवास सुनते-सुनते किरकिराने लगे है नहीं माँ ! नहीं .....डायलेक्टिक का अर्थ हुआ डायलाग, संवाद । मैंने हांगकांग के व्यापारियों का पंगु दिमाग देखा है । वे केवल डॉलर की महत्वाकांक्षा समझते हैं, यह दूसरी अति है वैचारिक विकास ही समन्वय ला सकता है चिंता मत करना, मेरा प्यार तेरे साथ है ।

वॉग" [1]

वॉग का पत्र चीन में हो रहे उथल-पुथल और युवा मानस में धधकती ज्वाला को उद्‌घाटित करता है ।

'पीली आंधी' में पत्रात्मक शैली का प्रयोग हुआ है । सुजीत की ज़िन्दगी में आई दूसरी स्त्री सोमा की वजह से उसकी पत्नी चित्रा एक दिन बिना बताये अपनी बच्ची के साथ घर छोडकर चली जाती है । चित्रा ने दोनों के नाम एक पत्र लिखा है जिसके ज़रिए उसने इस बात का खुलासा किया है कि उसे खोजने की कोशिश मत करना और उसने कानूनी तौर पर अर्जुन को (सुजीत और सोमा का बेटा) गोद लिया है "और एक दिन वह चली गई । सुबह मेज पर चिट्‌ठी रखी हुई मिली थी

---

1. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 57

सुजीत और सोमा, मुझे खोजने की व्यर्थ चेष्टा मत करना । तुम लोगों को छोडकर जाते हुए मुझे दुख हो रहा है । मुझे मालूम है कि, दुख तुम्हें भी होगा । लेकिन अर्जुन मेरा बेटा है । वह सेन है । कानूनी तौर पर हम लोगों ने उसे गोद लिया है । सोमा का कुल-गोत्र अब तुम्हारा कुल-गोत्र है । सोमा वह नहीं है जो केवल समर्पण की भाषा जानती है । इस पत्र को सुरक्षित रखना और इन कागजों को भी । ताकि अर्जुन पर किसी की छाया न पड़े ।

....चित्रा। "[1]

फन्तासी शैली

आधुनिक उपन्यासों में फन्तासी शैली का प्रयोग हुआ है । 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में ऋत्विक ने अपनी डायरी में फंतासी का चित्रण किया है- "अरे डायरी में उसने अपना नाम रखा है, मधुप! डायरी में उसने अपनी फंतासी का चित्रण किया है ।

मधुप माने भंवरा, और अब यह भंवरा कलियों पर पराग केलिए मंडरा रहा है । संपर्क में आनेवाली हर स्त्री के साथ, संभोग का बर्बर चित्रण किया गया था । प्रेम की कल्पना नहीं थीं, किसी संवेदना की चाहना नहीं थी, सिर्फ क्रिया विशेष का ही भद्दा अंकन था और क्रूर वर्णन था । उसके लिए औरत बस एक मादा है, मादा के अतिरिक्त वह कुछ भी नहीं । नहीं.... सबसे नहीं । एक से तो प्यार करता है, एक के लिए तो उसके संबोधन प्यार भरे हैं ।"[2] इसतरह स्त्री के प्रति उसकी मानसिकता का खुलासा होता है । उपन्यास में प्रमुख पात्र वृंदा अपने बचपन में फंतासी में विचरण करती नज़र आती है - "वृंदा, एक नायिका की कल्पना करती स्थान देश काल का चुनाव करती.... संवाद के ताने-बाने बुनती... और प्रत्येक कहानी के अंत में उसकी नायिका का नायक की बांहों में चरम समर्पण हो जाता । वर्षों बाद वृंदा ने जाना कि कल्पना जगत का वह नायक सत्ता का प्रतीक था । वृंदा ने अपनी फंतासी में भी पुरुष को ही श्रेष्ठ स्थान दिया हुआ था ।"[3] यथार्थ की ज़िन्दगी में ऐसा कुछ भी नहीं है इसका एहसास उसे अपनी शादी के बाद हो चुका था ।

---

1. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 261
2. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष - पृ. 21
3. वही पृ. 21

वर्णनात्मक शैली

'आओ पेपे, घर चले' में वर्णनात्मक शैली का वर्णन हुआ है । प्रस्तुत उपन्यास में विदेशी जीवन का व्यापक चित्रण हुआ है । लेखिका ने बेवरली हेल्थ क्लब एवं ब्यूटी क्लिनिक का वर्णन किया है जिसके ज़रिए स्त्री की खूबसूरती को बरकरार रखने का दावा किया जाता है- "भीतर एक अलग ही नजारा था एक लम्बा - सा हाल । करीब बीस-पच्चीस कसरत करने की अलग-अलग मशीनों पर कुछ स्त्रियाँ स्थिर साइकिल पर पैर चलाए जा रही थीं । कुछ 'वाइब्रेशन बेल्ट' पर, कुछ नाववाली मशीन पर यंत्रचालित नाव चला रही थीं । कुछ 'रोलर मशीन' पर झुकी हुई । पूरे हाल में गुलाबी आभा । दीवार का रंग भी गुलाबी । अलग-अलग कद, अलग-अलग शरीर के ढाँचे । सबको अपने शरीर से शिकायत । वजन घटाना है । कमर चौडी हो गई है । किसी के कूल्हे मोटे हो गये हैं । किसी की बाहें मोटी हैं । देखनेवालों को चाहे न लगे, पर उन महिलाओं को अपने-आप से शिकायत थी ।"[1] आगे भी प्रभा को ऐसे ही नज़ारे देखने को मिलते है ।

'पीली आँधी' में मारवाड़ी बनिये के अन्तर्द्वन्द्व, अपने देश राजस्थान छोड़कर दिसावरी केलिए अन्य जगहों में बस जाने की व्यथा-कथा का वर्णनात्मक चित्रण हुआ है । अग्निसंभवा में एक चीनी किसान की बेटी आइवी की संघर्षगाथा के साथ-साथ तियेनमैन स्क्वायर की घटना का विस्तृत चित्रण हुआ है ।

शीर्षक की सार्थकता

'छिन्नमस्ता' उपन्यास का शीर्षक मिथक पर आधारित है । पौराणिक सूत्रों के अनुसार 'छिन्नमस्ता' दस महाविधाओं में पाँचवीं देवी है । वह अपना ही कटा हुआ सिर अपने बाएँ हाथ में लेकर चलती है । मुँह खुला हुआ और जीभ बाहर को निकली हुई है । वह अपने ही गले

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे घर चलें पृ. 27

से निकली रक्तधारा को चाटती है । छिन्नमस्ता वह शक्ति है जो संसार को रचती भी है और उसका सर्वनाश भी करती है, "जो महामाया षोडशी बनकर भुवनेश्वरी बनती हुई संसार का पालन करती है, यही अंतकाल में छिन्नमस्ता बनकर नाश कर डालती है क्योंकि महाप्रलय से छिन्नमस्ता का विशेष संबंध है । यह कबंध शिव की महाशक्ति है । परा (श्रेष्ठ) डाकिनी है।"[1]

'छिन्नमस्ता' उपन्यास की नायिका प्रिया अपने परिवार की पाँचवी बेटी है । समाज एवं परिवार में हर किसी के द्वारा रौंदी गई प्रिया प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझती हुई समाज को अपनी शक्ति का परिचय देती है । प्रिया सोचती है "लहरों की इस दुनिया की न शुरुआत है और न अंत। मेरे साथ मेरा अकेलापन है, पर यह अकेलापन मुझे जीवन का अर्थ समझा रहा है । कैसे मैंने अपने-आपको बचाया है, अपने मूल्यों को जीवन में सँजोया है । हाँ, टूटी हूँ, बार-बार टूटी हूँ... पर कहीं तो चोट के निशान नहीं.... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लोंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई हूँ । अड़तालीस की इस उम्र में एक पूरी की पूरी साबुत औरत हूँ, जो ज़िन्दगी को झेल नहीं रही बलिक हँसते हुए जी रही है जिसे अपनी उपलब्धियों पर नाज है । दोस्ती का हाथ बढ़ाकर जिसकी गर्म हथेलियाँ हर किसी को अपने करीब खींच लेती हैं।"[2] प्रिया जीवन के थपेडों से जूझते हुए उस मुकाम को हासिल करती है जिसकी कल्पना कोई भी स्त्री नहीं कर सकती । इस तरह मिथकीय शीर्षक के सहारे लेखिका ने स्त्री जीवन की यातना, उसकी संघर्षगाथा को उभारने का अथक प्रयास किया है ।

'आओ पेपे, घर चलें' में लेखिका ने आदमी में जानवर और जानवर में आदमी को देखने की बात कही है । पेपे के ज़रिए जानवर में मानवीय संवेदना को उजागर करने का प्रयास किया है । आइलिन की मौत पर आँसू बहानेवाला सिर्फ पेपे ही था "आइलिन जा चुकी थी हमेशा केलिए । उसे जाना ही था । दूर-दराज में कोई था भी नहीं, उसको याद करनेवाला ।

---

1. डॉ. उषा कीर्ति राणावत प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार पृ. 186
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 24-25

निरन्तर रोती रहती थीं पेपे की एक जोड़ी नीली आँखें । पेपे क्लीनिक में आता और आइलिन की कुर्सी के पास चुपचाप बैठा रहता । मुझे देखकर धीरे से आकर पैरों से लिपट जाता ।

आह ! जानवर में आदमी और आदमी में जानवर ! "[1]

'पोली आंधी' में मारवाड़ी परिवार के उथल-पुथल के साथ-साथ अपने मूल स्थान से उखड़कर अन्य जगहों में जा बसने की पीड़ा का भी संकेत मिलता है । 'तालाबंदी' में एक-एक फैक्ट्री के बन्द होने, मालिक-मज़दूर के बीच के संघर्ष के साथ-साथ यूनियन की भूमिका का संकेत मिलता है । जैसे शेखर दा कहते हैं "श्याम बाबू, हमें आपसे शिकायत नहीं, लेकिन हम लोग क्लोजर नहीं करने देंगे। एक पर एक फैक्ट्रियाँ बंद होती जा रही हैं । मैं इस फैक्ट्री को बन्द नहीं होने दूँगा । कहाँ जायेंगे ये लोग ?"[2] 'अग्निसंभवा' में आइवी के ज़रिए यह प्रस्तुत किया गया है कि संघर्षरूपी आग में भी जीवन संभव है । 'स्त्री पक्ष' में लेखिका स्त्री के पक्ष में ठोस दलील पेश करती है । 'एड्स' में वैश्विक स्तर पर मंडराते एड्स के आतंक का संकेत मिलता है । 'अपने अपने चेहरे' में लेखिका हर पात्र के दर्द भरे तहखाने को पर्त-दर-पर्त उघाडने का कार्य करती है ।

प्रभा खेतान के उपन्यासों के शीर्षक सार्थक एवं प्रभावशाली बन पडे हैं । उपन्यासों की कथावस्तु और उनके शीर्षकों के बीच तालमेल स्थापित करने में लेखिका कामयाब हुई हैं ।

भाषा

भाषा मनुष्य की अनुभूति, उसकी इच्छा को अभिव्यक्त करने का साधन है । व्यक्ति की अनुभूति को शब्द-रूप प्रदान कर संप्रेषण करने, सूचना-प्रेरणा-सर्जना, आस्वादन, चिन्तन-दर्शन, सिद्धान्त-निर्माण, ज्ञानादि केलिए भाषा का प्रयोग किया जाता है ।

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे घर चलें - पृ. 67
2. प्रभा खेतान तालाबंदी पृ. 99

वर्तमान में प्रचलित भाषा पुरुष प्रधान व्यवस्था और संस्कृति का प्रतिफलन है । सत्ता एवं शक्ति के केन्द्र में स्थापित पुरुष ने भाषाई प्रयोग की वर्जनाएँ भी स्त्री पर थोपी । परिणामस्वरूप महाकाव्य काल में स्त्रियों को मानक भाषा संस्कृत से वंचित रखा गया । इसलिए संस्कृत नाटकों में स्त्रियों के संवाद अपभ्रंश-प्राकृतों में मिलते हैं । सदियों से पीड़ित, शोषित स्त्री ने जब अपनी संघर्ष गाथा को प्रस्तुत किया तो परंपरागत मानदण्ड चरमराने लगे और एक नवीन भाषा का गठन हुआ जिसे 'स्त्री-भाषा' की संज्ञा प्राप्त हुई । जहाँ पुरुष भाषा में डाँट-फटकार, तू-तड़ाक, ऊँचे स्वर में बोलना अधिक मात्रा में दिखाई देता है वहीं स्त्री-भाषा में दैया री, शीट्, छिः फुसफुसाहट वाली धीमी ध्वनियों की विशेषता होती है । वर्तमान दौर की लेखिकाओं ने स्त्री भाषा की ज़रूरत को बड़ी शिद्दत के साथ महसूस किया और उपन्यासों में स्त्री के अनकहे-अनछुए पहलुओं को अपनी स्त्री भाषा में वाणी दी ।

प्रभा खेतान की भाषा जीवन्त है । उनकी भाषा में घर-गृहस्थी की शब्दावली का प्रयोग सहजता के साथ हुआ है । स्त्री अनुभवों की सच्चाई को उन्होंने अभिव्यक्ति दी है । माहवारी के एहसास को लेखिका ने सच्ची अभिव्यक्ति दी है । 'स्त्री पक्ष' उपन्यास में वृंदा को जब मासिक-धर्म शुरू होता है तब वह सोचती है -"जीवन को पवित्र बनाना चाहिए, संकल्प की शुद्धि.... किन्तु उन दिनों उसके शरीर से महीने के महीने होनेवाला रक्तस्राव शुरू नहीं हुआ था। तब वह पवित्र थी, उसका तन मन उसके वश में था, वह घंटों किताब लेकर बैठी रह सकती थी । मगर इन दिनों सबकुछ बदल गया था । और उसके शरीर की यह महक ? वह पूछना चाहती कि क्या औरों को भी उसके शरीर से महक आती है ? खास कर उन दिनों में...! बाथरूम में चाहे कितना भी पानी डालो.... तब भी अजीब सी गंध बाथरूम में उसके पीछे ठहर जाया करती ।"[1]

---

1. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 21

छिन्नमस्ता की प्रिया को मासिक धर्म शुरू होने पर माँ द्वारा अपराधी ठहराया जाता है। उनके द्वारा इस करमकांड को छुपाने की हिदायत दी जाती है । प्रिया के भीतर अनजाने ही अपराध बोध पनपने लगता है और वह खुद को शर्मिन्दा महसूस करती है "वह भादों की उमस भरी दुपहरिया और चुपचाप बैठे रहना । सारा अस्तित्व हिचकोले खा रहा था । अम्मा मेरा अपराध क्या है ? क्या महीने के महीने टाँगों के बीच रिसता हुआ खून मुझे अच्छा लगता है ? और इसके कारण कैसी अजीब-सी आत्मग्लानि, अपराधबोध, यंत्रणा ?"[1] प्रिया के भाई-बहन 'अछूत कन्या' कहकर उसका मज़ाक उड़ाते है । लेखिका यह जाहिर करती है कि समाज स्त्री की इस पहचान केलिए उसे शर्मिन्दा करता रहा है । उसके भीतर अपने निम्न होने के एहसास को मज़बूत करता रहा है । लेखिका ने इस प्रकार स्त्री दशा को व्यक्त किया है ।

विशिष्ट शब्दावली

स्त्री का मुख्य परिवेश घर-आँगन है । बच्चे-पति, सास-ससुर, देवर-ननद से युक्त उसकी गृहस्थी होती है । बर्तन, कपड़े, चूल्हा, चौका रिश्तों की शब्दावली का उनकी भाषा में प्रयोग हुआ है । कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं - प्याले, चाय, चिप्स, रोटी, सेंकना, आमलेट टोस्ट, पकौड़े, धनियापत्ती, मटर की कचौडियाँ, पल्लू, घूंघट, नथ, मुकलावा, चांदी की बिछिया, चांदी का कड़ा, ओढनी, सतलड़ा हार, खिचड़ी, गुड की भेली, बाजरे की बाटी, बुंदिया, घड़ा आदि।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ

भाषा को प्रभावक, सुन्दर-मार्मिक बनाने केलिए मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग होता है । जैसे-कलेजा मुँह को आना, ढाई सेर से तो कम खाती नहीं, सौ कुपातर से एक सुपातर ही घणा, एक म्यान में दो तलवारें, पंचायती करना, रामजी की माया, रामू की माँ तेरा तो माथा

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 50

दिन पर दिन खराब हो रहा है, बास में लगी मेरी नींद, रहना भाइयों में चाहे बैर हो, रांड का जाया तू मेरा धन छूकर तो देख ।

गालियाँ

गालियों का प्रयोग भी प्रभा खेतान के उपन्यासों में देखा जा सकता है साला, हरामजादा, हरामी, शीवनिस्टीक पीग (अहंकारी सुअर), चांडाल, रांड, रंडियों, कटकनी, बिल्ली, रखैल, मिस्ट्रेस, डाइन, कुतिया, कुत्ते की औलाद, पतली कमरवाली, गुलछर्रे, मटरगश्ती, गपोडचंद माल आदि ।

नम्रता सूचक शब्दों का प्रयोग

प्रभा खेतान के स्त्री पात्र-ए जी, ओ जी, जी, सुनते हो जैसे संबोधनपरक शब्दों से काम चला लेती हैं । 'अपने अपने चेहरे' की मिसेज गोयनका अपने पति केलिए ऐसे ही संबोधनपरक शब्दों का इस्तेमाल करती है "और वे एकदम से घबराकर अपनी गुदाज हथेलियों से पति को छूकर कहने लगीं - "ए जी, क्या सोच रहे हैं ? मैं तो कहती हूँ अब छोड़िए दुनिया - जहान का परपंच । रमेश का ब्याह हो जाए तो फिर चलते हैं तीरथ करने ।"[1]

'तालाबंदी' उपन्यास में श्यामबाबू की पत्नी सुमित्रा भी ऐसे ही शब्दों का इस्तेमाल करती दिखाई देती है "क्या हुआ जी ? ऐसे कैसे अचानक ? ज़माना बहुत खराब है ।"[2]

लोकगीत

प्रभा खेतान ने लोकगीतों का बखूबी प्रयोग किया है । शादी-ब्याह के दौरान गाए जाने वाले लोकगीतों का इस्तेमाल किया है "म्हारी ननदल बाई तो सुकुमार ए नन्दोई म्हाने प्यारो लागो जी।"[3]

---

1. प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 18
2. प्रभा खेतान तालाबंदी पृ. 88
3. प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 10

दिसावरी केलिए गए पति की वापसी की मंशा से पीली आंधी उपन्यास में राधा बाई कागे (कौआ) द्वारा संदेश भिजवाती हुई हल्के से गुनगुनाती है "उड़... उड़ रे म्हारा काला कागला, जे म्हारा पीवजी घर आवे । खीर खांड को थाल परोसूं... थारी सोने चोंच मढ़ाऊं रे कागा...थारी..... जलम... जलम.... गुण गाऊं रे.... कागा जलम.... जलम...."[1]

उपन्यास में चाँदनी रात में माधो द्वारा तन्मय स्वर में हरजस गया जाता है:

"ग्वालीड़ा थूं काई जाणै पीर पराई,

हाथ लकुटिया काँधै कमरिया,

बन-बन धेनु चराई...

लोग इकट्ठे हो जाते हैं । राग सोरठ में विभोर होकर गाते हुए माधो बाबू की आँखें भर आती है

"जब म्हारा मोती पीवण लाग्या, तो सोने के रंगतार... हो राम...
जद राधा, हरि ने मोती पैराया, तो चन्द्रसखी जस गाया हो राम..."[3]

लोककथा

'अग्निसंभवा' उपन्यास में आइवी संघर्ष के दिनों नानी द्वारा सुनी कहानी का जिक्र करती है - "एक बार पहाड़ की चोटी पर फैले हुए जंगल में आग लग गयी । जंगल में चींटियों का एक समुदाय रहता था । चींटियों की रानी ने कहा, "इस आग में अब यदि हम एक-एक कर नीचे उतरेंगे तो सब जलकर खाक हो जायेंगे । क्यों नहीं अपने कबीले को बचाने केलिए कुछ की आहुति दे दी जाये । बस सब चींटियों ने एक दूसरे को जकड़कर एक गोला बना लिया । अब चींटियों का यह गोला चोटी से नीचे की ओर लुढ़कने लगा । इसमें बाहरी पर्त

---

1 प्रभा खेतान पीली आंधी पृ. 10
2. वही पृ. 93
3. वही.

की चोटियाँ जल गयीं । पर भीतर की चिटियाँ आग से बच गयीं । संगठन की शक्ति यही होती है । कुछ की आहुति से बाकी की जान बच जाती है ।"[1]

संकेतात्मक भाषा

उपन्यासकार कभी-कभार संकेत से संवेदना को अभिव्यक्त करता है । 'आओ पेपे, घर चले' में संकेतात्मक भाषा के कुछ उदाहरण देख सकते हैं । लेखिका ने आइलिन के अकेलेपन का संकेत किया है "आइलिन हर रात कुर्सी पर पड़ी शराब की खुमारी में मत्त-बेहोश क्यों रहती है ? टी.वी. केवल आवाज़ों के माध्यम से उस घर में संवाद जारी रखता है।"[2] उपन्यास में लेखिका ने आइलिन के जीवन की एकरसता का भी संकेत दिया है "हर रात आइलिन के बिस्तर में पेपे सोता है, और वही आलू-गोभी की सब्जी, जब तक खतम न हो जाए, मुझे खानी पड़ेगी ।"[3]

"स्त्री पक्ष' में वृंदा का रजःस्वला होना सांकेतिक भाषा में प्रस्तुत किया गया है - "मगर इन दिनों सबकुछ बदल गया था । और उसके शरीर की यह महक? वह पूछना चाहती कि क्या औरों को भी उसके शरीर से महक आती है ? खास कर उन दिनों में ! बाथरूम में चाहे कितना भी पानी डालो... तब भी अजीब-सी गंध बाथरूम में उसके पीछे ठहर जाया करती।"[4]

'छिन्नमस्ता' में प्रिया का स्वप्न उसके अतीत की ओर संकेत करता है - "जैसे मैं एक बड़े कमरे में बंद हूँ । शायद कोई मेरी ओर झपटता है । मैं एक छलांग में कमरे से बाहर लॉबी में भागती चली जा रही हूँ । अचानक मुझे एक्जिट दिखता है । मैं धड़धड़ाती हुई घुमावदार सीढ़ियाँ उतरती चली जा रही हूँ, मानो दसों मंजिलें एक मिनट में मैंने तय कर लीं । बुरी तरह हाँफ रही हूँ । नींद में भी गहरी पीड़ा । लगता है जैसे सीने को कोई रस्सियों से बाँध रहा हो...

---

1. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 58
2. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 39
3. वही
4. प्रभा खेतान स्त्री पक्ष पृ. 21

फिर एक स्वीमिंग पूल... नहीं, यह तो गंगा नदी है । पछाड़ खाती हुई लहरें, तेज बहाव, कोई ठहरा हुआ पानी नहीं । अचानक मुझे एक छोटी लड़की दिखती है... चार-पाँच साल की । उसे तैरना नहीं आता । डुबकियाँ ले रही है । अरे ! यह तो डूब रही है ! बड़े हौले से मैं उसे अपनी दोनों हथेलियों पर उल्टा लिटा देती हूँ । मैं उसे तैरना सिखा रही हूँ । धारा के तेज प्रवाह में मेरे अपने पैर उखड़ रहे हैं मैं सोचती हूँ-क्या यह हरद्वार की गंगा है ? नहीं, यह तो बंगलादेश की पद्मा है । पद्मा का ही प्रवाह इतना तेज हो सकता है... पानी बहे जा रहा है... पर वह बच्ची तैरना सीख गई।"[1] प्रिया का अतीत सुखद नहीं रहा है । बचपन की प्रताड़ित, शोषित प्रिया अपने पैरों पर आज खड़ी हो गई है ।

'एड्स' में प्रभा के अविवाहित होने का संकेत मिलता है । एन्ड्रू स्पेन्सर प्रभा से कहता है "अभी जब तुम इमिग्रेशन फार्म भर रही थी ना ? यानी तुमने जब पासपोर्ट खोला, तब पति के स्थान पर पिता का नाम था।"[2]

काव्यात्मकता

प्रभा खेतान के उपन्यासों में कविता का सा लय दिखाई देता है । 'पीली आंधी' में माधो की मृत्यु का जो चित्रण किया है वह बिल्कुल काव्यात्मक हुआ है "पूरब वाली खिड़की के बाहर बड़ का पेड़ कांप रहा था । और फिर हवा के साथ झड़ते हुए पत्ते ज़मीन पर बिछते चले गए । एक उदास धुएँ से भरी हुई रात ठहर गई थी । हवा ने सिसकी लेकर फिर वापस बहना शुरू किया । धमनियों में रेंगता हुआ खालीपन था । बहता हुआ दुख कुछ रुक गया था । कमरे के फर्श पर बाहर की उजास रोशनी बिछी हुई थी । विदाई के समय कुछ सांवले बादल कुछ और छितर गए थे । और फिर बढ़ता हुआ अंधेरा, सबको अपनी बांहो में समेटता हुआ अंधेरा था । सब कुछ कितना निःशब्द और खामोश हो गया, क्योंकि बस अभी-अभी एक आदमी बिलकुल साधारण आदमी सबके बीच से उठकर हमेशा केलिए चला गया ।"[3] उपन्यास में

---

1. प्रभा खेतान - छिन्नमस्ता पृ. 40-41
2. प्रभा खेतान एड्स पृ. 72
3. प्रभा खेतान पीली आँधी पृ. 130

माधो की विधवा पद्मावती और पन्नालाल सुराणा के मिलन का चित्रण काव्यात्मकता के साथ किया गया है - "आह!" वह भरी हुई डाल सी झुक आई थी.. मेंह बनकर प्यासे होंठों पर बरस रही थी... मेरी बांहों में उसका पिघलना... सब कुछ कितना मोहक...."क्या मैं इसे पाप कहूँ?"[1]

'छिन्नमस्ता' में प्रिया जब अकेली होती है तब वह गौरैया से कविताई भाषा में ही बात करती है - "अले अले गौलैया ! बता तो, तू आज कहाँ-कहाँ होकर आई ? औल उस कौवे को देखकल क्यों डल गई थी ? कुछ खाया तूने ? क्या खाती है तू ? बोल न मेली चिड़िया, मेली अच्छी-सी गौलैया ? अले बोल न भाई ? तू भी नहीं बोलती..."[2] यह भाषा विचलन का अच्छा प्रयोग है । शैलीविज्ञान के अनुसार 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग ध्वनि विचलन है। काव्य भाषा को सुन्दर बनाने केलिए विचलन का प्रयोग प्रभाजी ने किया है ।

चित्रात्मकता

प्रभा खेतान ने चित्रात्मक भाषा का भी सहारा लिया है । 'आओ पेपे, घर चलें' में हार्लेम के माहौल का चित्रांकन हुआ है "चमचमाता हुआ शहर धीरे-धीरे गरीब होता जा रहा था । हम लोगों ने दाहिने एक गली में गाड़ी खड़ी की । उजड़े हुए मकान, जिनके खिड़की-दरवाजे गायब थे, जगह-जगह ग्रैफिटो लिखे हुए । श्वेत अमेरिकन के खिलाफ नस्लवाद का आरोप । कहीं अब्राहम लिंकन की तस्वीर, साथ में मार्टिर लूथर किंग । एक मकान के सामने लिखा था- सावधान ! यदि तुम गोरे अमेरिकन हो, तो भीतर जान का खतरा है।"[3] इससे अमेरिकन के प्रति नीग्रो के मन में धधकते नफरत का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है ।

'अग्निसंभवा' में आइवी प्रभा से हांगकांग के खान-पान का चित्रांकन करती है - चावल के रस में चार रकम के जहरीले सांप और एक छिपकली को भिगो दिया जाता है । साथ

---

1 प्रभा खेतान पीली आँधी पृ. 282
2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 25
3 प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 138

में चालीस रकम की जड़ी बूटियाँ डाली जाती हैं । छिपकली भी कोई साधारण छिपकली नहीं। छिपकली के बदन पर लाल छींटे होने चाहिए और पांच पैर ।"[1] इस तरह आइवी उस अमरत्व सुधा के बनाने के बारे में प्रभा को बताती है जिसका पान करने की वजह से बामा गाँव के लोग सौ वर्ष से ऊपर की आयु में मरते हैं ।

प्रतीकात्मक भाषा

'पीली आँधी' में पीली आंधी अपने जड़ से उखड़ते मानव का प्रतीक बनकर उपस्थित होती है "यह एक पीली आँधी थी जिसमें मारवाड़ी परिवार, पत्तों की तरह उड़ते हुए बंगाल, बिहार में पहुँचकर दम लेते थे और कठिन श्रम, पारस्परिक सहयोग तथा राजनीतिक-सामाजिक टकराहटों से बचते हुए अपने लिए सम्मानपूर्ण जगह बनाते थे ।"[2] उपन्यास में दिसावरी से वापस लौटे किशन का सारा धन लूटेरों ने लूट लिया और उसके बड़े भाई रामेश्वर को मार डाला । किशन को रातों रात अपना घर छोड़कर जाना पड़ा । पीली आँधी के साथ ही एक भरा-पूरा परिवार उजड़ गया ।

'आओ पेपे, घर चलें' में पेपे मानवीय संवेदना का प्रतीक बनकर सामने आता है । पेपे आइलिन केलिए उसके अकेलेपन का साथी भी है और उसका बेटा भी । प्रभा के दुःखी होने पर उसके गमों को बाँटना चाहता है । अपनी उपस्थिति से उसे तसल्ली देना चाहता है - "अरे, बाप रे ! पेपे पास में बैठा हुआ मेरा पैर चाट रहा था । मैं हड़बड़ा कर उठी, पर पेपे वैसे ही बैठा रहा । बड़े कातर भाव से उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा, उसकी बड़ी-बड़ी आँखें बिना कुछ कहे भी बहुत कुछ कहती हुई लगीं। उन आँखों में सारी दुनिया की हमदर्दी समाई हुई थी। मेरे वापस बैठते ही वह और करीब सरक आया । मैंने डरते-डरते उसकी पीठ पर हाथ फेरा।

---

1. प्रभा खेतान अग्निसंभवा पृ. 67
2. गोपाल राय पीली आँधी का हाहाकार पृ. 10

पेपे के दोनों कान खड़े हो गए । खुश होकर उसने मेरी ओर देखा । धीमे से गुर्राया । मेरे पैरों को फिर से चाटने लगा।"[1]

'एड्स' में युद्ध मनुष्य की हैवानियत का प्रतीक बनकर आया है । उपन्यास में कुक्कू प्रभा से कहती है "प्रभा तुम्हारी बात मानती हूँ लेकिन आदमी मरता है तो मारता भी है । क्या बुश और सद्दाम आदमी नहीं ? लेकिन ये बेचारे निरीह पशु-पक्षी इस चिड़िया ने किसी का क्या बिगाड़ा है ? और यह समुद्री गर्भ में रहनेवाला आदिवासी कछुआ ?"[2] युद्ध से कुक्कू नफरत करती है । युद्ध के दृश्य से उसका दिल दहल उठता है ।

प्रतीक का अर्थ होता है चिह्न, जिससे संप्रेषणीयता में वृद्धि होती है । प्रतीक अचेतन अवस्था की भाषा होता है । सूक्ष्म अनुभूति की अभिव्यंजना केलिए प्रतीक की सहायता ली जाती है । 'खूँटे से बँधी' एक प्रतीक है जिससे गुलाम का अर्थबोध होता है । 'आओ पेपे, घर चलें' में आइलिन इस सच्चाई को ही उद्घाटित करती है । वह प्रभा से कहती है "औरत जब अपना दिल एक खूँटे से बाँध देती है, तब सारी ज़िन्दगी रोती है, सारी ज़िन्दगी"[3]। उपन्यास में 'पुरानी कमीज़' फालतू चीज़ (वस्तु) का प्रतीक बनकर आया है । समाज में स्त्री की हैसियत एक वस्तु की ही है जिसे जब चाहे पुरुष स्वीकार करता है और जब चाहे उठाकर फेंक सकता है । मिसेज डी डॉ डी से भावनात्मक स्तर पर जुड़ी हुई थी । वह इस सच्चाई से भी वाकिफ थी कि उनके पति की ज़िन्दगी में उनके अलावा एक दूसरी स्त्री क्लारा ब्राउन है । मिसेज डी का संपूर्ण जीवन अपने पति केलिए ही समर्पित था । वे पति को तलाक देना नहीं चाहती थी लेकिन अन्त में मिसेज डी अपने पति द्वारा दूध में पड़ी मक्खी की तरह उठाकर फेंक दी जाती है । मिसेज डी प्रभा से कहती है "मेरी क्या गलती थी ? मुझमें कौन सी कमी थी ? मैंने उसके लिए क्या नहीं किया ? वे मुझे पुरानी कमीज की तरह उतार फेंकेंगे ! वह बोलती रही और रोती रही ।"[4]

---

1. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 43
2. प्रभा खेतान एड्स पृ. 71
3. प्रभा खेतान आओ पेपे, घर चलें पृ. 53
4. वही पृ. 144

प्रभा खेतान ने पात्रानुकूल एवं परिवेशानुकूल भाषा का प्रयोग किया है । उपन्यासों में जो घरेलू नौकर रखे जाते वे प्रायः बिहार प्रांत के थे और कभी कभी अपनी भाषा का भी इस्तेमाल करते हैं । जैसे छिन्नमस्ता में प्रिया की दाई माँ - "ई तो कहो कि शहर है, हमार गाँव में तो बियाह के पहिले कवनों लड़की का ई महीना सुरू हो जाय तो माँ-बाप का सर पर पाप का बोझ बढ़ता है ।"[1]

'तालाबंदी' उपन्यास में बंगाली भाषा का ही अत्यधिक प्रयोग हुआ है । उपन्यास का केन्द्र विषय बंगाल के मालिक-मज़दूरों की समस्या रही है । बंगाली मास्टर हरिनारायण चट्टोपाध्याय के शब्द द्रष्टव्य हैं "ऐशो बाबा, ऐशो । छात्रों होये ऐशेछो एइजोन्ने तुमी कोरे डाकछी।"[2]

'आओ पेपे, घर चलें' 'अग्निसंभवा' 'एड्स' का परिवेश विदेशी है । इसलिए हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है । ऐसे प्रयोग छिन्नमस्ता उपन्यास में भी देख सकते हैं । पीली आँधी में ग्रामीण शब्दों का प्रयोग हुआ है ।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में संवाद कम, चिंतन अधिक है । इसके ज़रिए उन्होंने गहन विचारों को पाठकों के सामने रखा है । जैसे छिन्नमस्ता में प्रिया सोचती है - "औरत कहाँ नहीं रोती सड़क पर झाड़ू लगाते हुए, खेतों में काम करते हुए, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग-ऐश्वर्य के बावजूद मेरी सासूजी की तरह पलँग पर रात-रात भर अकेले करवटें बदलते हुए । हाड़-मांस की बनी ये औरतें.... अपने-अपने तरीके से ज़िन्दगी जीने की कोशिश में छटपटाती ये औरतें ! हजारों सालों से इनके ये आँसू बहते आ रहे हैं ।"[3] लेखिका ने इस के ज़रिए स्त्री की पीड़ा को बड़ी शिद्दत के साथ उकेरा है ।

---

1. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 50
2. प्रभा खेतान तालाबंदी पृ. 37
3. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 220

'अपने अपने चेहरे' में रमा समाज के घिसे-पिटे नियमों को तोडती है । वह संपूर्ण जीवन अकेला रहकर समाज केलिए चुनौती बनती है । वह सोचती है "आज मैं उस अतीत से निकल कर सोचती हूँ, कोई ऐसा यंत्र होता जिससे अपनी बेबसी, अपने आँसू, अपने अकेलेपन की त्रासदी को माप सकती । होंठों पर जमी काई और आँखों से झरती धूल अब मुझे समझा रहे हैं, एकतरफा समर्पण का परिणाम ।"[1] उक्त पंक्तियों में लेखिका ने समाज में स्त्री की त्रासद स्थिति का वर्णन किया है । प्रभा खेतान इस सच्चाई को भी उजागर करती है कि स्त्री को समाज की चुनौतियों का सामना करना आ गया है । 'छिन्मस्ता' की प्रिया अपने पति और घरवालों के बताये रास्ते पर चलने की बजाय अपना रास्ता खुद तय करती है । रिश्ते-नातों का बंधन तोड़कर एक सफल व्यावसायिक महिला के रूप में समाज में प्रतिष्ठित होती है । अपनी आत्मीयता के घेरे को घर तक सीमित न कर उसे विस्तृत करती है । वह सोचती है "मेरे संस्कार अलग हैं । मैं संजू के सहारे ज़िन्दगी नहीं बिता सकती । न ही पति या बेटा या प्रेम ही, ज़िन्दगी के सहारे हो सकते हैं । इनके साथ-साथ चलते हुए कठिन मुकामों को पार करने में आसानी ज़रूर होती है, राहत मिलती है, मन को सुकून होता है कि चलो कोई साथ है । लेकिन यदि वे साथ न दें तब क्या एकतरफा आहुति भी देते चलो और सफर भी तय करो। मैंने अपने मन को समझा लिया था । चलो, थोड़ी और कठिनाई सही । अपनी राह चल रही हूँ इसका तो संतोष रहेगा । मैं यदि अपनी नज़रों में सही हूँ, तब किसी और की नज़रों में खुद को सही स्थापित करने की यह कठिन तपस्या बेकार है, बिल्कुल बेकार।"[2] प्रिया अपनी एक स्वतंत्र पहचान स्थापित करती है ।

---

1 प्रभा खेतान अपने अपने चेहरे पृ. 199

2. प्रभा खेतान छिन्नमस्ता पृ. 170-171

निष्कर्ष

ज़ाहिर है कि प्रभा खेतान ने अपने उपन्यासों के द्वारा स्त्री जीवन के यथार्थ को पर्त-दर -पर्त उघाड़ने का कार्य किया है । स्त्री की व्यक्तिगत अनुभूतियों को भाषा के ज़रिए अभिव्यक्ति दी गई है । स्त्री के अनछुए पहलुओं को उद्‌घाटित करने केलिए सशक्ततम भाषा का इस्तेमाल किया है । बड़ी शिद्दत के साथ स्त्री भाषा की ज़रूरत को प्रभा खेतान ने महसूस किया है जिसके अभाव में स्त्री की अनुभूति, इच्छा-विचार, उसके व्यक्तित्व को अभिव्यंजित करना नामुमकिन है । उनके उपन्यासों के कथ्य और शिल्प बेजोड़ हैं । प्रभा खेतान ने जीवन सत्य की अभिव्यक्ति केलिए भावनात्मक धरातल को छोड़कर बौद्धिक तल को ही अपनाया है ।

उपसंहार

उपसंहार

दुनिया की आधी आबादी की स्त्री सदियों से अपनी मानवीय पहचान से वंचित रही है । स्त्री के शोषण के कुचक्र के केन्द्र में पितृसत्ता रही है । पितृसत्ता ने उसे संपत्ति, सत्ता और मानवीय गरिमा से अपदस्थ कर घर की चार दीवारी में कैद कर रखा । स्त्री को अपने व्यक्तित्व विकास के अवसरों से वंचित कर पंगु बनाये रखने के प्रयास किये गये । स्त्री की यथास्थिति को पुख्ता करने के इरादे से परंपरा, धर्म, शास्त्र, मिथक और कानून को अपने ही हित में गढ़ने का कार्य किया । समाज उसे एक ओर देवी की महिमा से गौरवान्वित करता रहा तो दूसरी ओर उसके साथ गुलामों जैसा बर्ताव भी करता रहा । शोषण का यह कुचक्र हर कहीं अभिन्न रहा है । पितृसत्ता के शोषण के कुचक्र को उद्‌घाटित करने का कार्य स्त्री विमर्श के ज़रिए किया गया है ।

स्त्री मुक्ति आन्दोलन एवं शिक्षा ने स्त्री के भीतर यह एहसास जगाया कि वह भी मनुष्य है । उसे अपने दोयम दर्जे के होने का एहसास हुआ । वह इस सच्चाई से रू-ब-रू हुई कि समाज अब तक उसकी प्रतिभा को कुंद करता आया है । उसे पनपने केलिए एक ठोस ज़मीन ही नहीं दी गई । वह मात्र वस्तु और उसके वंशबेल को आगे बढ़ानेवाली उर्वरभूमि ही नहीं है, इससे परे भी उसका अस्तित्व है । इन सच्चाईयों को केन्द्र में रख जब स्त्री ने साहित्यिक जगत में अपने जीवन के कटु यथार्थ को अभिव्यक्ति दी तब वह स्त्री लेखन कहा जाने लगा । अब तक पुरुष स्त्री के जिन अनकहे-अनछुए पहलुओं को अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ रहा उसे स्त्री लेखन ने वाणी दी । पितृसत्ता के साजिशों का भंडाफोड़ कर स्त्री के विद्रोह एवं प्रतिरोध को उजागर करते हुए साठ के दशक के बाद साहित्य में स्त्री विमर्श उभरकर आया ।

स्त्री मुक्ति आन्दोलन की उपज स्त्री विमर्श समाज में वर्तमान स्त्री विरोधी मानसिकता एवं अन्तर्विरोधों का खुलासा करता है । स्त्री की बदहाली के कारकों की खोज करता है जिससे स्त्री को समाज में घोर अवमानना एवं उपेक्षा झेलनी पड़ी । इस सच्चाई को उद्‌घाटित करता है कि स्त्री की जैविक भिन्नता उसे दोयम दर्जे की स्थिति नहीं सौंपती । स्त्री विमर्श समाज में प्रचलित मूल्यों, भाषा एवं साहित्य पर प्रश्न चिह्न लगाता हुआ साहित्य में स्त्री दृष्टि की पहल करता है । भूमण्डलीकरण एवं पितृसत्ता के गठबंधन से आज स्त्री की मानवीय पहचान खतरे में है । स्त्री विमर्श इन सच्चाइयों को उघाड़कर समाज में स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक स्थिति के बारे में व्यापक दृष्टिकोण का विमर्श है ।

औद्योगिक क्रांति के दौरान विकसित स्त्री चेतना ने सर्वप्रथम पश्चिम में स्त्री मुक्ति आन्दोलन को जन्म दिया । इसका संबंध पुनर्जागरण काल के मानववाद, प्रबोधनकाल तथा बुर्जुआ जनवादी क्रांतियों से था । अमरिकी क्रांति एवं फ्रांसीसी क्रांति ने इसमें अहम भूमिका निभाई । गुलामी प्रथा विरोधी आन्दोलन, लिंग विभेद आन्दोलन और मज़दूर आन्दोलन से स्त्री मुक्ति आन्दोलन को बल मिला । जहाँ स्त्री मुक्ति आन्दोलन के पहले चरण का प्रमुख मुद्दा मतदान का रहा वहीं साठ के दशक के आन्दोलन के दूसरे चरण का मुद्दा स्त्री शोषण का रहा ।

वैदिक काल के बाद स्त्री की मानवीय प्रतिष्ठा में जो गिरावट आई उसे पुनःस्थापित करने के कार्य नवजागरण काल में किये गये । पुरुषों द्वारा इस ओर पहल की गई । बाल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा, दहेज प्रथा पर प्रहार किया गया एवं स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया। लेकिन अपने समस्त कार्यों के बावजूद समाज सुधारक स्त्री के स्वतन्त्र अस्तित्व के हिमायती नही थे । उनका कार्य उद्धार की भावना से प्रेरित था । शिक्षित स्त्रियों ने बीसवीं

शताब्दी में इसकी कमान अपने हाथों में थामी । स्त्री विकास के उद्देश्य से अनेक संगठन एवं संस्थाओं की स्थापना की गई । राष्ट्रीय आन्दोलन में गाँधीजी के आह्वान पर स्त्रियों ने शिरकत की । परिणामस्वरूप स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात स्त्रियों को संविधान में समान अधिकार प्रदान किए गए ।

साठ के दशक के बाद आन्दोलन सक्रिय हुआ । स्त्रियों द्वारा शराब विरोधी आन्दोलन, मूल्यवृद्धि आन्दोलन, नवनिर्माण आन्दोलन, दहेज विरोधी आन्दोलन, बलात्कार विरोधी आन्दोलन, चिपको आन्दोलन आदि चलाए गए । आन्दोलन में राजनैतिक अधिकारों की माँग उठाई जाने लगी । अस्सी के दशक में शाहबानो और रूपकँवर के प्रकरण के दौरान 'समान नागरिक संहिता' की मांग फिर से उठ खड़ी हुई। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा सन् 1975 का वर्ष 'अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष' के रूप में घोषित किया गया ।

स्त्री मुक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप साहित्य में स्त्रियों ने अस्मिता का संघर्ष शुरू किया । स्त्री की दमित इच्छाओं, आकांक्षाओं एवं अनुभूतियों को खुलकर अभिव्यक्ति देते हुए अस्मिता यात्रा का पहला कदम मीरा ने उठाया था । मीरा के बाद बीसवीं सदी में स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति को उद्‌घाटित करने का कार्य महादेवी वर्मा द्वारा किया गया । साठ के बाद साहित्य में स्त्री छवि को तहस-नहस कर स्त्री विमर्श उभरकर आया । स्त्री समस्याओं के बजाय उसके शोषण के कारकों को पितृसत्तात्मक व्यवस्था में खोजकर मूल व्यवस्था में बदलाव की मांग उठाई जाने लगी । आज स्त्री बराबरी की माँग ही नहीं कर रही बल्कि वह अब बराबरी के स्तर पर भी बैठने लगी है । चित्रा मुद्‌गल, नासिरा शर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, राजी सेठ, गीतांजली श्री आदि ने ऐसे ही स्त्री पात्रों की रचना की है जो अपनी मानवीय पहचान को बरकार रखने केलिए संघर्षरत है । वहीं प्रतिभा और

अस्मिता से लैस प्रभा खेतान के स्त्री पात्र समाज के चाबुक से लहुलूहान होते हुए चिंदियों में बिखरने की बजाय समाज को चुनौती देते हुए एक अलग पहचान स्थापित करते हैं । लेखक बने रहने के साथ-साथ प्रभा खेतान व्यावसायिक महिला एवं एक सक्रिय सामाजिक कार्यकर्ता भी थीं । स्त्री उनके चिन्तन एवं उनकी हर रचनाओं के केन्द्र में रही है । निर्यातक होने के नाते उन्होंने विदेशी स्त्रियों की त्रासद स्थिति को करीब से देखा । उपभोक्तावादी संस्कृति, विज्ञापन, मीडिया एवं ब्रांड के कुचक्र में फँसती स्त्री से वे वाकिफ हुईं । प्रभा खेतान ने इस सच्चाई को उद्घाटित किया कि भूमण्डलीकरण स्त्री के पक्ष में ही नहीं बल्कि उसके विपक्ष में भी गया है । उन्होंने भूमण्डलीकरण एवं वैश्वीकरण को पर्त-दर-पर्त उघाड़कर समसामयिक समस्याओं पर भी अपने गहन विचार प्रस्तुत किये हैं।

सदियों से स्त्री के प्रति शोषण का कुचक्र ज़ारी है । पितृसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री की इस अधीनस्थता केलिए ज़िम्मेदार है । यही व्यवस्था पुरुष को प्रथम श्रेणी में प्रतिष्ठित करती है और स्त्री को दोयम दर्जे में रख उसे तमाम अधिकारों से वंचित रखती आयी है । लिंगभेद की इस नीति से स्त्री को व्यक्तित्व विकास के अवसर अनुपलब्ध रहे हैं । परंपरा और धर्म-शास्त्रों नें स्त्री के शोषण को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । मानसिक अनुकूलन के ज़रिए मानसिक तौर पर गुलामों के एक जत्थे को तैयार किया गया । घरेलू हिंसा एवं बलात्कार स्त्री शोषण का सबसे विकृत रूप है । विवाह संस्था एवं परिवार स्त्री की दासता पर ही टिके हुए हैं । शोषण की यह नीति हर कहीं एक जैसी है । विदेशों में भी स्त्री की हालत बद से बदत्तर है । वहाँ भी स्त्री की गिनती मानव कोटि में नहीं की जाती । इसी का खुलासा प्रभा खेतान के उपन्यासों में हुआ है ।

स्त्री की ज़िन्दगी को सुधारने में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है । शिक्षा और आर्थिक स्वावलंबन के ज़रिए स्त्रियों में स्वाभिमान और आत्मविश्वास पैदा होते हैं । उसके

नज़रिए में बदलाव आता है । स्त्री निर्णय लेना सीखती है । इससे उसका संघर्ष मज़बूत होता है । वह विवाह और परिवार में छिपे अन्तर्विरोधों से वाकिफ हो जाती है । अन्धविश्वासों, धार्मिक पाखण्डों का खुलकर विरोध कर रही है । अकेली स्त्री एवं दूसरी स्त्री के ज़रिए वह समाज द्वारा थोपी गई भूमिकाओं को नकारती है । विवाह संस्था को चुनौती देती हुई अपने जीवन में नैतिकता के नए प्रतिमान रचती है । इस तरह प्रभा खेतान के स्त्री पात्र समाज की बंदिशों को तोड़कर अपना प्रतिरोध व्यक्त करती हैं । उनकी स्त्री पात्रों का प्रतिरोधी स्वर मुखर हो उठता है । वे शोषण के खिलाफ अपनी आवाज़ बुलन्द करती हैं । विद्रोह उसकी अस्मिता का प्रमाण है ।

समकालीन संदर्भ में भूमण्डलीकरण एवं पितृसत्ता के तालमेल के साथ स्त्री की मानवीय पहचान को रौंदने का कार्य किया जा रहा है । भूमण्डलीकरण स्त्री की अधीनस्थता को और अधिक मज़बूत करता है । स्त्री पण्य वस्तु एवं उजरती श्रमिक में तब्दील होती जा रही है । मीडिया विज्ञापन के ज़रिए ऐसी ही स्त्री छवि उभरती नज़र आती है । ब्रांड ने स्त्री को अपना नया हथियार बनाया है । आज हर कहीं स्त्री ब्रांड को बेचती-खरीदती नज़र आती है । नवबाज़ारवाद द्वारा सेक्स उद्योग को नई शक्ति प्रदान किये जाने के साथ ही स्त्री की मांग बढ़ी है । इस तरह स्त्री शोषण को बढ़ावा मिला है । स्त्री श्रम के लचीले होने के कारण उसके लचीले श्रम की मांग बाज़ार में बढ़ी है । प्रभा खेतान ने यह दर्शाने का प्रयास किया है कि स्त्री की मानवीय पहचान आज खतरे में है ।

प्रभा खेतान के उपन्यासों में संरचनात्मक विविधता परिलक्षित होती है । उनकी भाषा जीवन्त, स्वाभाविक एवं सहज है । पात्रानुकूल एवं परिवेशानुकूल भाषा का इस्तेमाल उन्होंने किया है । उनके उपन्यासों में संवाद कम एवं चिन्तन अधिक है जिसके ज़रिए स्त्री

की त्रासद स्थिति का उद्घाटन किया गया है । जीवन सत्य को उजागर करने केलिए बौद्धिक धरातल को अपनाया गया है ।

संक्षेप में स्त्री की भ्रमित आँखें खोलने में स्त्री विमर्श की भूमिका महत्वपूर्ण है । पर्त-दर-पर्त व्यवस्था को उघाडकर स्त्री को इस सच्चाई से अवगत कराया जा रहा है कि वह मात्र देह नहीं बल्कि मनुष्य है । अपना दुःखड़ा रोने की बजाय उसे समाज की मुख्यधारा से जुड़ना है । स्त्री विमर्श के ज़रिए आधी आबादी के व्यक्तिगत अनुभवों को जगजाहिर कर एक वर्चस्वविहीन समाज की स्थापना की पहल की जा रही है । समाज के हर क्षेत्र में कार्यरत स्त्री आज अपने अधिकारों केलिए संघर्षरत है । ऐसी ही स्त्री छवि साहित्यिक फलक पर उभरी है । अपने अस्तित्व एवं अस्मिता के प्रति सजग प्रभा खेतान के स्त्री पात्र प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पूरे हौसले के साथ अपनी मंजिल को हासिल करती है । ऐसे जुझारू पात्रों को रचनेवाली लेखिका प्रभा खेतान स्त्री विमर्श की शीर्षस्थ लेखिका होने की हकदार हैं जिनका खुद का जीवन मानो अन्या से अनन्या बनने का अथक प्रयास था ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. अग्निसंभवा — प्रभा खेतान
हंस, मार्च 1992 मई 1992

2. अन्या से अनन्या — प्रभा खेतान
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 2007

3 अपने अपने चेहरे — प्रभा खेतान
किताबघर, नयी दिल्ली
संस्करण 1996

4. अपरिचित उजाले — प्रभा खेतान
अक्षर प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 1981

5. अल्बेयर कामू वह पहला आदमी — प्रभा खेतान
सरस्वती विहार, दिल्ली
संस्करण 1985

6. अहल्या — प्रभा खेतान
सरस्वती विहार, दिल्ली
संस्करण 1988

7 आओ पेपे घर चले — प्रभा खेतान
सरस्वती विहार, दिल्ली
संस्करण 1990

8. उपनिवेश में स्त्री — प्रभा खेतान
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली
संस्करण 2003

9	एक और आकाश की खोज में	प्रभा खेतान अप्रस्तुत प्रकाशन, कोलकता संस्करण 1985
10.	एक और पहचान	प्रभा खेतान स्वर समवेत प्रकाशन, कोलकता संस्करण 1986
11.	एड्स	प्रभा खेतान पूजा पत्रिकांक, कोलकता
12.	कृष्णधर्मा मैं	प्रभा खेतान स्वर समवेत, कोलकता संस्करण 1986
13.	छिन्नमस्ता	प्रभा खेतान राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नयी दिल्ली संस्करण 1993
14.	तालाबंदी	प्रभा खेतान सरस्वती विहार, दिल्ली संस्करण 1991
15.	पीली आंधी	प्रभा खेतान राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली संस्करण 2001, पहली आवृत्ति 2004
16.	बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ	प्रभा खेतान वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2004
17	भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र	प्रभा खेतान सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2007

18.	साँकलों में कैद क्षितिज	प्रभा खेतान सरस्वती विहार, दिल्ली संस्करण 1988
19	सार्त्र का अस्तित्ववाद	प्रभा खेतान सरस्वती विहार, दिल्ली संस्करण 1984
20.	सार्त्र शब्दों का मसीहा	प्रभा खेतान सरस्वती विहार, दिल्ली संस्करण 1985
21.	सोफिया तॉलस्तोया की डायरी	प्रभा खेतान हंस जून 2008 जुलाई 2008
22.	सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं	प्रभा खेतान इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 1982
23.	स्त्री पक्ष	प्रभा खेतान सबरंग पत्रिका जनसत्ता, फरवरी 1999 अगस्त 1999

आलोचनात्मक ग्रन्थ

24.	अतीत होती सदी और स्त्री का भविष्य	(सं) राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2001
25.	अपना कमरा	वर्जीनिया वुल्फ (अनु) गोपाल प्रधान संवाद प्रकाशन, मेरठ (उ. प्र.) संस्करण 2002
26.	अधूरे साक्षात्कार	नेमिचन्द्र जैन वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 1989
27	अश्लीलता का हमला	(सं) राजकिशोर वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2006

28.	आज का मीडिया	(सं) शंभुनाथ वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2000
29	आठवें-दशक के हिन्दी उपन्यास	डॉ. रजनीकान्त जैन दिग्दर्शन चरण जैन, ऋषभचरण जैन एवम् सन्तति, नयी दिल्ली, संस्करण 1988
30.	आदमी को निगाह में औरत	राजेन्द्र यादव राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2001
31	आधुनिक एवं हिन्दी कथा साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप	(सं) डॉ. मुदिता चन्द्र, डॉ. सुलक्षणा टोप्पो भावना प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2008
32.	आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द	बच्चन सिंह वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 1994
33.	आधुनिकता की पुनर्व्याख्या	(सं) शंभुनाथ वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2002
34.	उठो अन्नपूर्णा साथ चलें	उषा महाजन हिमाचल पुस्तक भण्डार, दिल्ली संस्करण 1998
35.	उत्तर-आधुनिक मीडिया विमर्श	सुधीश पचौरी वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2006
36.	उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श	सुधीश पचौरी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली संस्करण 1996

37	उत्तराधिकार बनाम पुत्राधिकार	अरविन्द जैन आत्माराम एंड संस, दिल्ली संस्करण 2000
38.	उपन्यास की संरचना	गोपाल राय राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2006
39	एक कहानी यह भी	मन्नू भण्डारी राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2007
40.	ओ उब्बीरी	मृणाल पाण्डे राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2003
41.	और औरत अंग	मनीषा शिल्पायन, दिल्ली संस्करण 2006
42.	औरत अपने लिए	लता शर्मा सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2006
43.	औरत अस्तित्व और अस्मिता	अरविंद जैन सारांश प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली, संस्करण 2001
44.	औरत उत्तरकथा	(सं) राजेन्द्र यादव, अर्चना वर्मा राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2002
45.	औरत कल, आज और कल	आशारानी व्होरा कल्याणी शिक्षा परिषद्, नयी दिल्ली, संस्करण 2006
46.	औरत के लिए औरत	नासिरा शर्मा सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2005

47	औरत के हक में	तस्लीमा नसरीन (अनु) मुनमुन सरकार वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2005
48.	औरत होने की सजा	अरविन्द जैन विकास पेपरबैक्स, दिल्ली संस्करण 2004
49.	कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री का स्वरूप	डॉ. अनिता जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, संस्करण 2006
50.	कृष्णा सोबती व्यक्ति एवं साहित्य	डॉ. ब्रिजिट पॉल जवाहर पुस्तकालय, मथुरा संस्करण 2005
51.	खुली खिड़कियाँ	मैत्रेयी पुष्पा सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2006
52.	खून के छींटे इतिहास के पन्नों पर	भगवत शरण उपाध्याय वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2004
53.	चुकते नहीं सवाल	मृदुला गर्ग सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2004
54.	जवाब दो विक्रमादित्य	राजेन्द्र यादव, (समायोजन) कविता वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2003
55.	जीना है तो लड़ना होगा	बृंदा कारात सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2006

56. जीवन की तनी डोर ये स्त्रियाँ
नीलम कुलश्रेष्ठ
मेधा बुक्स, दिल्ली
संस्करण 2005

57 दुर्ग द्वार पर दस्तक
कात्यायनी
परिकल्पना प्रकाशन, लखनऊ
संस्करण 1998

58. देहरि भई विदेश
(सं) राजेन्द्र यादव,
अर्चना वर्मा, बलवंत कौर
किताब घर प्रकाशन,
नयी दिल्ली, संस्करण 2006

59. नये आयामों को तलाशती नारी
(सं) दिनेशनन्दिनी डालमिया,
रश्मि मल्होत्रा,
नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली संस्करण
2003

60. नवजागरण और महादेवी वर्मा का रचना कर्म स्त्री विमर्श के स्वर
कृष्णदत्त पालीवाल
किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2008

61. नष्ट लड़की नष्ट गद्य
तस्लीमा नसरीन
(अनु) मुनमुन सरकार
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण
2000

62. नारी अस्मिता की परख
दर्शन पाण्डेय
संजय प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण
2004

63. नारी अस्मिता के विविध आयाम
डॉ. एम. षण्मुखन
हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोच्चि
संस्करण 2008

64. नारी उत्पीड़न समस्या एवं समाधान
डॉ. हरिदास रामजी शेण्डे 'सुदर्शन'
ग्रन्थ विकास, जयपुर
संस्करण 2007

65.	नारी एक विवेचन	धर्मपाल भावना प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 1996
66.	नारी चेतना और कृष्णा सोबती के उपन्यास	डॉ. गीता सोलंकी भारत पुस्तक भण्डार, दिल्ली संस्करण 2007
67	नारी चेतना के आयाम	डॉ. अल्का प्रकाश लोकभारती पुस्तक विक्रेता तथा- वितरक, दिल्ली संस्करण 2007
68.	नारी-नवजागरण और महिला उपन्यासकारों की स्त्री-पुरुष परिकल्पना	डॉ. उर्मिला प्रकाश चिन्ता प्रकाशन, राजस्थान संस्करण 1991
69	नारी प्रश्न	सरला माहेश्वरी राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2007
70.	नारी बहुरूपा	डॉ. ऊर्मि शर्मा अनंग प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2002
71.	नारी मुक्ति संग्राम	शांति कुमार स्याल आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली संस्करण 1995
72.	नारीवादी विमर्श	राकेश कुमार आधार प्रकाशन प्रा. लि., हरियाणा, संस्करण 2001
73.	नारी विद्रोह के भारतीय मंच	आशारानी व्होरा नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण 1991
74.	नारी शोषण आईने और आयाम	आशारानी व्होरा नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण 1996

75.	नारी सशक्तिकरण	डॉ हरिदास रामजी शेण्डे 'सुदर्शन' ग्रन्थ विकास, जयपुर संस्करण 2008
76.	नैतिकता के नए सवाल	(सं) राजकिशोर वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2006
77	न्याय क्षेत्रे अन्याय क्षेत्रे	अरविन्द जैन राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2002
78.	परिधि पर स्त्री	मृणाल पाण्डे राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 1996
79.	परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति	फ्रेडरिख़ एंगेल्स प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली संस्करण 2003
80.	पितृसत्ता के नए रूप	(सं) राजेन्द्र यादव, प्रभा खेतान, अभयकुमार दुबे राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2001
81	प्रभा खेतान और उनका साहित्य	डॉ. परवीन मलिक ऋषभचरण जैन एवंम् संतति, नयी दिल्ली, संस्करण 1994
82.	प्रभा खेतान का औपन्यासिक संसार	डॉ. उषा कीर्ति राणावत वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2005
83.	प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास	रतिभानुसिंह नाहर किताब महल, इलाहाबाद संस्करण 1961
84.	प्रेम के साथ पिटाई	लवलीन सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2007

85.	बचपन से बलात्कार	अरविन्द जैन शिल्पायन, दिल्ली संस्करण 2004
86.	बदलते जीवन मूल्य और बौद्ध धर्म	रघुवीर सिंह अतीश प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 1998
87	बधिया स्त्री	जर्मेन ग्रीयर, (अनु) मधु बी. जोशी राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2005
88.	बन्द गलियों के विरुद्ध	(सं) मृणाल पाण्डे, क्षमा शर्मा राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 2001 पहली आवृत्ति 2004
89.	बाधाओं के बावजूद नई औरत	उषा महाजन मेधा बुक्स, दिल्ली संस्करण 2001
90.	ब्रेक के बाद	सुधीश पचौरी राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 1998
91.	भारत का भूमण्डलीकरण	(सं) अभयकुमार दुबे वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली संस्करण 2003
92.	भारत में महिला शिक्षा और साक्षरता	सुभाषिणी पालीवाल कल्याणी शिक्षा परिषद्, दिल्ली संस्करण 1998
93.	भारत में विवाह और कामकाजी महिलाएँ	प्रमिला कपूर राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 1976
94.	भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार	आशारानी व्होरा नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, संस्करण 1986

95. भारतीय मध्यवर्ग और सामाजिक उपन्यास — डॉ. पी.एम. थॉमस
जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
संस्करण 1998

96. भारतीय विवाह संस्था का इतिहास — विश्वनाथ काशीनाथ राजवाडे
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2004

97 भारतीय समाज — श्यामाचरण दुबे (अनु)
वंदना मिश्र
नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली
संस्करण 2001

98. भारतीय साहित्य में दलित एवं स्त्री — (सं) चमनलाल
उत्तर क्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र,
पटियाला, संस्करण 2001

99. मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी-भावना — डॉ. उषा पाण्डेय
हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली
संस्करण 1959

100. मन मांझने की ज़रूरत — अनामिका
सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2006

101 मनुस्मृति — डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री
विद्या विहार, नयी दिल्ली
संस्करण 2000

102. महादेवी साहित्य (खण्ड 4) — (सं) निर्मला जैन
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2007

103. महिला उपन्यासकारों की रचनाओं में बदलते सामाजिक संदर्भ — डॉ. शील प्रभा वर्मा
विद्या विहार, नयी दिल्ली
संस्करण 1987

104. महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारीवादी दृष्टि — डॉ. अमर ज्योति
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 1999

105. मार्क्सवाद और हिन्दी उपन्यास
डॉ. एन. रवीन्द्रनाथ
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 1979

106. मानव सभ्यता का विकास
रामविलास शर्मा
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 1991

107 मात्र देह नहीं है औरत
मृदुला सिन्हा
सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2007

108. मारवाड़ी व्यापारी
डॉ. गिरिजा शंकर शर्मा
कृष्ण जनसेवी एण्ड को., बीकानेर
संस्करण 1988

109. मुड़-मुड़के देखता हूँ
राजेन्द्र यादव
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 2001

110. मृदुला गर्ग के कथा साहित्य में नारी
डॉ. रमा नवले
विकास प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2007

111. यौन दासियाँ एशिया का सेक्स बाज़ार
लुइज़ ब्राउन, (अनु) कल्पना वर्मा
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2005

112. राष्ट्र और मुसलमान
नासिरा शर्मा
किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2003

113. राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य कुछ प्रसंग: कुछ प्रवृत्तियाँ
वीर भारत तलवार
हिमाचल पुस्तक भण्डार, दिल्ली
संस्करण 1994

114. 23 लेखिकाएँ और राजेन्द्र यादव
(सं) गीताश्री
किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2009

115. विज्ञापन की दुनिया
कुमुद शर्मा
प्रतिभा प्रतिष्ठान, नयी दिल्ली
संस्करण 2004

116. वैदिक वाङ्मय में नारी
डॉ. सुषमा शुक्ला
ग्रन्थ भारती प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 2002

117 वोल्गा से गंगा
राहुल सांकृत्यायन
किताब महल, इलाहाबाद
संस्करण 2008

118. श्रृंखला की कड़ियाँ
महादेवी वर्मा
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
संस्करण 2004

119 समकालीन कविता में स्त्री
गायत्री माहेश्वरी
संजय बुक सेन्टर, वाराणसी
संस्करण 1998

120. समकालीन महिला लेखन
डॉ. ओम प्रकाश शर्मा
पूजा प्रकाशन एवं खामा पब्लिशर्स,
दिल्ली, संस्करण 2002

121 समान नागरिक संहिता
सरला माहेश्वरी
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 1997
पहली आवृत्ति 2004

122. साम्यवाद ही क्यों ?
राहुल सांकृत्यायन
किताब महल, इलाहाबाद
संस्करण 2000

123. सीमन्तनी उपदेश
(सं) डॉ. धर्मवीर
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2004

124. स्त्रियों की पराधीनता
जॉन स्टुअर्ट मिल
(अनु) प्रगति सक्सेना
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 2002

125. स्त्री अधिकारों का औचित्य साधन — मेरी वॉल्सटन क्राफ़्ट
(अनु) मीनाक्षी
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 2003

126. स्त्री अस्मिता के प्रश्न — सुभाष सेतिया
कल्याणी शिक्षा परिषद्,
नयी दिल्ली, संस्करण 2006

127 स्त्री-अस्मिता साहित्य और विचारधारा — (सं) जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधा सिंह
आनन्द प्रकाशन,
कोलकता, संस्करण 2004

128. स्त्री का समय — क्षमा शर्मा
मेधा बुक्स, दिल्ली
संस्करण 2001

129 स्त्री केलिए जगह — राजकिशोर
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 1994

130. स्त्री चिन्तन की चुनौतियाँ — रेखा कस्तवार
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 2006

131. स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक — मृणाल पाण्डे
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 2002

132. स्त्री-पुरुष कुछ पुनर्विचार — राजकिशोर
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2000

133. स्त्री पुरुषों के संबंधों का विमर्श — डॉ. उषा कीर्तिराणावत
साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन,
जयपुर, संस्करण 2006

134. स्त्री-पुरुष संबंधों का रोमांचकारी इतिहास — मन्मथनाथ गुप्त
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2005

135. स्त्री मुक्ति और कविता — (सं) प्रमीला. के.पी
मिलिन्द प्रकाशन, हैदराबाद
संस्करण 2006

136. स्त्री मुक्ति का सपना — (अतिथि सं) अरविन्द जैन,
लीलाधर मंडलोई
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2004

137 स्त्री लेखन और समय के सरोकार — हेमलता महिश्वर
नेहा प्रकाशन, दिल्ली
संस्करण 2006

138. स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने — रमणिका गुप्ता
शिल्पायन, दिल्ली
संस्करण 2004

139. स्त्री संघर्ष का इतिहास — राधा कुमार
वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2002

140. स्त्रीत्व का मानचित्र — अनामिका
सारांश प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली
संस्करण 1999

141. स्त्रीत्ववादी विमर्श समाज और साहित्य — क्षमा शर्मा
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्ली, संस्करण 2002

142. स्त्रीवाद और महिला उपन्यासकार — डॉ. वैशाली देशपाण्डे
विकास प्रकाशन, कानपुर
संस्करण 2007

143. स्त्रीवादी साहित्य विमर्श — जगदीश्वर चतुर्वेदी
अनामिका पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स
प्रा. लि., नयी दिल्ली
संस्करण 2000

144. स्वाधीनता-संग्राम हिन्दी प्रेस और स्त्री का वैकल्पिक क्षेत्र
(सं) जगदीश्वर चतुर्वेदी, सुधासिंह
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स-प्रा. लि., नयी दिल्ली
संस्करण 2006

145. हम सभ्य औरतें
मनीषा
सामयिक प्रकाशन, नयी दिल्ली
संस्करण 2004

146. हमारी औरतें
मनीषा
शिल्पायन, दिल्ली
संस्करण 2006

147 हादसे
रमणिका गुप्ता
राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दिल्ली
संस्करण 2005

148. हिन्दी उपन्यासः आज
डॉ. के. वनजा
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्याल, कोच्चि
संस्करण 2007

149 हिन्दी उपन्यास और स्त्री जीवन
डॉ. ज्योति किरण
मेधा बुक्स, दिल्ली
संस्करण 2004

150. हिन्दी उपन्यास का इतिहास
गोपालराय
राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.,
नयी दिल्लो, संस्करण 2002

151. हिन्दी उपन्यासों में रूढ़िमुक्त नारी
डॉ. राजरानी शर्मा
साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली
संस्करण 1989

152. हिन्दी उपन्यासों में स्त्री अस्मिता की अंभिव्यक्ति
वीणा यादव
अकादमिक प्रतिभा, दिल्ली
संस्करण 2006

153. हिन्दी उपन्यास शिल्प बदलते परिप्रेक्ष्य — डॉ. प्रेम भटनागर, अर्चना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 1968

154. हिन्दी की महिला उपन्यासकारों की मानवीय संवेदना — डॉ. उषा यादव, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., नयी दिल्ली, संस्करण 1999

155. हिन्दी नवजागरण और संस्कृति — शंभुनाथ, आनंद प्रकाशन, कोलकता, संस्करण 2004

156. हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध — सूरज पालीवाल, शिल्पायन, दिल्ली, संस्करण 2008

157 हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास — डॉ. सुमन राजे, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, संस्करण 2003

मलयालम संदर्भ ग्रन्थ

158. Aarthavamulla Sthreekal — C.S. Chandrika, Fabian Books, 'Gulmohar' Mavelikara, 2008

159. Adhunika Malayala Kavithayile Sthreepaksha Sameepanangal — Geetha, Lipi Publications, Kozhikode 2002

160. Feminism (1) & (2) — A group of Authors, Dr. Jancy James (Chief Editor) Published by The State - Institute of languages, Thiruvananathapuram - 3. 2000

161. Feminism Charithraparamaya Oranweshanam — Dr. M. Leelavathi, Prabhatham Printing And Publishing Co. (P) Ltd. Thiruvananthapuram -695035, 2000

162. Keralathile Sthreemunnettangalute Charithram — C.S. Chandrika, Sahitya Akademi, Kerala 1998

163. Sthree — Osho, translated by K.P.A Samadh, Green Books Private Limited Thrissur, 2005

164. Sthree, Sthree Vadam, Sthree Vimochanam — Dr. K. Saradamani, D.C. Books, Kottayam, 1999

अंग्रेज़ी संदर्भ ग्रन्थ

165. Feminism — John Charvet, J.M. Dent and sons Ltd Aldine House, 33 Welbeck Street, London W1M8LX 1982

166. Status of Indian Women — Saraswati Mishra, Gyan Publishing House, New Delhi, 2002

167 Violence Against Women Women Against Violence — Shirin Kudchedkar, Sabiha Al-Issa (Editors) Pencraft International, Delhi 1998

पत्र पत्रिकाएँ

1.	आजकल	मार्च - 2008
2.	आजकल	सितम्बर 1984
3.	आलोचना	जनवरी-मार्च - 2001
4.	आलोचना	अप्रैल जून 2002
5.	कथन	जुलाई सितम्बर 2003
6.	कथाक्रम	जुलाई - सितम्बर 2007
7	दस्तावेज	जनवरी - मार्च - 1999
8.	दस्तावेज	अप्रैल जुलाई 1986
9.	दस्तावेज	जुलाई सितम्बर 2004
10.	नया ज्ञानोदय	नवम्बर 2006
11	भाषा	जनवरी फरवरी 2001
12.	भाषा	जुलाई अगस्त 2003
13.	मधुमती	जनवरी 2000
14.	मधुमती	फरवरी 2007
15.	मधुमती	अप्रैल मई 2004
16.	मधुमती	जून 2001
17	मधुमती	अक्तूबर 1996
18.	मधुमती	दिसम्बर 2004
19.	माध्यम	अप्रैल-जून 2005
20.	वसुधा	जनवरी मार्च 2006
21.	वर्तमान साहित्य	मार्च 2007
22.	वर्तमान साहित्य	मई - 2001
23.	वर्तमान साहित्य	जून 2001

24. वागर्थ	फरवरी 2002
25. वागर्थ	मई - 1998
26. वागर्थ	जून 1998
27 वागर्थ	अक्तूबर 1997
28. वाङ्मय	जुलाई दिसम्बर 2007
29 संग्रथन	अप्रैल 2002
30. संग्रथन	अप्रैल 2004
31. संग्रथन	सितंबर 2003
32. संचेतना	मार्च 1997
33. समयांतर	मार्च - 2003
34. समयांतर	मार्च 2005
35. समीक्षा	जनवरी -मार्च 2005
36. समीक्षा	अप्रैल - जून 1980
37 समीक्षा	अप्रैल जून 1990
38. समीक्षा	अप्रैल जून 1996
39. समीक्षा	अप्रैल - जून 2003
40. समीक्षा	जुलाई सितम्बर 1986
41. समीक्षा	अक्तूबर दिसम्बर 1997
42. साक्षात्कार	जुलाई सितम्बर 1987
43. साक्षात्कार	जुलाई अगस्त 1996
44. साक्षात्कार	अक्तूबर 2000
45. हंस	जनवरी - 1999
46. हंस	जनवरी 2003
47 हंस	फरवरी - 2000
48. हंस	फरवरी - 2008

49. हंस	अप्रैल 1999
50. हंस	अप्रैल - 2000
51. हंस	अप्रैल - 2003
52. हंस	मई - 2000
53. हंस	मई - 2004
54. हंस	जून - 1997
55. हंस	जून 2008
56. हंस	जुलाई - 2008
57 हंस	अगस्त 2005
58. हंस	सितंबर 2000
59. हंस	सितंबर 2003
60. हंस	अक्तूबर 2001
61. हंस	नवम्बर - 2008
62. हंस	दिसंबर 2004
63. हिन्दी अनुशीलन	जून 2004

मलयालम पत्रिका

64. Sahityalokam	January - February - 1996